सितम्बर, 2018

I.S.S.N. : 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द्र ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0494

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 195/-

© 2018 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

---

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा................................. द्वारा मुद्रित ।

पी एल डी (डी)-9-2018 आई.एस.एस.एन. 2457-0494

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2018 अंक - 9

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय

संपादक
कमला कान्त

[2018] 3 उम. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

दांडिक विधि में, अभियुक्त को मृतक के साथ अंतिम बार देखे जाने के साक्ष्य को ग्राह्य माना गया है, किन्तु एकमात्र इसी साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को सिद्धदोष करना न्यायोचित नहीं है जब तक कि अन्य स्वतंत्र साक्ष्यों द्वारा इसकी संपुष्टि नहीं हो जाती है । इसी प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **नवनीत कृष्णन्** बनाम **राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक** [2018] 3 उम. नि. प. 430 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया कि अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत परिस्थितियों की शृंखला में एक महत्वपूर्ण घटना होती है जिससे अभियुक्त की दोषिता पूर्णतः सिद्ध तो हो जाती है या कुछ निश्चितता के साथ उसकी दोषिता को इंगित कर सकती है, तथापि, केवल इस साक्ष्य से अभियुक्तों की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने वाले भार का निर्वहन नहीं हो सकता है और इसकी संपुष्टि होना आवश्यक है तथा केवल इस आधार पर अभियुक्त को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

कर्मकारों की छंटनी एक निरंतर प्रक्रिया है किन्तु यह मनमानी या निरंकुश नहीं होनी चाहिए, कर्मकारों के हित की संरक्षा के लिए कतिपय कानूनी संरक्षण प्रदान किए गए । कोई कर्मकार छंटनी की दशा में, उन संरक्षणों का तभी लाभ उठा सकता है जबकि वह स्वयं उस संरक्षण के कतिपय पुरोभाव्य शर्तों को पूरा करता है । इस प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मोहम्मद अली** बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** [2018] 3 उम. नि. प. 448 वाले मामले में, यह निर्णय दिया कि यदि किसी कर्मकार ने अपनी सेवोन्मुक्ति से ठीक पूर्ववर्ती वर्ष में निरंतर 240 दिनों से कम कार्य किया है तो वह धारा 25च का फायदा लेने का हकदार नहीं होगा भले ही उसने इससे पूर्व कतिपय वर्षों के दौरान एक कलैंडर वर्ष में 240 दिनों से अधिक कार्य किया हो ।

जहां यह प्रश्न उठता है कि जब छापामार पुलिस दल द्वारा कानूनी आज्ञापक उपबंधों का पालन किए बिना छापा मारकर किसी विनिषिद्ध वस्तु की तलाशी ली जाती है और उसके बाद उसे अभिगृहीत कर लिया जाता है तथा संबंधित अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया जाता है और न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो क्या उसे न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध करना न्यायोचित होगा । इस प्रश्न पर विचार करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **आरिफ खान** उर्फ **आगा खान** बनाम **उत्तराखंड राज्य** [2018] 3

उम. नि. प. 487 वाले मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां छापामार पुलिस दल द्वारा अभियुक्त की तलाशी, धारा 50 की आज्ञापक अपेक्षाओं के अनुसार, किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में न की गई हो और स्वयं तलाशी लेकर अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु (चरस) अभिगृहीत की गई हो, वहां अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों का अनुपालन न होने के कारण अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने का हकदार होगा । इसके अतिरिक्त, इस अंक में अन्य महत्वपूर्ण निर्णय भी हैं ।

प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए तारीख 23.5.1939 से तारीख 7.7.1939 तक के निर्णयों के हिंदी पाठ और शीर्ष टिप्पण पाठकों के ज्ञान के लिए प्रकाशित किए जा रहे हैं । इस अंक में केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009 को भी ज्ञानार्थ प्रकाशित किया जा रहा है । इस संपूर्ण अंक का परिशीलन करने के पश्चात् आपकी बहुमूल्य प्रतिक्रियाएं ईप्सित हैं ।

कमला कान्त
संपादक

सत्यमेव जयते

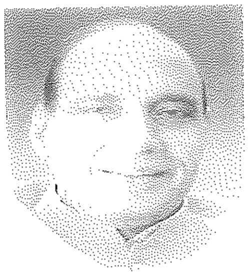

राजनाथ सिंह
RAJNATH SINGH
गृह मंत्री, भारत
HOME MINISTER, INDIA

प्रिय देशवासी बहिनो एवं भाइयो ।

हिंदी दिवस पर आपको मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

भाषा, किसी भी राष्ट्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरोहर की संवाहिका होती है और भाषायी एकता से ही राष्ट्र की अखण्डता सुदृढ़ होती है कोई भी देश स्वभाषा के बिना अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को मौलिक रूप से परिभाषित नहीं कर सकता ।

पुरातन काल से 'हिन्दी' हमारे राष्ट्रीय व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती आ रही है और आज वह भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ-साथ भारत के संविधान में वर्णित भावनात्मक एकता को मजबूत करने का भी माध्यम है । हिंदी ने भारतीय संस्कृति से संविधान निर्माण प्रक्रिया तक और पुरातनयुग से स्मार्ट फोन के प्रयोग तक का लंबा सफर तय करते हुए हमारी सामासिकता को अक्षुण्ण रखने में महती भूमिका निभाई है और देशवासियों में अनेकता में एकता की भावना को भी पुष्ट किया है ।

जिस देश के नागरिक अपनी भाषा में सोचें और लिखें, विश्व उस देश को सम्मान की दृष्टि से देखता है । भारत जैसे विशाल, बहुभाषी और प्रजातांत्रिक देश की चहुँमुखी विकास प्रक्रिया में हिंदी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं की भी अहम भूमिका रही है । हमारे देश की सभी भाषाएँ और बोलियाँ हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक धरोहर हैं और इनका प्रयोग एवं प्रचार-प्रसार करना, यह हमारा कर्तव्य है ।

भारतीय संविधान द्वारा दिनांक 14 सितंबर, 1949 को धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परंपराओं को जोड़ने की कड़ी और अधिकांश देशवासियों द्वारा बोली एवं समझी जाने वाली, 'हिंदी भाषा' को 'संघ की राजभाषा' के रूप में चुना गया है । इसके साथ ही, संघ सरकार को यह महत्वपूर्ण दायित्व भी सौंपा गया कि वह अन्य भारतीय भाषाओं के रूप, शैली एवं पदावली को आत्मसात् करते हुए हिंदी भाषा का विकास करे ताकि वह भारतीय संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके ।

आज कोई भी भाषा कंप्यूटर तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से दूर रह कर जन-मानस से जुड़ी नहीं रह सकती । वर्तमान में डेटाबेस के आधार पर मशीनी अनुवाद के जरिए पूरे विश्व में अनुवाद कार्य किया जा रहा है । केंद्र सरकार के कामकाज में अत्यधिक मात्रा में नियमित आधार पर किए जाने वाले अनुवाद कार्य में लगने वाले अतिशय मानव संसाधन और समय को बचाने के लिए राजभाषा विभाग ने सी-डैक, पुणे की सहायता से 'कंठस्थ' नामक अनुवाद सॉफ्टवेयर भी तैयार किया है । भारत सरकार के राजभाषा विभाग ने भी एक अभिनव पहल करते हुए 'हिंदी प्रौद्योगिकी संसाधन केंद्र' की स्थापना की है ताकि कंप्यूटर पर हिंदी में कार्य करने के लिए नवीन ई-टूल्स विकसित किए जा सकें ।

निज भाषा के प्रति स्वाभिमान और हिंदी भाषा का समुचित ज्ञान एवं तकनीकी कुशलता ही हिंदी में कार्य करने का मुख्य आधार है । मुझे विश्वास है कि केंद्र सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों आदि में इन सॉफ्टवेयरों के अधिकाधिक प्रयोग से द्विभाषीकरण यानि अनुवाद कार्य अपेक्षाकृत सरल होगा और इससे राजभाषा कार्यान्वयन को गति मिलेगी ।

सूचना प्रौद्योगिकी के मौजूदा दौर में हमें हिंदी के विभिन्न ई-टूल्स जैसे यूनिकोड, हिंदी की-बोर्ड, लीला स्वयं हिंदी शिक्षण सॉफ्टवेयर, अनुवाद ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, श्रुतलेखन, ई-महाशब्दकोश आदि का अधिकाधिक प्रयोग सुनिश्चित करना चाहिए ।

मॉरीशस में 18-20 अगस्त, 2018 को आयोजित किए गए 11वें विश्व हिंदी सम्मेलन में भी यह तथ्य उजागर हुआ है कि वैश्विक स्तर पर हिंदी तेजी से अपनी नई पहचान स्थापित कर रही है । तथापि, पहले हमें राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को वह उच्चतम स्थान दिलाने के लिए कटिबद्ध होना होगा जिसकी वह अधिकारिणी है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे सामूहिक

एवं सार्थक प्रयासों से निकट भविष्य में हमें सकारात्मक परिणाम अवश्य प्राप्त होंगे ।

मेरे प्रिय देशवासियों, हमें हिंदी का प्रचार-प्रसार केवल सरकारी स्तर तक सीमित न रख कर इसे भारत के जन-जन तक ले जाना होगा ताकि सरकार की जन कल्याणकारी योजनाओं का लाभ देश के प्रत्येक नागरिक को मिल सके । साथ ही, हमें न केवल भारत अपितु पूरे विश्व में हिंदी भाषा का प्रकाश फैलाने के लिए अपना योगदान देना होगा ।

हिंदी दिवस के अवसर पर आप सब को पुनः मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ ।

जय हिंद ।

(राजनाथ सिंह)

नई दिल्ली,

14 सितंबर, 2018

रविशंकर प्रसाद
RAVI SHANKAR PRASAD

सत्यमेव जयते

मंत्री
विधि एवं न्याय
और
इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी
भारत सरकार
MINISTER OF
LAW & JUSTICE
and
ELECTRONICS & IT
GOVERNMENT OF INDIA

संदेश

हिंदी दिवस के शुभ अवसर पर आप सभी को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं ।

14 सितंबर हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने वाला गरिमामय दिवस है । सन् 1949 में इसी दिन हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी तथा संविधान के अनुच्छेद 351 के अंतर्गत हिंदी के प्रचार-प्रसार सहित भारत की सामासिक संस्कृति का विकास करने वाली भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई ।

आज के सूचना प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट के युग में इसका बढ़ता हुआ प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि यह एक प्रगतिशील भाषा है जो किसी भी पीढ़ी के साथ जुड़ने में सक्षम है । केवल इतना ही नहीं इसकी सरल एवं लचीली प्रकृति के कारण हिंदीतर भाषी लोग भी बड़ी संख्या में इसे अपनाने लगे हैं । आज संपूर्ण देश में हिंदी भाषा में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है । हिंदी में विभिन्न भारतीय भाषाओं के कई शब्दों को आत्मसात् करते हुए सरल हिंदी भाषा का रूप ले लिया है ।

मुझे यह बताते हुए अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि विधायी विभाग में 14 सितंबर से 28 सितंबर, 2018 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया जा रहा है । आप सभी इस पखवाड़े में सम्मिलित होकर अपना बहुमूल्य योगदान दें और

अधिक से अधिक सरकारी कार्य राजभाषा हिंदी में करने का संकल्प लें ।

मुझे विश्वास है कि हिंदी की प्रगति में आप लोगों का सामूहिक प्रयास निरंतर बना रहेगा तथा आने वाले दिनों में हिंदी का और अधिक प्रचार एवं विकास होगा और यह नित नए शिखर छुएगी ।

जय हिंद !

नई दिल्ली

14 सितंबर, 2018

(रविशंकर प्रसाद)

Room No. 402, 'A' Wing, Shastri Bhawan, New Delhi-110001. Phone : 23387557, 23384567, 23386615 FAX : 23384241

एक देश एक चुनाव : वर्तमान आवश्यकता

*प्रो. (डा.) अशोक कुमार अवस्थी

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति ने अपने अभिभाषण में एक बार पुनः लोकसभा तथा विधान सभाओं के चुनाव एक साथ कराने की आवश्यकता पर बल दिया है। प्रधान मंत्री ने भी पिछले कई मौकों पर "एक देश एक चुनाव" के लिए जनमत बनाने हेतु अपील की है। कहा जा रहा है कि 28 राज्यों वाले देश में हमेशा कहीं न कहीं के चुनाव हो रहे हैं, जिससे दैनिन्दिनी काम में रुकावट आती है और विकास बाधित होता है। सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों इलेक्शन मोड़ में रहते हैं आरोपों-प्रत्यारोपों का सतत दौर चला करता है तथा आदर्श चुनाव संहिता लगने के कारण सरकारी कामकाज पर दुष्प्रभाव पड़ता है। यही नहीं इन चुनावों के नतीजे केन्द्र सरकार के कामकाज का प्रतिबिम्ब करार दिए जाते हैं तथा हर विजेता इनका अर्थान्वयन अपने पक्ष में प्रचारित करता पाया जाता है। यों तो जनतन्त्र में चुनाव रूटीन की बात होनी चाहिए तथा परिणामों को सतही स्तर पर ही लिया जाना चाहिए लेकिन हर हार जीत पर मीडिया भी चटखारे लेकर विश्लेषण और आकलन करती है।

सन् 1967 तक, अपवादों को छोड़कर, लोकसभा तथा विधान सभाओं के चुनाव साथ ही होते थे। लेकिन 1971 में इंदिराजी ने लोकसभा को भंग कराके समय से पूर्व चुनाव कराए थे, कांग्रेस विभाजन के बाद हुए इस चुनाव में उन्हें भारी बहुमत मिला था। 1975 में आपातकाल के समय लोकसभा का कार्यकाल बढ़ाया गया लेकिन जब 1977 में चुनाव हुए तो जनता पार्टी प्रचंड बहुमत में जीती। उस समय उत्तर भारत के नौ राज्यों में कांग्रेस की सरकारें थीं लेकिन सभी में कांग्रेस का सफाया हो गया था या राष्ट्रपति ने इनकी विधान सभाओं को भंग कर नया जनादेश प्राप्त करने की सलाह दी जिसे न्यायालय में चुनौती दी गई। **राजस्थान राज्य** बनाम **भारत संघ** (1977) में उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रपति की सलाह को राजनैतिक प्रश्न मानते हुए दखलंदाजी से मना कर दिया था। केंद्र सरकार का मत था कि लोकसभा चुनाव में हार का अर्थ है कि कांग्रेस नागरिकों

---

* पूर्व अधिष्ठाता एवं अध्यक्ष, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय तथा बनस्थली विद्यापीठ।

का विश्वास खो चुकी है अतः इसे सत्ता में बने रहने का औचित्य नहीं है। बाद में हुए चुनावों में सभी जगह जनता पार्टी की सरकार विजयी हुई थी।

केंद्र में किसी दल की विजय पर राज्य की विधान सभा को भंग कर चुनाव कराने का यह सिलसिला चलता रहता यदि 1994 में **एस. आर. बोम्मई** बनाम **भारत संघ** के सुप्रसिद्ध वाद में सुप्रीम कोर्ट ने अन्यथा सम्प्रेक्षण न किया होता। इस वाद में निर्धारित किया गया कि एक परिसंघीय संविधान में केंद्र और राज्यों के चुनाव अलग-अलग आधारों पर होते हैं अतः राज्य सरकार को इस आधार पर बर्खास्त नहीं किया जा सकता कि लोकसभा में वह दल पराजित हो गया है जिसकी सरकार है। इस निर्णय के बाद से राज्य सरकारों को बर्खास्त कर मध्यावधि चुनाव की परिपाटी पर लगाम लग गया। सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय उन दलों के लिए संजीवनी बन कर आया जो क्षेत्रीय हैं और प्रायः राज्य विशेष तक ही सीमित हैं। "एक देश एक चुनाव" का मुखर विरोध भी यही दल कर रहे हैं।

एक परिसंघीय संविधान में राज्य तथा केंद्र दो इकाई हैं। सातवीं अनुसूची में इनके मध्य विधायी शक्तियों का बटवारा है। अन्य उपबन्धों में प्रशासकीय तथा वित्तीय संबंधों का प्रावधान है। तर्क की कसौटी पर यह कहना सही हो सकता है कि दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं तथा जनादेश भी उन्हीं कार्यों के लिए होगा लेकिन जमीनी हकीकत यह है कि नगर पालिका या जिला पंचायतों तक के चुनावों की हार-जीत का विश्लेषण केंद्र में सत्तासीन दल के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। अमेरिका या इंग्लैंड की भांति भारत में दो ही राष्ट्रीय दल नहीं हैं। यहां गठबन्धन हैं तथा विभिन्न दल अपने स्थानीय हितों के लिए अधिक संवेदनशील हैं। चुनावों में अक्सर दल की बजाय व्यक्ति विशेष की महत्ता होती है। अमेरिका की भांति भारत में किसी भी दल में प्राइमरी या दलीय चुनाव नहीं होते हैं।

संसदीय प्रणाली तथा अध्यक्षीय प्रणाली की अपनी विशेषताएं हैं। यह माना जाता है कि संसदीय प्रणाली एक उत्तरदायी शासन देती है जब कि अध्यक्षीय प्रणाली स्थायित्व देती है। अमेरिका में राष्ट्रपति तथा संसद् दोनों का कार्यकाल निश्चित होता है तथा वहां चुनाव तय समय पर ही होता है जब कि इंग्लैंड में संसद् भंग करना कोई विशेष बात नहीं होती। वहां माना जाता है कि जैसे ही आवश्यकता महसूस हो नया जनादेश लेना ही बेहतर विकल्प है। अक्सर सत्तारूढ़ दल में नेतृत्व परिवर्तन चुनाव की सीटी बजा देता है। संविधान निर्माताओं ने अपने यहां स्थायित्व से अधिक उत्तरदायी शासन पर विश्वास व्यक्त किया था। यहां यह भी उल्लेखनीय है

कि इंग्लैंड हमारे उत्तर प्रदेश से भी छोटा है, परिसंघीय नहीं बल्कि ऐकिक है तथा वहां राज्यों की स्थिति वही है जो हमारे यहां नगरपालिकाओं की है ।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बार-बार चुनावों से आर्थिक व्यय भार पड़ता है, प्रशासकीय दिक्कतें आती हैं तथा सरकारी कामकाज थम सा जाता है । आचार संहिता लगते ही ओपिनियन पोल पर रोक लगा दी जाती है और नीति संबंधी नई घोषणाओं पर पाबन्दी लग जाती है । यदि कई जगह चुनाव हो रहे हैं तो वोट पड़ने के बाद मतपेटियां हफ्तों बंद रहती हैं क्योंकि परिणामों से अगले चरण के चुनाव या दूसरे राज्य में होने वाले चुनाव प्रभावित हो सकते हैं । चुनाव परिणामों का राजनैतिक ही नहीं बल्कि अपना मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है जो देश के अन्दर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहस का मुद्दा बनता है । भारत ऐसे विकासशील देश को हमेशा चुनावी मोड़ में रखने की वकालत नहीं की जा सकती । लेकिन जैसा परिसंघ हमने विकसित किया है उसमें क्षेत्रीय दलों की अनदेखी भी नहीं की जा सकती । यह क्षेत्रीय दल लोकसभा में अपनी स्थिति के कारण राजनैतिक मोल-भाव करते हैं और सत्तासीन सरकारें अक्सर उनके सामने निरीह हुईं हैं ।

मीडिया में कयास लगाए जा रहे हैं कि सन् 2019 के लोकसभा चुनाव के साथ किस प्रकार अधिसंख्य राज्यों के चुनाव कराए जा सकते हैं कतिपय क्षेत्रों में संविधान में संशोधन करने की भी बात कही जा रही है, लेकिन यह इतना आसान नहीं है क्योंकि क्षेत्रीय दल विरोध कर रहे हैं । एक साथ चुनाव कराने से राजनीति में धनबल तथा अपराधीकरण पर अंकुश लगेगा तथा स्थानीय कार्यकर्ताओं की अहमियत बढ़ेगी । सन् 1967 तक संसद् का चुनाव लड़ने वाले लोकल नेताओं पर ही निर्भर रहते थे । तब राजनीति नीचे से ऊपर होती थी जबकि अब उसका विलोम है । "एक देश एक चुनाव" के लिए जनमत जागृत करने की आवश्यकता है तथा इस पर पूरा होमवर्क करके ही कोई निर्णय लिया जाना बेहतर होगा । स्थायित्व तथा उत्तरदायित्व एक दूसरे के स्पर्धी नहीं बल्कि पूरक बनने चाहिए ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2018

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आरिफ खान **उर्फ** आगा खान **बनाम** उत्तराखंड राज्य	487
कविता चन्द्रकांत लखानी **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य	462
देव कन्या तिवारी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	381
नरेश और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य और अन्य	476
नवनीत कृष्णन् **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक	430
भारत का प्रतिस्पर्धा आयोग **बनाम** मैसर्स फास्ट वे ट्रांसमिशन प्रा. लि.	339
भारत संघ और अन्य **बनाम** पुष्पावती और अन्य	360
मोहम्मद अली **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	448
लोक प्रहरी, उसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य	393
सुच्चा सिंह सोढी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत **बनाम** बलदेव राज वालिया और एक अन्य	414

संसद् के अधिनियम

केन्द्रीय विश्वविद्यालय अधिनियम, 2009	33 – 60
प्रिवी कौंसिल के निर्णय	1 – 74
एक देश एक चुनाव : वर्तमान आवश्यकता	x – xii

पृष्ठ संख्या

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14)

– धारा 25ख और 25च – छंटनी के लिए पुरोभाव्य शर्तें – एक वर्ष की निरन्तर सेवा – यदि किसी कर्मकार ने अपनी सेवोन्मुक्ति से ठीक पूर्ववर्ती वर्ष में निरन्तर 240 दिनों से कम कार्य किया है तो वह धारा 25च का फायदा लेने का हकदार नहीं होगा भले ही उसने इससे पूर्व कतिपय वर्षों के दौरान एक कलैंडर वर्ष में 240 दिनों से अधिक कार्य किया हो ।

मोहम्मद अली बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 448

कानूनों का निर्वचन

– "भत्ते" अभिव्यक्ति – संविधान की अनुसूची 7, सूची 1 की प्रविष्टि 73 में आने वाली "भत्ते" अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत संसद् सदस्यों या भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करना और अन्य फायदे प्रदान करना भी आता है तथा वह संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के उपबंधों के अंतर्गत भी आती है ।

लोक प्रहरी, उसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से और एक अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 393

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302 – हत्या – घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होना – पारिस्थितिक साक्ष्य – दोषसिद्धि – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह सिद्ध हो गया हो कि मृतक द्वारा विष खाकर आत्महत्या की गई है और मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में गला घोंटकर उसकी हत्या करने का कोई चिह्न मौजूद नहीं पाया गया है, वहां अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।

देव कन्या तिवारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 381

पृष्ठ संख्या

– धारा 302, 364 और 379 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25, 26 और 27] – हत्या, अपहरण और लूट – संस्वीकृति कथन – दोषसिद्धि – जहां अभियुक्तों ने मृतकों का अपहरण करने और उनकी हत्या करने का संस्वीकृति कथन पुलिस अभिरक्षा में किया हो और उनके कथन के आधार पर कुछ तात्विक वस्तुओं की बरामदगी हुई हो, वहां ऐसे कथन का केवल उतना ही भाग ग्रहण किए जाने योग्य होगा जिसके परिणास्वरूप वस्तुओं की बरामदगी हुई थी तथा किसी अन्य तात्विक साक्ष्य के अभाव में केवल संस्वीकृति कथन और अभियुक्तों को अंतिम बार मृतकों के साथ देखे जाने के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना न्यायोचित नहीं होगा ।

नवनीत कृष्णन् बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 430

– धारा 307, 323, 324 और 34 – हत्या का प्रयत्न – दोषसिद्धि और दंडादेश – जब आहत व्यक्ति को पहुंची क्षतियों की प्रकृति गंभीर न हो और कोई स्थायी निःशक्तता कारित न हुई हो तथा अभियुक्त एक वर्ष का कारावास भुगतने के पश्चात् जमानत पर रहते हुए किसी आपराधिक गतिविधि में संलिप्त न पाए गए हों, तब अभियुक्तों पर अधिरोपित कारावास को उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक कम करने और आहत व्यक्ति को देय जुर्माने की रकम को बढ़ाने मात्र से न्याय की पूर्ति हो सकती है ।

नरेश और अन्य बनाम **उत्तराखंड राज्य और अन्य** 476

– धारा 366 – विवाह आदि करने को विवश करने के लिए स्त्री का अपहरण – अभियुक्त के विरुद्ध धारा 366 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए स्त्री के मात्र अपहरण की बात को साबित करना ही पर्याप्त नहीं होगा, अपितु यह साबित करना भी आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा स्त्री का अपहरण उसके साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए विवश करने अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उसे

पृष्ठ संख्या

विवश या विलुब्ध करने के आशय से किया गया था ।

कविता चन्द्रकांत लखानी बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** 462

– धारा 366 – विवाह आदि करने को विवश करने के लिए स्त्री का अपहरण – अपहरण स्त्री की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक होना – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह दर्शित होता हो कि अपीलार्थी-अभियोक्त्री और प्रत्यर्थी-अभियुक्त के बीच प्रेम-संबंध थे और अभियुक्त उसे बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया तथा विवाह करने की बात को लेकर उसके साथ मारपीट की और अभियोक्त्री द्वारा दर्ज रिपोर्ट में मारपीट के अभिकथन करने के पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर उत्पीड़न और लज्जा भंग करने का अभिकथन सोच-विचार करने के पश्चात् किया गया हो, वहां यह साबित न होने पर कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा अभियोक्त्री का अपहरण उसके साथ बलपूर्वक विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए विवश करने के आशय से किया गया था, वहां धारा 366 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त को उन्मोचित करना उचित होगा ।

कविता चन्द्रकांत लखानी बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** 462

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1)

– धारा 28 और 34 – भूमि का अर्जन – अतिरिक्त प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत न करने पर समुचित उपचार – धारा 28 या धारा 34 के अधीन प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत न करने के कारण उपलब्ध अनुकल्पी उपचार धारा 18 या धारा 28क के अधीन निर्देश करना नहीं है बल्कि संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलंब लेकर ही ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद को उठाया जा सकता है ।

भारत संघ और अन्य बनाम **पुष्पावती और अन्य** 360

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 106, अनुसूची 7, सूची 1, प्रविष्टि 73 [सपठित संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (1954 का 30) – धारा 8क, 8कक, 8कग और 6ख] – संसद् सदस्यों, भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को पेंशन – विधिमान्यता – संविधान में किसी भी सांविधानिक कृत्यकारी को पेंशन का संदाय करना आदिष्ट नहीं है बल्कि उसमें नियुक्ति की तारीख को सुसंगत विधि के अधीन संदेय किसी पेंशन को केवल संरक्षित किया गया है तथा संविधान में कतिपय सांविधानिक कृत्यकारियों के लिए पेंशन संदत्त करने का उल्लेख होने पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि संविधान में अन्य सांविधानिक कृत्यकारियों को पेंशन का संदाय करना प्रतिषिद्ध किया गया है ।

लोक प्रहरी, उसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से और एक अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** 393

– अनुच्छेद 133 [सपठित प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 की धारा 2, 4, 18, 19, 27, 41, 53(ख), 53(न) और 60] – अपील – न्यूज चैनलों का प्रसारण करने के लिए प्रसारक और मल्टी सिस्टम ऑपरेटर्स के बीच करार – मल्टी सिस्टम ऑपरेटरों में से एक द्वारा करार की शर्तों का भंग किया जाना – प्रसारक द्वारा करार अभिखंडित करते हुए, शास्ति अधिरोपित करना – अधिरोपित शास्ति विधिमान्य होते हुए भी युक्तियुक्त नहीं होना – यदि न्यूज चैनलों का प्रसारण करने के लिए प्रसारक और मल्टी सिस्टम आपरेटरों के बीच कोई करार किया जाता है और आपरेटरों में से किसी के भी द्वारा करार की शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन किया जाता है, तो यदि प्रसारक द्वारा करार रद्द करते हुए, कोई शास्ति अधिरोपित की जाती है तो यद्यपि, वह शास्ति विधिमान्य होती है, फिर भी यदि वह मामले के तथ्यों

पृष्ठ संख्या

को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्त नहीं है तो ऐसी शास्ति विधिमान्य होने के बावजूद रद्द की जा सकती है ।

भारत का प्रतिस्पर्धा आयोग बनाम **मैसर्स फास्ट वे ट्रांसमिशन प्रा. लि.** 339

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 3 – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्तों को अंतिम बार मृतकों के साथ देखा जाना – अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत परिस्थितियों की शृंखला में एक महत्वपूर्ण घटना होती है जिससे अभियुक्त की दोषिता पूर्णतः सिद्ध तो हो जाती है या कुछ निश्चितता के साथ उसकी दोषिता को इंगित कर सकती है, तथापि, केवल इस साक्ष्य से अभियुक्तों की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने वाले भार का निर्वहन नहीं हो सकता है और इसकी संपुष्टि होना आवश्यक है तथा केवल इस आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

नवनीत कृष्णन् बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 430

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 2, नियम 2(2) – द्वितीय वाद पर वर्जन – जब स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया प्रथम वाद और उस वाद को वापस लेने के पश्चात् करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए नए सिरे से फाइल किया गया पश्चात्वर्ती वाद भिन्न-भिन्न वाद-हेतुक पर आधारित हों और उनमें दावाकृत अनुतोष भी भिन्न-भिन्न हों तो आदेश 2, नियम 2 के अधीन वर्जन लागू नहीं होगा ।

सुच्चा सिंह सोढी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत बनाम **बलदेव राज वालिया और एक अन्य** 414

– आदेश 23, नियम 1(3) और आदेश 2, नियम 2 – वाद का वापस लिया जाना और नए सिरे से पश्चात्वर्ती वाद

पृष्ठ संख्या

फाइल किया जाना – जब स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया प्रथम वाद, नए सिरे से समुचित कार्यवाहियां फाइल करने का कथन करते हुए वापस लिया जाता है तो वाद को वापस लेने के लिए दी गई अनुज्ञा से न्यायालय द्वारा नए सिरे से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करना भी प्रतिबिंबित होता है और आदेश 23, नियम 1(3) के अधीन अपेक्षाएं पूरी करके फाइल किए गए नए वाद के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह आदेश 2, नियम 2 के अधीन वर्जित है ।

सुच्चा सिंह सोढी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत बनाम **बलदेव राज वालिया और एक अन्य** 414

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61)

– धारा 20 और 50 – विनिषिद्ध वस्तु (चरस) कब्जे में रखना – तलाशी और अभिग्रहण – प्रक्रिया – जहां छापामार पुलिस दल द्वारा अभियुक्त की तलाशी, धारा 50 की आज्ञापक अपेक्षाओं के अनुसार, किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में न की गई हो और स्वयं तलाशी लेकर अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु (चरस) अभिगृहीत की गई हो, वहां अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों का अनुपालन न होने के कारण अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने का हकदार होगा ।

आरिफ खान उर्फ **आगा खान** बनाम **उत्तराखंड राज्य** 487

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2018] 3 उम. नि. प.

जुलाई-सितम्बर, 2018

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3	4		5	
1.	फेडरेशन ऑफ इंडियन मिनरल्स इंडस्ट्रीज़ **बनाम** भारत संघ और एक अन्य (13 अक्तूबर, 2017)	[2018] 3 1	—	—	—	—
2.	नरेन्द्र और अन्य **बनाम** अजबराव **मार्फत** विधिक प्रतिनिधिगण (26 अक्तूबर, 2017)	36	—	—	—	—
3.	शिव नारायण नागर और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (13 नवम्बर, 2017)	48	2018	233	—	—
4.	कॉमन काज़ **बनाम** भारत संघ और अन्य (28 नवम्बर, 2017)	58	—	—	—	—
5.	मदन मोहन **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य (14 दिसम्बर, 2017)	69	—	—	—	—

1	2	3	4	5
6.	नगय्या और एक अन्य **बनाम** श्रीमती चौदम्मा (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत और एक अन्य (8 जनवरी, 2018)	[2018] 3 79	2018 459	(2018) 2 504
7.	हिमाचल प्रदेश राज्य **बनाम** राज कुमार (8 जनवरी, 2018)	102	329	2 69
8.	अतुल ठाकुर **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य आदि आदि (19 जनवरी, 2018)	117	570	2 496
9.	एच. वी. निर्मला और एक अन्य **बनाम** आर. शर्मिला और एक अन्य (25 जनवरी, 2018)	132	1264	(2018) 3 303
10.	मध्य प्रदेश राज्य और अन्य **बनाम** मनोज शर्मा और अन्य (25 जनवरी, 2018)	140	1148	3 329
11.	राजेन्द्र राजोरिया **बनाम** जगत नारायण थापक और एक अन्य (23 फरवरी, 2018)	153	1229	— —
12.	दिनेशभाई चंदूभाई पटेल **बनाम** गुजरात राज्य और अन्य (5 जनवरी, 2018)	165	314	(2018) 3 104
13.	नवीन कुमार **बनाम** विजय कुमार और अन्य (6 फरवरी, 2018)	180	983	3 1

1	2	3		4		5	
14.	दाताराम सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य (6 फरवरी, 2018)	[2018] 3	199	2018	980	(2018) 3	22
15.	सुंदरम् फाइनेंस लि., तिलक ज्येष्ठ प्रबंधक (विधिक) द्वारा प्रतिनिधित्व **बनाम** अब्दुल समद और एक अन्य (15 फरवरी, 2018)		210		965	3	622
16.	जी. सरस्वती और एक अन्य **बनाम** रतीनाम्मल और अन्य (15 फरवरी, 2018)		228		949	3	340
17.	सुनील सामदरिया **बनाम** भारत संघ **मार्फत** सचिव, विधि और न्याय मंत्रालय और अन्य (23 फरवरी, 2018)		234		1174	–	–
18.	पंकज जैन **बनाम** भारत संघ और एक अन्य (23 फरवरी, 2018)		256		1155	(2018) 5	743
19.	बन्नारेड्डी और अन्य **बनाम** कर्नाटक राज्य और अन्य (12 मार्च, 2018)		283		1454	5	790
20.	भरतकुमार रमेशचन्द्र बरोट **बनाम** गुजरात राज्य (26 मार्च, 2018)		298		1598	–	–

1	2	3		4		5	
21.	गणपति और एक अन्य **बनाम** तमिलनाडु राज्य (27 मार्च, 2018)	[2018] 3	306	2018	1635	(2018) 5	549
22.	पी. मीनाक्षीसुन्दरम् **बनाम** पी. विजय कुमार और एक अन्य (28 मार्च, 2018)		318	—	—	—	—
23.	भारत का प्रतिस्पर्धा आयोग **बनाम** मैसर्स फास्ट वे ट्रांसमिशन प्रा. लि. (24 जनवरी, 2018)		339	—	—	(2018) 4	316
24.	भारत संघ और अन्य **बनाम** पुष्पावती और अन्य (6 फरवरी, 2018)		360	2018	1032	(2018) 3	28
25.	देव कन्या तिवारी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य (12 मार्च, 2018)		381		1377	(2018) 5	734
26.	लोक प्रहरी, उसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से और एक अन्य **बनाम** भारत संघ और अन्य (16 अप्रैल, 2018)		393		2077	—	—
27.	सुच्चा सिंह सोढी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत **बनाम** बलदेव राज वालिया और एक अन्य (13 अप्रैल, 2018)		414		2241	—	—
28.	नवनीत कृष्णन् **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक (16 अप्रैल, 2018)		430		2027	—	—

1	2	3	4	5
29.	मोहम्मद अली **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य (16 अप्रैल, 2018)	[2018] 3 448	2018 2194	— —
30.	कविता चन्द्रकांत लखानी **बनाम** महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य (24 अप्रैल, 2018)	462	2099	— —
31.	नरेश और अन्य **बनाम** उत्तराखंड राज्य और अन्य (25 अप्रैल, 2018)	467	2332	— —
32.	आरिफ खान **उर्फ** आगा खान **बनाम** उत्तराखंड राज्य (27 अप्रैल, 2018)	487	2123	

[2018] 3 उम. नि. प. 339

भारत का प्रतिस्पर्धा आयोग

बनाम

मैसर्स फास्ट वे ट्रांसमिशन प्रा. लि.

24 जनवरी, 2018

न्यायमूर्ति रोहिंटन फलि नरीमन और न्यायमूर्ति नवीन सिन्हा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 133 [सपठित प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 की धारा 2, 4, 18, 19, 27, 41, 53(ख), 53(न) और 60] – अपील – न्यूज चैनलों का प्रसारण करने के लिए प्रसारक और मल्टी सिस्टम आपरेटर्स के बीच करार – मल्टी सिस्टम आपरेटरों में से एक द्वारा करार की शर्तों का भंग किया जाना – प्रसारक द्वारा करार अभिखंडित करते हुए, शास्ति अधिरोपित करना – अधिरोपित शास्ति विधिमान्य होते हुए भी युक्तियुक्त नहीं होना – यदि न्यूज चैनलों का प्रसारण करने के लिए प्रसारक और मल्टी सिस्टम आपरेटरों के बीच कोई करार किया जाता है और आपरेटरों में से किसी के भी द्वारा करार की शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन किया जाता है, तो यदि प्रसारक द्वारा करार रद्द करते हुए, कोई शास्ति अधिरोपित की जाती है तो यद्यपि, वह शास्ति विधिमान्य होती है, फिर भी यदि वह मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, युक्तियुक्त नहीं है तो ऐसी शास्ति विधिमान्य होने के बावजूद रद्द की जा सकती है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी सं. 5, जो "डे एंड नाइट न्यूज" के रूप में ज्ञात न्यूज चैनल का प्रसारक है और प्रत्यर्थी सं. 1 से 4, जो मल्टी सिस्टम ऑपरेटर्स (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् "एम. एस. ओ." कहा गया है) जो उन व्यक्तियों के लिए पूर्वोक्त चैनल को चलाते हैं, जो केबल टी. वी. देखते हैं, के बीच तारीख 1 अगस्त, 2010 को एक करार हुआ था । उसी दिन प्रसारक और एम. एस. ओ. के बीच एक चैनल नियोजन करार भी हुआ था, सभी को फास्ट अवे समूह से संबंधित कहा गया है । उक्त करारों के खंड का अवलंब लेते हुए पूर्वोक्त करारों को तारीख 19 जनवरी, 2011 के करार समाप्ति की नोटिस द्वारा समाप्त कर दिया गया था, जिसके लिए

मात्र 30 दिन के नोटिस देने पर ऐसा उन्हें करने का हक था । ऐसा होने पर प्रत्यर्थी सं. 5 ने पूर्वोक्त करार समाप्ति के बारे में शिकायत की । अन्वेषक महानिदेशक ने प्रसारक की शिकायतों पर विचार किया और मामले का अन्वेषण किया तथा अन्ततोगत्वा, उन्होंने प्रतिस्पर्धा आयोग को अपनी रिपोर्ट सुपुर्द की जिसमें उन्होंने यह पाया था कि उक्त एम. एस. ओ. ऐसे कार्यों में संलिप्त है जिससे प्रतिस्पर्धा आयोग अधिनियम, 2002 की धारा 3 और 4 का उल्लंघन होता है । इस रिपोर्ट पर विचार करने और विवाद के पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात्, प्रतिस्पर्धा आयोग ने तारीख 3 जुलाई, 2012 के अपने सविस्तार आदेश द्वारा प्रथमतः यह अभिनिर्धारित किया कि उसके अनुसार, धारा 3 और 4 के प्रयोजन के लिए पंजाब और चंडीगढ़ राज्य को सुसंगत बाजार को देखना होगा । इस बाजार के संबंध में, जहां तक केबल टी. वी. का संबंध है, यह कथन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि एम. एस. ओ. समूह को उक्त बाजार में अभिदाता शेयर का 85% हिस्सा प्राप्त था और इसलिए वह प्रधान स्थिति में था जिसका दुरुपयोग किया जा सकता था । अंततोगत्वा, तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि उक्त समूह ने वर्तमान मामले के सिवाय देय तिथि के पूर्व कोई भी इसी प्रकार के किसी करार को कभी भी समाप्त नहीं किया था और यह भी पाया गया कि यह निम्न टी. आर. पी. रेटिंग के कारण होना नहीं कहा जा सकता है क्योंकि शिकायतकर्ता की टी. आर. पी. रेटिंग भी प्रायः कुछ अन्य चैनलों के बराबर थी । जैसा कि उपर्युक्त है, से इस बात की पुष्टि होती है कि चैनलों के प्रसारण भंग हुए थे । आयोग ने यह भी मत व्यक्त किया कि विरोधी पक्षकार ने यह तर्क दिया है कि ट्राई विनियमों के अनुसार वह "अवश्य करने" के लिए आबद्ध नहीं है जैसाकि इत्तिलाकर्ता के विरुद्ध जो "अवश्य उपलब्ध कराने" के उपबंधों से आबद्ध है । तथापि, विरोधी पक्षकार समूह के इस तर्क से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इत्तिलाकर्ता इसके चैनलों के प्रसारण के लिए उस पर निर्भर है और यदि इस बात से इनकार किया जाता है कि इसे बाजार में पहुंचाया नहीं जा सकता है । यह इत्तिलाकर्ता नहीं है जिसने विरोधी पक्षकार समूह द्वारा प्रभारित नियोजन शुल्क का संदाय नहीं किया था । नियोजन या ढुलाई प्रभारों का संदाय नहीं करने के बारे में कोई विवाद नहीं था । पूर्ववर्ती चैनलों के प्रसारण के लिए इत्तिलाकर्ता और विरोधी पक्षकार समूह के बीच सम्यक् करार निष्पादित हुआ था । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि विरोधी पक्षकार समूह के कृत्यों के कारण इत्तिलाकर्ता को बाजार में पहुंच बनाने और संपूर्ण अवसर

प्राप्त करने से इनकार हुआ है और यह अभिनिर्धारित किया कि इससे अधिनियम, 2002 की धारा 4(2)(ग) के उपबंधों का उल्लंघन होना सिद्ध होता है । पूर्वोक्त निष्कर्ष निकालने के पश्चात्, आयोग ने अधिनियम, 2002 की धारा 27 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, 8,40,01,141/- रुपए की शास्ति अधिरोपित किया । एम. एस. ओ. समूह ने अपील अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की, जिसमें पूर्वोक्त अधिकरण ने मामले को उसके पक्ष में पाया । आवश्यक रूप से, अधिकरण का यह निष्कर्ष कि धारा 4(2)(ग) के अधीन बाजार में पहुंच से इनकार करना मात्र एक प्रतियोगी द्वारा दूसरे अन्य प्रतियोगी के साथ ही किया जा सकता है और यह कि क्योंकि प्रसारक को एम. एस. ओ. के साथ प्रतिस्पर्धा करना नहीं कहा जा सकता है, इसलिए, न तो अधिनियम, 2002 की धारा 3 या धारा 4 का उल्लंघन नहीं होता है । इससे व्यथित होकर, माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले के तथ्यों से, यह स्पष्ट होता है कि "प्रधान स्थिति" स्पष्टतः दृष्टिगत होती है । धारा 4 का स्पष्टीकरण विनिर्दिष्टतः इस प्रधान स्थिति के प्रति निर्देश करता है कि एक उद्यम या उसके समूह द्वारा सुसंगत बाजार में उपभोग किया जाता है, जैसा कि इसमें पूर्व में कथित है, पंजाब और चंडीगढ़ के केबल टी. वी. बाजार में जो प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 को सुसंगत बाजार में अभिभावी प्रतिस्पर्धा बलों की स्वतंत्रतापूर्वक प्रवर्तित कराने में समर्थ करता है । आयोग ने तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि पूर्वोक्त एम. एस. ओ. समूह के पास पंजाब और चंडीगढ़ राज्य के पूर्वोक्त केबल टी. वी. बाजार में अभिदाताओं के हिस्से का 85% है और वे पूर्वोक्त बाजार में अभिभावी प्रतिस्पर्धा बलों को स्वतंत्र रूप से प्रवर्तित करने में समर्थ थे । इस निष्कर्ष को अपील अधिकरण द्वारा अपास्त नहीं किया गया है । यह भी कि प्रत्यर्थी स्पष्टीकरण (क)(ii) के भीतर आता है, साथ ही यद्यपि यह पर्याप्त है कि वह स्पष्टीकरण की उपधारा (क)(i) के भीतर आता है । उपधारा (ii) उस शक्ति की स्थिति के प्रति निर्दिष्ट करता है जो कि प्रत्यर्थी द्वारा उपभोग किया जा रहा है जो उसे अपने पक्ष में उपभोक्ताओं को प्रभावित करने में समर्थ बनाता है । न्यायालय के मत में, विद्वान् अपर सालिसिटर जनरल श्री नरसिम्हा ने धारा 2(च)(ii) में परिभाषा का अवलंब लेते हुए, सही ही यह तर्क दिया है कि प्रसारक निश्चित तौर पर, पूर्वोक्त उपधारा में अंतर्विष्ट व्यापक भाषा के भीतर आता है । न्यायालय यह भी जोड़ सकता है कि सभी प्रकार की ऋजुता के साथ प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल भी इससे सहमत हैं । मामले

में ऐसा होने पर, यह स्पष्ट होता है कि क्योंकि स्पष्टीकरण के खंड (क) की दोनों उपधाराएं (i) और (ii) लागू होती हैं इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी को धारा 4 के प्रयोजन के लिए "प्रधान स्थिति" में होना कहा जा सकता है । प्रश्न जो अब उद्‌भूत होता है, यह है कि क्या धारा 4(2)(ग) के अधीन ऐसी प्रधान स्थिति का दुरुपयोग हुआ है जहां यह कहा जा सके कि किसी तरीके से बाजार में पहुंच के इनकार के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी इस प्रकार के व्यवहार में सम्मिलित है । यह प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों में, प्रसारक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 5 ने एक प्रसारण करार किया था जो 1 अगस्त, 2010 से एक वर्ष की अवधि के लिए हुआ था । इसे तारीख 19 जनवरी, 2011 की नोटिसों द्वारा प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त अवधि के भीतर समाप्त करना चाहा था । टी. डी. एस. ए. टी. ने तारीख 25 अप्रैल, 2012 के अपने आदेश द्वारा सुसंगत दूरसंचार विनियमों के विनियम 4.2 का उल्लेख किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थियों ने पूर्वोक्त विनियमों का पालन नहीं किया है, क्योंकि उन्होंने समाप्ति की नोटिसों में समाप्ति के लिए कोई कारण नहीं दिया है । मामले में ऐसा होने पर, यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा प्रधान स्थिति का दुरुपयोग किया गया है मात्र इस कारण से कि प्रसारक ने 19 फरवरी, 2011 से 1 अगस्त, 2011 को और उसके पश्चात् बाजार में पहुंच होने से इनकार कर दिया था । शब्द "किसी तरीके में" एक व्यापक शब्द है और इसे इसका स्वाभाविक अर्थान्वयन दिया जाना चाहिए । मामले में ऐसा होने पर, अपील अधिकरण के कारणों की प्रशंसा करना कठिन है कि क्योंकि प्रसारक और एम. एस. ओ. एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा में नहीं है, इसलिए, धारा 3 और 4 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । जैसा कि हमारे द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, प्रत्यर्थी एम. एस. ओ. को "प्रधान स्थिति" में है से वर्तमान मामले में धारा 4 का प्रयोजन स्पष्टतः सिद्ध होता है और उस एवज में आयोग के निष्कर्ष को भी अपील अधिकरण द्वारा अपास्त नहीं किया गया है । यदि ऐसा होता है तो जब तथ्यों के आधार पर "प्रधान स्थिति" पाई जाती है कि क्या प्रसारक एम. एस. ओ. के साथ प्रतिस्पर्धा में है, तो यह कारक धारा 4(2)(ग) के लागू होने के लिए असंगत हो जाता है, जो न्यायालय द्वारा पाया गया है, क्योंकि यह इस साधारण कारण से लागू होता है कि प्रसारक ने उक्त प्रसारक और प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 के बीच करार की अवैध समाप्त के कारण बाजार में पहुंच से इनकार किया है । तथापि, ऐसा होते हुए भी, न्यायालय का यह मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी

चाहिए थी । प्रतिस्पर्धा आयोग का यह निष्कर्ष कि प्रसारक की टी. आर. पी. रेटिंग निम्न थी, क्योंकि यह अन्य चैनलों के प्रायः बराबर थी, सही नहीं है । प्रत्यर्थी द्वारा न्यायालय के समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र में, उन्होंने प्रत्यर्थी चैनल की टी. ए. एम. रेटिंग के बारे में विनिर्दिष्टतः कथन किया है, जैसा कि अन्य न्यूज चैनलों ने विरोध किया है जो सितम्बर, 2010 के माह से जनवरी, 2011 के बीच है, निम्नलिखित है :–

क्रम सं.	चैनल का नाम	पांच माह की अवधि (सितम्बर, 2010 से जनवरी, 2011) के दौरान के चैनल की औसत टीआरपी
1.	आज तक	33.6
2.	डे एंड नाइट न्यूज	3.8
3.	आईबीएन7	24.7
4.	एमएच-1 न्यूज	7.0
5.	एनडीटीवी इंडिया	22.5
6.	पीटीसी न्यूज	35.6
7.	स्टार न्यूज	27.9
8.	जी न्यूज	21.5

पूर्वोक्त चार्ट के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि "डे एंड नाइट" न्यूज चैनल की दी गई टी. आर. पी. किसी अन्य चैनल की दी गई टी. आर. पी. अत्यधिक निम्न है और यह कि प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल यह कथन करने में सही थे कि मध्य अवधि में प्रसारक के साथ करार समाप्त करने का यही कारण था । यद्यपि, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि इस मामले के तथ्यों के आधार पर धारा 4(2)(ग) का भंग हुआ है, यद्यपि, करार समाप्ति के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा दिए गए कारण अन्यथा न्यायोचित है फिर भी, न्यायालय यह महसूस करता है कि वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए । (पैरा 8, 9, 10, 11,12 और 13)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल अपील सं. 7215.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 133 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री पी. एस. नरसिम्हा, अपर सालिसिटर जनरल, (श्रीमती) सुचित्रा ए. चिताले, (सुश्री) तान्वी कक्कड़, गुरज्योत सेट्ठा और (सुश्री) जयंती अतुल चिताले, अधिवक्तागण
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री मित मल्होत्रा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वैभव गगर, जी. एस. ओबरॉय, (सुश्री) रीना राठौड़, (सुश्री) स्मृति जैन, (सुश्री) श्वेता राथ और (श्रीमती) प्रज्ञा बघेल, अधिवक्तागण

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति रोहिंटन फलि नरीमन ने दिया ।

न्या. नरीमन – भारत के प्रतिस्पर्धा आयोग ने वर्तमान अपील में प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 के अधीन अपने कार्यों से संबंधित कतिपय रुचिकर प्रश्नों को उद्भूत किया है । संविवाद, जो वर्तमान मामले में उद्भूत हुए है, का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक तथ्य संक्षिप्ततः इस प्रकार हैं :–

> प्रत्यर्थी सं. 5, जो 'डे एंड नाइट न्यूज' के रूप में ज्ञात न्यूज चैनल का प्रसारक है और प्रत्यर्थी सं. 1 से 4, जो मल्टी सिस्टम आपरेटर्स (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् 'एम. एस. ओ.' कहा गया है) जो उन व्यक्तियों के लिए पूर्वोक्त चैनल को चलाते हैं, जो केबल टी. वी. देखते हैं, के बीच तारीख 1 अगस्त, 2010 को एक करार हुआ था । उसी दिन प्रसारक और एम. एस. ओ. के बीच एक चैनल नियोजन करार भी हुआ था, सभी को फास्ट अवे समूह से संबंधित कहा गया है । उक्त करारों के खंड का अवलंब लेते हुए पूर्वोक्त करारों को तारीख 19 जनवरी, 1911 के करार समाप्ति की नोटिस द्वारा समाप्त कर दिया गया था, जिसके लिए मात्र 30 दिन के नोटिस देने पर ऐसा उन्हें करने का हक था । ऐसा होने पर प्रत्यर्थी सं. 5 ने पूर्वोक्त करार समाप्ति के बारे में शिकायत की । अन्वेषक महानिदेशक ने प्रसारक की शिकायतों पर विचार किया और मामले का अन्वेषण किया तथा अन्ततोगत्वा, उन्होंने प्रतिस्पर्धा आयोग को अपनी रिपोर्ट सुपुर्द की जिसमें उन्होंने यह पाया था कि उक्त एम. एस. ओ. ऐसे

कार्यों में संलिप्त हैं जिससे प्रतिस्पर्धा आयोग अधिनियम, 2002 की धारा 3 और 4 का उल्लंघन होता है । इस रिपोर्ट पर विचार करने और विवाद के पक्षकारों की सुनवाई करने के पश्चात्, प्रतिस्पर्धा आयोग ने तारीख 3 जुलाई, 2012 के अपने सविस्तार आदेश द्वारा प्रथमतः यह अभिनिर्धारित किया कि उसके अनुसार, धारा 3 और 4 के प्रयोजन के लिए पंजाब और चंडीगढ़ राज्य को सुसंगत बाजार को देखना होगा । इस बाजार के संबंध में, जहां तक केबल टी. वी. का संबंध है, यह कथन करते हुए निष्कर्ष निकाला कि एम. एस. ओ. समूह को उक्त बाजार में अभिदाता शेयर का 85% हिस्सा प्राप्त था और इसलिए वह प्रधान स्थिति में था जिसका दुरुपयोग किया जा सकता था । अंततोगत्वा, तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि उक्त समूह ने वर्तमान मामले के सिवाय देय तिथि के पूर्व कोई भी इसी प्रकार के किसी करार को कभी भी समाप्त नहीं किया था और यह भी पाया गया कि यह निम्न टी.आर.पी. रेटिंग के कारण होना नहीं कहा जा सकता है क्योंकि शिकायतकर्ता की टी. आर. पी. रेटिंग भी प्रायः कुछ अन्य चैनलों के बराबर थी । उसके बाद, आयोग ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला –

> '6.4.9. साक्ष्य, जैसा कि उपर्युक्त है, से इस बात की पुष्टि होती है कि चैनलों के प्रसारण भंग हुए थे । आयोग ने यह भी मत व्यक्त किया कि विरोधी पक्षकार ने यह तर्क दिया है कि ट्राई विनियमों के अनुसार वह 'अवश्य करने' के लिए आबद्ध नहीं है जैसाकि इत्तिलाकर्ता के विरुद्ध जो 'अवश्य उपलब्ध कराने' के उपबंधों से आबद्ध है । तथापि, विरोधी पक्षकार समूह के इस तर्क से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इत्तिलाकर्ता इसके चैनलों के प्रसारण के लिए उस पर निर्भर है और यदि इस बात से इनकार किया जाता है कि इसे बाजार में पहुंचाया नहीं जा सकता है । यह इत्तिलाकर्ता नहीं है जिसने विरोधी पक्षकार समूह द्वारा प्रभारित नियोजन शुल्क का संदाय नहीं किया था । नियोजन या ढुलाई प्रभारों का संदाय नहीं करने के बारे में कोई विवाद नहीं था । पूर्ववर्ती चैनलों के प्रसारण के लिए इत्तिलाकर्ता और विरोधी पक्षकार समूह के बीच सम्यक् करार निष्पादित हुआ था ।
>
> 6.4.10. तथापि, इस तथ्य के कारण कि विरोधी पक्षकारों

का अभिदाता आधार 40 लाख से अधिक है, प्रत्येक प्रसारक जिसमें इत्तिलाकर्ता सम्मिलित था, अपने नेटवर्क के लिए उस पर निर्भर थे । ऐसी परिस्थिति में, आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि विरोधी पक्षकार अपने पक्ष में बाजार को प्रभावित करने की स्थिति में है । अपनी बाजार शक्ति के कारण विरोधी पक्षकार समूह ने इत्तिलाकर्ता के चैनलों को प्रसारित करने के अवसर से इनकार किया है । समूह के पास करार का प्रसारण करने के लिए कोई न्यायोचित कारण नहीं है और अपने आचरण को न्यायोचित ठहराने के लिए इसका तर्क किसी ठीक आधार पर आधारित नहीं है । इत्तिलाकर्ता के चैनलों को प्रसारित नहीं करने के लिए स्पेक्ट्रम की कमी के बारे में इसका तर्क इस तथ्य के आमूक पर कि स्पेक्ट्रम को प्रसारणकर्ता से प्रीमियम प्रभारित करने पर इत्तिलाकर्ता के साथ करार करते समय ही नियंत्रित करने के लिए विचार किया जाना चाहिए था । जब एक बार इस बात पर विचार कर लिया गया तो करार की अवधि के दौरान स्पेक्ट्रम की कमी का प्रश्न उद्भूत नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, निम्न टी. आर. पी. के तर्क को भी न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता है, क्योंकि पूर्व में, करार के मध्य में टी. आर. पी. रेटिंग के आधार पर किसी करार के पुनर्विलोकन का चलन नहीं हुआ है । आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि स्पेक्ट्रम की कमी और निम्न टी. आर. पी. के तर्क मात्र अपने आचरण को न्यायोचित ठहराने के लिए पश्चात् विचारित कार्य है ।

6.4.11. विरोधी पक्षकार के आचरण के परिणामस्वरूप इत्तिलाकर्ता-प्रसारक की हानि के साथ ही साथ उन उपभोक्ताओं की सेवाओं से इनकार करना भी है जो इत्तिलाकर्ता के चैनलों को देखना चाहते हैं । उस तारीख को इत्तिलाकर्ता, पंजाब और चंडीगढ़ राज्य में केबल टी. वी. पर मात्र 56 हजार घरों को ही केबल टी. वी. पहुंचा पा रहा है, जबकि लगभग 45 लाख घर केबल टी. वी. से जुड़े हुए हैं । इस प्रकार, इत्तिलाकर्ता को विरोधी पक्षकारों के आचरण के कारण संपूर्ण सुसंगत बाजार से प्रभावी तौर पर हटना पड़ गया है ।

6.4.12. इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के प्रकाश में, आयोग ने यह मत व्यक्त किया कि विरोधी पक्षकार समूह के कृत्यों के कारण इत्तिलाकर्ता को बाजार में पहुंच बनाने और संपूर्ण अवसर प्राप्त करने से इनकार हुआ है और यह अभिनिर्धारित किया कि इससे अधिनियम, 2002 की धारा 4(2)(ग) के उपबंधों का उल्लंघन होना सिद्ध होता है ।'

2. पूर्वोक्त निष्कर्ष निकालने के पश्चात्, आयोग ने अधिनियम, 2002 की धारा 27 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, 8,40,01,141/- रुपए की शास्ति अधिरोपित किया ।

3. एम. एस. ओ. समूह ने अपील अधिकरण के समक्ष अपील फाइल की, जिसमें पूर्वोक्त अधिकरण ने मामले को उसके पक्ष में पाया । आवश्यक रूप से, अधिकरण का यह निष्कर्ष कि धारा 4(2)(ग) के अधीन बाजार में पहुंच से इनकार करना मात्र एक प्रतियोगी द्वारा दूसरे अन्य प्रतियोगी के साथ ही किया जा सकता है और यह कि क्योंकि प्रसारक को एम. एस. ओ. के साथ प्रतिस्पर्धा करना नहीं कहा जा सकता है, इसलिए, न तो अधिनियम, 2002 की धारा 3 या धारा 4 का उल्लंघन नहीं होता है । इस संक्षिप्त आधार पर अपील मंजूर की गई ।

4. प्रतिस्पर्धा आयोग के विद्वान् अपर सालिसिटर जनरल श्री पी. एस. नरसिम्हा, जो हमारे समक्ष एकमात्र अपीलार्थी हैं, ने यह तर्क दिया है कि प्रतिस्पर्धा आयोग की भूमिका सकारात्मक रूप से अधिनियम, 2002 के कतिपय उपबंधों के साथ उद्देशिका को चित्रित करना है । आयोग को प्रतिस्पर्धा के प्रतिकूल प्रभाव, बाजारों में प्रतिस्पर्धा को प्रोन्नत और कायम रखने के साथ ही उपभोक्ताओं की हितों की संरक्षा करने के प्रतिकूल व्यवहार को रोकना है, ताकि व्यापार की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जा सके जिससे कि संपूर्ण राष्ट्र के अच्छे आर्थिक विकास को बढ़ावा मिल सके । इस प्रकाश को ध्यान में रखते हुए और अधिनियम, 2002 के कतिपय अन्य उपबंधों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् विद्वान् अपर सालिसिटर जनरल ने यह तर्क दिया है कि अपील अधिकरण ने अधिनियम, 2002 का अर्थान्वयन निर्बंधित तरीके से किया है, जिससे भविष्य में आने वाले मामलों में आयोग के कृत्यों में अड़चन पैदा होगी । अपने प्रायिक ऋजुता के साथ, उन्होंने शास्ति की रकम का विनिश्चय करने के लिए न्यायालय पर छोड़ दिया कि मामले के तथ्यों में कितनी रकम अधिरोपित किया जाना चाहिए ।

5. प्रत्यर्थी एम. एस. ओ. के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल न्यायालय के

प्रति समान रूप से ऋजु रहे हैं और हमारे नोटिस में, दूरसंचार विवाद्यक और समझौता अपील अधिकरण के तारीख 25 अप्रैल, 2012 के निर्णय को लाया जिसमें वर्तमान मामले में एम. एस. ओ. द्वारा समाप्त की गई थी, को अवैध ठहराया था, जो दूरसंचार (प्रसारण और केबल सेवा) अंतःसंबंध विनियम, 2004 के विनियम 4.2 के भंग में था । पूर्वोक्त विनियम का खंड 4(2) जो पक्षकारों के बीच करारों के बारे में, विनिर्दिष्टतः, पूर्वोक्त एम. एस. ओ. द्वारा टी. वी. चैनल के प्रसारण को समाप्त करने की प्रस्थापित कार्रवाई के लिए स्पष्टतः कारण देते हुए प्रसारकों को तीन सप्ताह का नोटिस देने के बारे में कहता है । तारीख 19 जनवरी, 2011 के द्वारा समाप्ति की नोटिसें पूर्वोक्त विनियम के अनुरूप नहीं थीं क्योंकि प्रस्थापित समाप्ति के लिए कारण नहीं दिए गए हैं । उन्होंने यह भी तर्क दिया कि उनके मुवक्किल के विरुद्ध शास्ति अधिरोपित करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है, इस कारण से कि सुसंगत समय पर सदृश्य प्लेटफार्म का उपयोग किया गया था और ऐसे प्लेटफार्म की प्रवर्तित क्षमता, लगभग 550 मौजूदा चैनलों के विरुद्ध मात्र 80 चैनलों की थी । उन्होंने यह भी जोड़ा कि प्रसारक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 5 की टी. आर. पी. रेटिंग अन्य सभी न्यूज चैनलों के बीच निम्नतम थी, वह न्यूज चैनल के निम्नतम रेट के विरुद्ध मात्र 3.8 रेटिंग प्राप्त कर रहा था, जो चैनल एम. एच. 7 था । उसके अनुसार, यह प्रत्यर्थी सं. 5 द्वारा किए गए एक प्रयोग के कारण हुआ जो असफल रहा, क्योंकि इस न्यूज का प्रसारण तीन विभिन्न भाषाओं में किया जाता था और चूंकि दर्शकों में से अधिकतर इन प्रत्येक भाषाओं से परिचित नहीं थे, इसलिए, चैनल असफल रहा और प्रत्यर्थी सं. 5 का कारबार अब अस्तित्व में नहीं है । इसलिए, उसके अनुसार, यद्यपि, तकनीकी तौर पर अभी भी चल रहा है, इसलिए, विनियम 4.2 का भंग होता है, इसलिए, पूर्वोक्त कारणों को कथित करते हुए समाप्ति की नोटिस भी दी गई है कि क्यों एम. एस. ओ. और प्रसारक के बीच करार समाप्त कर दिया गया था । इस कारण से यह मामला स्पष्ट होता है कि करार की समाप्ति, बाजार में एम. एस. ओ. की प्रधान स्थिति के कारण नहीं की जा सकती है, किन्तु यह पूर्वोक्त कथित कारकों के कारण किया जा सकता था । इसलिए, उनके मत में, यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें शास्ति अधिरोपित की जानी चाहिए ।

हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना ।

6. अधिनियम, 2002 के उपबंधों का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाना महत्वपूर्ण है, अधिनियम, 2002 की प्रस्तावना निम्नलिखित है :–

देश के आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए ऐसे व्यवहारों का, जिनका प्रतिस्पर्धा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो, निवारण करने, बाजारों में प्रतिस्पर्धा का संवर्धन करने और उसे बनाए रखने, उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करने और बाजारों में अन्य सहभागियों द्वारा किए जाने वाले व्यापार की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए भारत में आयोग की नियोजन का और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम उपबंधित किया जाता है ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(ख) 'करार' के अंतर्गत, कोई ठहराव या समझौता या कार्रवाई सम्मिलित है, –

(i) चाहे ऐसा ठहराव, समझौता या कार्रवाई औपचारिक या लिखित में हो, या न हो ; अथवा

(ii) चाहे ऐसा ठहराव, समझौता या कार्रवाई विधिक कार्यवाहियों द्वारा प्रवर्तन के लिए आशयित हो या न हो ;

(च) 'उपभोक्ता' से ऐसा कोई व्यक्ति अभिप्रेत है, जो –

(i) किसी ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागतः संदाय किया गया है और भागतः वचन दिया गया है, या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन किसी माल का क्रय करता है, और इसके अंतर्गत ऐसे किसी व्यक्ति से, जो ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागतः संदाय किया गया है या भागतः वचन दिया गया है या आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन ऐसे माल का क्रय करता है, भिन्न ऐसे माल का कोई उपभोक्ता भी है, जब ऐसा उपयोग ऐसे व्यक्ति के अनुमोदन से किया जाता है चाहे माल का उक्त क्रय पुनः विक्रय के लिए या किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए या वैयक्तिक उपयोग के लिए हो ;

(ii) किसी ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागतः संदाय

किया गया है और भागतः वचन दिया गया है, या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन सेवाओं के भाड़े पर लेता है या प्राप्त करता है और इसके अंतर्गत ऐसे किसी व्यक्ति से, जो ऐसे किसी प्रतिफल के लिए, जिसका संदाय किया गया है या वचन दिया गया है या भागतः संदाय किया गया है या भागतः वचन दिया गया है या किसी आस्थगित संदाय की पद्धति के अधीन सेवाओं को भाड़े पर लेता है या प्राप्त करता है, भिन्न ऐसी सेवाओं का कोई हिताधिकारी भी है, जब ऐसी सेवाओं का उपयोग प्रथम वर्णित व्यक्ति के अनुमोदन से किया जाता है, चाहे ऐसी सेवाओं को भाड़े पर लेना या प्राप्त करना किसी वाणिज्यिक प्रयोजन के लिए या वैयक्तिक उपयोग के लिए हो ;

(ड) 'पद्धति' के अंतर्गत किसी व्यक्ति या किसी उद्यम द्वारा किए जाने वाले किसी व्यापार के संबंध में कोई पद्धति है ;

(द) 'सुसंगत बाजार' से ऐसा बाजार अभिप्रेत है जिसका अवधारण आयोग द्वारा सुसंगत उत्पाद बाजार या सुसंगत भौगोलिक बाजार के प्रतिनिर्देश से या दोनों बाजारों के प्रतिनिर्देश से किया जाए ;

4. प्रधानस्थिति का दुरुपयोग – (1) कोई उद्यम या समूह अपनी प्रधान स्थिति का दुरुपयोग नहीं करेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन, प्रधान स्थिति का दुरुपयोग होगा, यदि कोई उद्यम या कोई समूह –

(क)(i) माल के क्रय या विक्रय में या सेवा की व्यवस्था में ; या

(ii) माल या सेवाओं की क्रय या विक्रय कीमत में, (जिसके अंतर्गत स्वार्थचालित कीमत भी है), प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः अनुचित या विभेदकारी शर्तें अधिरोपित करता है ।

स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजनों के लिए, उपखंड (i) में निर्दिष्ट माल के क्रय या विक्रय या सेवा में अनुचित या विभेदकारी शर्त और उपखंड (ii) में निर्दिष्ट माल के क्रय या विक्रय में अनुचित या विभेदकारी कीमत (स्वार्थचालित कीमत सहित) या सेवा के

अंतर्गत ऐसी विभेदकारी शर्त या कीमत नहीं आएगी, जो प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अंगीकार की जाए ; अथवा

(ख) (i) माल के उत्पादन या सेवा की व्यवस्था करने या उसके लिए बाजार को ; या

(ii) उपभोक्ताओं पर प्रतिकूल प्रभाव डालने के लिए माल या सेवाओं के संबंध में तकनीकी और वैज्ञानिक विकास को,

परिसीमित या निर्बंधित करता है ; अथवा

(ग) ऐसे व्यवहार या व्यवहारों को करता है जिनसे बाजार तक पहुंच किसी रीति में नहीं मिलती है, अथवा

(घ) संविदाओं के निष्पादन को ऐसी अनुपूरक बाध्यताओं के अन्य पक्षकारों द्वारा स्वीकृति के अधीन बनाता है जिनका अपनी प्रकृति से या वाणिज्यिक प्रथाओं के अनुसार ऐसी संविदाओं के विषय से कोई संबंध नहीं है ; अथवा

(ङ) एक सुसंगत बाजार में अपनी प्रधानता को अन्य सुसंगत बाजारों में प्रवेश के लिए या उन्हें संरक्षित करने के लिए प्रयोग करता है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए पद –

(क) 'प्रधान स्थिति' से किसी उद्यम द्वारा, भारत में सुसंगत बाजार में प्राप्त ऐसी शक्ति की स्थिति अभिप्रेत है, जो उसे –

(i) सुसंगत बाजार में विद्यमान प्रतिस्पर्धा ताकतों पर स्वतंत्र करने ; या

(ii) प्रतिस्पर्धियों या उपभोक्ताओं या सुसंगत बाजार को अपने पक्ष में प्रभावित करने में समर्थ बनाती है ;

(ख) 'स्वार्थचालित कीमत' से उस कीमत पर माल का विक्रय या सेवाओं की व्यवस्था करना अभिप्रेत है, जो प्रतिस्पर्धा को कम करने या प्रतिस्पर्धियों को समाप्त करने की दृष्टि से माल के उत्पादन या सेवा की व्यवस्था की उस कीमत से कम हो, जो विनियमों द्वारा अवधारित की जाए ;

(ग) 'समूह' का वही अर्थ है जो धारा 5 के स्पष्टीकरण के

खंड (ख) में है ।

18. आयोग के कर्तव्य – इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे व्यवहारों को समाप्त करे जो प्रतिस्पर्धा पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं, प्रतिस्पर्धा का संवर्धन करे तो उसे बनाए रखे, उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करे और भारत के बाजारों में अन्य भागीदारों द्वारा किए गए व्यापार की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करे ;

परंतु आयोग, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन या अपने कर्तव्यों के पालन के प्रयोजनों के लिए केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, किसी विदेशी अभिकरण के साथ कोई ज्ञापन या करार कर सकेगा ।

19. कतिपय करारों और उद्यम की प्रधान स्थिति की जांच – (1) आयोग, धारा 3 की उपधारा (1) या धारा 4 की उपधारा (1) में अंतर्विष्ट उपबंधों के कि अभिकथित उल्लंघन के लिए या तो स्वप्रेरणा से या किसी व्यक्ति से प्राप्त किसी जानकारी पर –

जांच कर सकेगा ।

*   *   *   *   *

(4) आयोग, यह जांच करते समय कि क्या कोई उद्यम धारा 4 के अधीन प्रधान स्थिति का उपभोग करता है या नहीं, निम्नलिखित बातों में से सभी या किसी पर सम्यक् विचार करेगा, अर्थात् –

(क) उद्यम का बाजार शेयर ;

(ख) उद्यम का आकार और संसाधन ;

(ग) प्रतिस्पर्धियों की संख्या और उनका महत्व ;

(घ) उद्यम की आर्थिक शक्ति जिसके अंतर्गत प्रतिस्पर्धियों से अधिक वाणिज्यिक फायदे भी हैं ;

(ङ) उद्यमों की ऊर्ध्वस्तर एकीकरण या ऐसे उद्यमों का विक्रय या सेवा नेटवर्क ;

(च) उद्यम पर उपभोक्ताओं की आश्रितता ;

(छ) एकाधिकार या प्रधान स्थिति चाहे वह किसी

कानून के परिणामस्वरूप अर्जित की गई हो या सरकारी कंपनी या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम होने के कारण या अन्यथा हो ;

(ज) प्रवेश के अवरोध जिसके अंतर्गत विनियामक अवरोध, वित्तीय जोखिम, प्रवेश की उच्च पूंजी लागत, विपणन प्रवेश अवरोध, तकनीकी प्रवेश रोध, माप की अर्थव्यवस्था, उपभोक्ता के लिए अनुकल्पी माल या सेवाओं की ऊंची लागत भी है ;

(झ) प्रतिरोधी क्रय शक्ति ;

(ञ) बाजार की संरचना और बाजार का आकार ;

(ट) सामाजिक बाध्यताएं और सामाजिक लागत ;

(ठ) प्रधान स्थिति वाले उद्यम द्वारा, जिसका प्रतिस्पर्धा पर पर्याप्त प्रतिकूल प्रभाव है या ऐसा होने की संभावना है, आर्थिक विकास को अभिदाय के माध्यम से सापेक्ष फायदा ;

(ड) कोई अन्य बात जिसे आयोग जांच के लिए सुसंगत समझे ।

27. करारों या प्रधान स्थिति के दुरुपयोग के संबंध में जांच के पश्चात् आयोग द्वारा आदेश – जहां जांच के पश्चात् आयोग यह पाता है कि धारा 3 में निर्दिष्ट कोई करार अथवा किसी प्रधान स्थिति वाले उद्यम का कार्य, यथास्थिति, धारा 3 या धारा 4 के उल्लंघन में है तो वह निम्नलिखित सभी या कोई आदेश पारित कर सकेगा –

(क) ऐसे करार या प्रधान स्थिति के दुरुपयोग में अंतर्वलित, यथास्थिति, उद्यम-संगम या व्यक्ति अथवा व्यक्ति-संगम को, यथास्थिति, ऐसे करार को बंद करने और पुनः न करने या ऐसी प्रधान स्थिति के दुरुपयोग को रोकने का निदेश देना ;

(ख) प्रत्येक ऐसे व्यक्ति या उद्यमों पर, जो ऐसे करारों या दुरुपयोग के पक्षकार हैं, ऐसी शास्ति अधिरोपित करना, जो वह उचित समझे किंतु वह गत तीन पूर्ववर्ती वित्तीय वर्षों के औसत व्यापारावर्त के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी :

परंतु किसी उत्पादक संघ के साथ धारा 3 में निर्दिष्ट कोई करार किए जाने की दशा में, आयोग, उस उत्पादक संघ में सम्मिलित प्रत्येक उत्पादक, विक्रेता, वितरक, व्यापारी या सेवा प्रदाता पर ऐसे करार के जारी रहने के प्रत्येक वर्ष के लिए उसके लाभ के तीन गुणा तक या ऐसे करार के जारी रहने के प्रत्येक वर्ष के लिए उसके आवर्त के दस प्रतिशत तक की इनमें से जो भी अधिक हो, शास्ति अधिरोपित कर सकेगा ;

* * * * * *

(घ) यह निदेश देना कि करार उस सीमा तक और ऐसी रीती में उपांतरित हो जाएंगे जो आयोग द्वारा आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए ;

(ङ) संबंधित उद्यमों को ऐसे अन्य आदेशों के अनुपालन करने का निदेश देना जो आयोग द्वारा पारित किए जाएं और ऐसे निदेशों का अनुपालन करना, जिसके अन्तर्गत खर्चों का संदाय, यदि कोई हो, भी हो ;

* * * * * *

(छ) ऐसा अन्य आदेश पारित करना या ऐसे निदेश जारी करना जिसे वह उचित समझे :

परंतु इस धारा के अधीन आदेश पारित करते समय, यदि आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई उद्यम अधिनियम की धारा 3 या धारा 4 के उल्लंघन में अधिनियम की धारा 5 के स्पष्टीकरण के खंड (ख) में यथापरिभाषित समूह का सदस्य है और ऐसे समूह के अन्य सदस्य भी ऐसे उल्लंघन के लिए उत्तरदायी हैं या उन्होंने ऐसे उल्लंघन में सहयोग किया है तो वह, इस धारा के अधीन, समूह के ऐसे सदस्यों के विरुद्ध आदेश पारित कर सकेगा ।

'**41. महानिदेशक द्वारा उल्लंघनों का अन्वेषण किया जाना** – (1) महानिदेशक, जब आयोग इस प्रकार निदेश दिया जाए, इस अधिनियम या तद्धीन बनाए गए, किन्हीं नियमों या विनियमों के उपबंधों के किसी उल्लंघन के अन्वेषण में आयोग की सहायता करेगा ।

(2) महानिदेशक को वे शक्तियां होंगी जो धारा 36 (2) के

अधीन आयोग को प्रदत्त की गई है ।

(3) उपधारा (2) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 240 और धारा 240क, जहां तक हो सके, महानिदेशक या उसके प्राधिकार के अधीन अन्वेषण कर रहे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किए गए अन्वेषण को उसी प्रकार लागू होंगी जैसे वे उस अधिनियम के अधीन नियुक्ति किसी निरीक्षक को लागू होती है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 240 के अधीन 'केन्द्रीय सरकार' शब्दों का अर्थ "आयोग" के रूप में लगाया जाएगा ;

(ख) कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) की धारा 240क के अधीन 'मजिस्ट्रेट' शब्द का अर्थ 'मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट दिल्ली' के रूप में लगाया जाएगा ।

53ख. अपील अधिकरण को अपील – (1) धारा 53क के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी निदेश, विनिश्चय या आदेश से व्यथित केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकारी या उद्यम या कोई व्यक्ति अपील अधिकरण को अपील कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक अपील उस तारीख से, जिसको आयोग द्वारा दिए गए निदेश या किए गए विनिश्चय या पारित आदेश की प्रति केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी या उद्यम या उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति को प्राप्त होती है, साठ दिन की अवधि के भीतर फाइल की जाएगी और वह ऐसे प्ररूप में होगी और उसके साथ ऐसी फीस होगी, जो विहित की जाए :

परंतु अपील अधिकरण साठ दिन की उक्त अवधि के अवसान के पश्चात् भी किसी अपील को ग्रहण कर सकेगा यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि उस अवधि के भीतर उसके फाइल न किए जाने के पर्याप्त कारण थे ।

(3) अपील अधिकरण, उपधारा (1) के अधीन किसी अपील के प्राप्त होने पर अपील के पक्षकारों को सुने जाने का अवसर दिए जाने के पश्चात्, उस पर ऐसे निदेश, विनिश्चय या आदेश जिसके विरुद्ध

अपील की गई है, की पुष्टि करते हुए, उसे उपांतरित करते हुए या अपास्त करते हुए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा, जो वह ठीक समझे ।

(4) अपील अधिकरण उसके द्वारा किए गए प्रत्येक आदेश की प्रति आयोग और अपील के पक्षकारों को भेजेगा ।

(5) अपील अधिकरण के समक्ष उपधारा (1) के अधीन फाइल की गई अपील पर उसके द्वारा यथासंभव शीघ्रता से कार्रवाई की जाएगी और उसके द्वारा अपील प्राप्त की तारीख से छह मास के भीतर अपील का निपटारा किए जाने का प्रयास किया जाएगा ।

53न. उच्चतम न्यायालय को अपील – अपील अधिकरण के किसी विनिश्चय या आदेश से व्यथित केन्द्रीय सरकार या कोई राज्य सरकार या आयोग या कोई कानूनी प्राधिकारी या कोई स्थानीय प्राधिकारी अथवा कोई उद्यम या कोई व्यक्ति अपील अधिकरण के उस विनिश्चय या आदेश की उन्हें संसूचना प्राप्त होने की तारीख से साठ दिन के भीतर उच्चतम न्यायालय में अपील कर सकेगा :

परंतु उच्चतम न्यायालय, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक उक्त अवधि के भीतर अपील फाइल करने से पर्याप्त कारणों से निवारित हुआ था उक्त साठ दिन की अवधि के अवसान के पश्चात् अपील फाइल करने के लिए उसे अनुज्ञात करे सकेगा ।

60. अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना – इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट उससे असंगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।"

7. अधिनियम, 2002 की प्रस्तावना के साथ पठित पूर्वोक्त उपबंधों से यह दर्शित होता है कि आयोग को प्रतिस्पर्धा अधिनियम, 2002 द्वारा स्थापित किया गया है जिसकी निश्चित तौर पर सकारात्मक भूमिका है । धारा 18 और 19 के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि आयोग का यह सकारात्मक कर्तव्य है कि वह उन सभी व्यवहारों को समाप्त करें जिनसे प्रतिस्पर्धा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । आयोग का यह भी कर्तव्य होगा कि वह प्रतिस्पर्धा का संवर्धन करे और उसे बनाए रखे, उपभोक्ताओं के हितों का संरक्षण करे और भारत के बाजारों में अन्य भागीदारों द्वारा किए गए व्यापार की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करे । आयोग को यह भी सकारात्मक भूमिका दी गई है कि वह उद्यमों की प्रधान स्थिति की स्वतः

प्रेरणा से जांच करे और प्रतिकूल प्रतिस्पर्धा करारों को प्रतिषिद्ध करे । उसके बाद धारा 60, इस देश के प्रत्येक और संपूर्ण भाग के आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए, अधिनियम को इस अधिनियम और अधिनियम की नीति को प्रभावित करने वाले ऐसे संविधियों के बीच विरोध की दशा में अन्य संविधियों पर अभिभावी बनाता है ।

8. वर्तमान मामले के तथ्यों से, यह स्पष्ट होता है कि "प्रधान स्थिति" स्पष्टतः दृष्टिगत होती है । धारा 4 का स्पष्टीकरण विनिर्दिष्टतः इस प्रधान स्थिति के प्रतिनिर्देश करता है कि एक उद्यम या उसके समूह द्वारा सुसंगत बाजार में उपभोग किया जाता है, जैसा कि इसमें पूर्व में कथित है, पंजाब और चंडीगढ़ के केबल टी. वी. बाजार में जो प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 को सुसंगत बाजार में अभिभावी प्रतिस्पर्धा बलों की स्वतंत्रतापूर्वक प्रवर्तित कराने में समर्थ करता है । आयोग ने तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि चूंकि पूर्वोक्त एम. एस. ओ. समूह के पास पंजाब और चंडीगढ़ राज्य के पूर्वोक्त केबल टी. वी. बाजार में अभिदाताओं के हिस्से का 85% है और वे पूर्वोक्त बाजार में अभिभावी प्रतिस्पर्धा बलों को स्वतंत्र रूप से प्रवर्तित करने में समर्थ थे । इस निष्कर्ष को अपील अधिकरण द्वारा अपास्त नहीं किया गया है । यह भी कि प्रत्यर्थी स्पष्टीकरण (क)(ii) के भीतर आता है, साथ ही यद्यपि यह पर्याप्त है कि वह स्पष्टीकरण की उपधारा (क)(i) के भीतर आता है । उपधारा (ii) उस शक्ति की स्थिति के प्रति निर्दिष्ट करता है जो कि प्रत्यर्थी द्वारा उपभोग किया जा रहा है जो उसे अपने पक्ष में उपभोक्ताओं को प्रभावित करने में समर्थ बनाता है ।

9. हमारे मत में, विद्वान् अपर सालिसिटर जनरल श्री नरसिम्हा ने धारा 2(च)(ii) में परिभाषा का अवलंब लेते हुए, सही ही यह तर्क दिया है कि प्रसारक निश्चित तौर पर, पूर्वोक्त उपधारा में अंतर्विष्ट व्यापक भाषा के भीतर आता है । हम यह भी जोड़ सकते हैं कि सभी प्रकार की ऋजुता के साथ प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल भी इससे सहमत हैं । मामले में ऐसा होने पर, यह स्पष्ट होता है कि क्योंकि स्पष्टीकरण के खंड (क) की दोनों उपधाराएं (i) और (ii) लागू होते हैं इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी को धारा 4 के प्रयोजन के लिए "प्रधान स्थिति" में होना कहा जा सकता है ।

10. प्रश्न जो अब उद्भूत होता है, यह है कि क्या धारा 4(2)(ग) के अधीन ऐसी प्रधान स्थिति का दुरुपयोग हुआ है जहां यह कहा जा सके कि किसी तरीके से बाजार में पहुंच के इनकार के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी इस

प्रकार के व्यवहार में सम्मिलित है ।

11. यह प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों में, प्रसारक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 5 ने एक प्रसारण करार किया था जो 1 अगस्त, 2010 से एक वर्ष की अवधि के लिए हुआ था । इसे तारीख 19 जनवरी, 2011 की नोटिसों द्वारा प्रत्यर्थी ने पूर्वोक्त अवधि के भीतर समाप्त करना चाहा था । टी. डी. एस. ए. टी. ने तारीख 25 अप्रैल, 2012 के अपने आदेश द्वारा सुसंगत दूरसंचार विनियमों के विनियम 4.2 का उल्लेख किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थियों ने पूर्वोक्त विनियमों का पालन नहीं किया है, क्योंकि उन्होंने समाप्ति की नोटिसों में समाप्ति के लिए कोई कारण नहीं दिया है । मामले में ऐसा होने पर, यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा प्रधान स्थिति का दुरुपयोग किया गया है मात्र इस कारण से कि प्रसारक ने 19 फरवरी, 2011 से 1 अगस्त, 2011 को और उसके पश्चात् बाजार में पहुंच होने से इनकार कर दिया था । शब्द "किसी तरीके में" एक व्यापक शब्द है और इसे इसका स्वाभाविक अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । मामले में ऐसा होने पर, अपील अधिकरण के कारणों की प्रशंसा करना कठिन है क्योंकि प्रसारक और एम. एस. ओ. एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा में नहीं है, इसलिए, धारा 3 और 4 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । जैसा कि हमारे द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, प्रत्यर्थी एम. एस. ओ. "प्रधान स्थिति" में है, से वर्तमान मामले में धारा 4 का प्रयोजन स्पष्टतः सिद्ध होता है और उस एवज में आयोग के निष्कर्ष को भी अपील अधिकरण द्वारा अपास्त नहीं किया गया है । यदि ऐसा होता है तो जब तथ्यों के आधार पर "प्रधान स्थिति" पाई जाती है कि क्या प्रसारक एम. एस. ओ. के साथ प्रतिस्पर्धा में है, तो यह कारक धारा 4(2)(ग) के लागू होने के लिए असंगत हो जाता है, जो हमारे द्वारा पाया गया है, क्योंकि यह इस साधारण कारण से लागू होता है कि प्रसारक ने उक्त प्रसारक और प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 के बीच करार की अवैध समाप्त होने के कारण बाजार में पहुंच से इनकार किया है ।

12. तथापि, ऐसा होते हुए भी, हमारा यह मत है कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए थी । प्रतिस्पर्धा आयोग का यह निष्कर्ष कि प्रसारक की टी. आर. पी. रेटिंग निम्न थी, क्योंकि यह अन्य चैनलों के प्रायः बराबर थी, सही नहीं है । प्रत्यर्थी द्वारा हमारे समक्ष फाइल प्रति-शपथपत्र में, प्रत्यर्थी के चैनल की टी. ए. एम. रेटिंग के बारे में विनिर्दिष्टतः कथन किया गया है, जैसा कि अन्य न्यूज चैनलों ने विरोध किया है जो सितम्बर, 2010 के माह से जनवरी, 2011

के बीच है, निम्नलिखित है :–

क्रम सं.	चैनल का नाम	पांच माह की अवधि (सितम्बर, 2010 से जनवरी, 2011) के दौरान के चैनल की औसत टीआरपी
1.	आज तक	33.6
2.	डे एंड नाइट न्यूज	3.8
3.	आईबीएन7	24.7
4.	एमएच-1 न्यूज	7.0
5.	एनडीटीवी इंडिया	22.5
6.	पीटीसी न्यूज	35.6
7.	स्टार न्यूज	27.9
8.	जी न्यूज	21.5

13. पूर्वोक्त चार्ट के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि 'डे एंड नाइट' न्यूज चैनल की दी गई टी.आर.पी. किसी अन्य चैनल को दी गई टी.आर.पी. अत्यधिक निम्न है और यह कि प्रत्यर्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल यह कथन करने में सही थे कि मध्य अवधि में प्रसारक के साथ करार समाप्त करने का यही कारण था । यद्यपि, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस मामले के तथ्यों के आधार पर धारा 4(2)(ग) का भंग हुआ है, यद्यपि, करार समाप्ति के लिए प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा दिए गए कारण अन्यथा न्यायोचित है फिर भी हम यह महसूस करते हैं कि वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर शास्ति अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए ।

14. तद्नुसार, अपील मंजूर की जाती है और दोनों, अपील अधिकरण के निर्णय के साथ ही प्रतिस्पर्धा आयोग द्वारा अधिरोपित शास्ति अपास्त की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

[2018] 3 उम. नि. प. 360

भारत संघ और अन्य

बनाम

पुष्पावती और अन्य

6 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1) – धारा 28 और 34 – भूमि का अर्जन – अतिरिक्त प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत न करने पर समुचित उपचार – धारा 28 या धारा 34 के अधीन प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत न करने के कारण उपलब्ध अनुकल्पी उपचार धारा 18 या धारा 28क के अधीन निर्देश करना नहीं है बल्कि संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलंब लेकर ही ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद को उठाया जा सकता है ।

प्रस्तुत मामले में, प्रथम अपीलार्थी सचिव, राजस्व विभाग, पांडिचेरी के माध्यम से भारत संघ है और द्वितीय अपीलार्थी राजस्व अधिकारी-सह-भूमि अर्जन अधिकारी है । इस मामले में के अपीलार्थी उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में प्रत्यर्थी थे जबकि इस मामले में के प्रत्यर्थी, जो कि भू-स्वामी हैं, उसमें रिट याची थे । पांडिचेरी सरकार ने भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 4 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए एक अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा ग्राम पिल्लेचावाड़ी में स्थित भूमि को लोक प्रयोजन, अर्थात्, केन्द्रीय विश्वविद्यालय (चरण-5) की स्थापना के लिए अर्जित करने की ईप्सा की गई थी । इसके पश्चात्, अधिनियम की धारा 6 के अधीन एक घोषणा की गई थी । अर्जित भूमि के अंतर्गत इस मामले में के प्रत्यर्थियों की भूमि भी शामिल थी । भूमि अर्जन अधिकारी ने अधिनियम की धारा 11 के अधीन एक अधिनिर्णय पारित करके अर्जित भूमि के लिए 318/- रुपए प्रति आरे की दर से प्रतिकर अवधारित किया । गोविन्दाम्माल नामक एक भू-स्वामी ने, जिसकी भूमि उसी अधिसूचना के अधीन अर्जित की गई थी, भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की दर से असंतुष्ट होते हुए, अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपनी अर्जित भूमि के लिए प्रतिकर की दर के पुनः अवधारण के लिए सिविल न्यायालय में निर्देश करने की ईप्सा की । निर्देश न्यायालय ने अपने

अधिनिर्णय द्वारा अर्जित भूमि के प्रतिकर की दर 318/- रुपए प्रति आरे से बढ़ाकर 1,000/- रुपए प्रति कुझी (1,868/- रुपए प्रति आरे) कर दी । प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) ने निर्देश न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट प्रतिकर में वृद्धि करते हुए अधिनिर्णय पारित किए जाने की जानकारी प्राप्त होने पर अधिनियम की धारा 28क के अधीन कलक्टर (भूमि अर्जन अधिकारी) के समक्ष ऊपर उल्लिखित अर्जन कार्यवाहियों में उनकी अर्जित भूमि के लिए उन्हें संदेय प्रतिकर का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन फाइल किए । यद्यपि कलक्टर ने प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए आवेदनों के संबंध में अधिनियम की धारा 28क के अधीन यथा-अनुध्यात जांच की तथापि, कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था । अतः, प्रत्यर्थियों ने उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं को भागतः मंजूर कर लिया और कलक्टर को यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 28क के अधीन फाइल किए गए आवेदनों का निपटारा किया जाए । तद्नुसार, कलक्टर ने उन आवेदनों का निपटारा कर दिया और प्रत्यर्थियों को संदेय प्रतिकर का पुनः अवधारण कर दिया । प्रत्यर्थियों ने यह अवेक्षा करते हुए कि यद्यपि कलक्टर ने प्रतिकर का पुनः अवधारण किया है तथापि, वह अधिनियम की धारा 28 या धारा 34 के अधीन प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने में असफल रहा, कलक्टर के आदेशों से व्यथित महसूस करते हुए कलक्टर के समक्ष एक अभ्यावेदन फाइल किया, जिसके द्वारा प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की प्रार्थना की गई । कलक्टर ने प्रत्यर्थियों के अभ्यावेदन को नामंजूर कर दिया । प्रत्यर्थियों ने इससे व्यथित होकर, उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं फाइल कीं और उसमें कलक्टर के उस आदेश की वैधता और शुद्धता को चुनौती दी जिसके द्वारा धारा 28क के अधीन वाली कार्यवाहियों में उसके द्वारा अवधारित प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया गया था । इस मामले में के अपीलार्थियों ने, जो कि उक्त रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी थे, प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं की संधार्यता के बारे में प्रारंभिक आक्षेप उठाया । उनकी मुख्य दलील यह थी कि ऐसी दशा में इस मामले में के प्रत्यर्थियों के लिए अधिनियम की धारा 18 के साथ पठित धारा 28क(3) के अधीन यथा-उपबंधित सिविल न्यायालय को निर्देश करने के लिए आवेदन करने का उपचार रहता है । यह दलील दी गई थी कि यदि प्रत्यर्थी (भू-स्वामी) कलक्टर के आदेश से व्यथित थे, जिसने प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया था, तो उनके पास समुचित उपचार यह था कि वे अधिनियम की धारा 28क(3) के अधीन यथा-उपबंधित

सिविल न्यायालय में निर्देश की ईप्सा करें क्योंकि अधिनियम के अधीन उन्हें यही कानूनी उपचार उपलब्ध है न कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाएं फाइल करना । एकल न्यायाधीश ने प्रारंभिक आक्षेप को उलट दिया, रिट याचिकाओं को गुणागुण के आधार पर मंजूर कर लिया और प्रत्यर्थियों द्वारा यथा-दावाकृत ब्याज अधिनिर्णीत किया । भारत संघ ने एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर खंड न्यायपीठ के समक्ष अंतर-न्यायालीय अपीलें फाइल कीं । खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा रिट अपीलें खारिज कर दीं और एकल न्यायाधीश (रिट न्यायालय) के आदेश को पुष्ट कर दिया । इसी निर्णय के विरुद्ध, भारत संघ ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष ये अपीलें फाइल की हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 11,18, 23, 26, 28, 28-क और 34 के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कलक्टर को भू-स्वामियों को संदेय प्रतिकर का अवधारण करते समय उन तीन कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है जो धारा 11 के अधीन विनिर्दिष्ट हैं जबकि न्यायालय के लिए अधिनियम की धारा 23(1) के अधीन विनिर्दिष्ट छह कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है । ये कारक प्रत्येक मामले में भिन्न-भिन्न होते हैं । धारा 28 और धारा 34, जो कि अधिनिर्णीत धनराशि पर ब्याज का संदाय करने के संबंध में हैं, उस मामले में लागू होती हैं जहां भू-स्वामी द्वारा अपने मामले में संबंधित धाराओं के अधीन विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी कर दी जाती हैं । (पैरा 33 और 34)

भू-स्वामियों को ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद, चाहे वह धारा 28 के अधीन हो या धारा 34 के अधीन, ऐसा कोई विवाद नहीं है जो अधिनियम की धारा 18 या/और धारा 28क(3) के अंतर्गत आता है । दूसरे शब्दों में, धारा 18 के अधीन कलक्टर द्वारा कोई निर्देश केवल उन विवाद्यकों की बाबत किया जा सकता है, जो धारा 18 के अधीन विनिर्दिष्ट हैं । भू-स्वामियों को अधिनियम की धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन संदेय ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद धारा 18 के अधीन विनिर्दिष्ट नहीं है और इसलिए यह कलक्टर द्वारा अधिनियम की धारा 18 के अधीन सिविल न्यायालय को निर्देशित किए जाने योग्य नहीं है । यह इस कारण भी है कि ब्याज का संदाय कानूनी स्वरूप का होने के कारण कानूनी है इसलिए जैसे ही धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी कर दी जाती हैं तो संदाय करना आज्ञापक हो जाता है । यह सही

है कि जैसा ही न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 28 के अधीन या कलक्टर द्वारा धारा 34 के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत कर दिया जाता है, वह अधिनिर्णय का भाग बन जाता है । तथापि, ब्याज अधिनिर्णीत न करने से संबंधित मुद्दे को चुनौती देने के उपचार से संबंधित प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए वह किसी प्रकार से महत्वपूर्ण नहीं है और न ही उसका उससे कोई संबंध है । (पैरा 36, 37 और 38)

ऐसे प्रश्न का विनिश्चय अधिनियम की धारा 18 की भाषा को ध्यान में रखते हुए किया जाना आवश्यक है, जिसमें वे मुद्दे विनिर्दिष्ट किए गए हैं जिनके संबंध में न्यायालय को निर्देश किया जा सकता है और ब्याज अधिनिर्णीत न करना अधिनियम की धारा 18 में विनिर्दिष्ट कोई मुद्दा नहीं है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी मुद्दे का विनिश्चय करने के लिए अधिनियम की धारा 18 के अधीन न्यायालय को कोई निर्देश नहीं किया जा सकता है । ऊपर उल्लिखित तर्काधार अधिनियम की धारा 28क(2) और (3) के अंतर्गत आने वाले मामलों को भी समान रूप से लागू होता है क्योंकि कोई भी विवाद, चाहे वह धारा 11 के अधीन उद्भूत हो या धारा 28क(2) के अधीन, अधिनियम की धारा 18 के अधीन कलक्टर द्वारा निर्देश में सिविल न्यायालय को निर्देशित किया जा सकता है । (पैरा 39 और 40)

धारा 28 और धारा 34 की भाषा में यह दर्शित करने के लिए अंतर्निहित साक्ष्य मौजूद है कि अधिनियम के निर्माताओं का आशय उस व्यक्ति को, जिसकी भूमि अर्जित की गई थी, ब्याज का संदाय सुनिश्चित करना था और उनका यह आशय नहीं था कि उक्त संदाय को प्रक्रियात्मक कठिनाइयों के अध्यधीन रखा जाए । धारा 34 के अधीन तथा धारा 28 के अधीन भी संदत्त किया जाने वाला ब्याज अधिनियम की धारा 23(1) के अधीन प्रतिकर की रकम से भिन्न प्रकृति का है । जबकि ब्याज का, यदि अधिनियम के अधीन संदेय है, अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर दावा किया जा सकता है किन्तु धारा 23(1) के अधीन प्रतिकर की रकम, जो कि धारा 26 के अधीन एक अधिनिर्णय-डिक्री है, प्रक्रिया और परिसीमा से संबंधित नियमों के अध्यधीन है । प्रक्रिया संबंधी नियम न्याय के अधीनस्थ हैं । प्रक्रियात्मक परेशानी इस अधिनियम के अधीन नागरिकों के सारवान् अधिकारों के मार्ग में रुकावट नहीं हो सकती । (पैरा 41)

किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने के संबंध में

विवाद केवल संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलंब लेते हुए रिट याचिका में किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, धारा 18 या धारा 28क(3) के अधीन निर्देश को ऐसा कोई अनुकल्पी कानूनी उपचार नहीं समझा जा सकता है जो भू-स्वामी को अधिनियम की धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन संदेय ब्याज अधिनिर्णीत न किए जाने संबंधी प्रश्न का सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए उपलब्ध है । (पैरा 42)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 5 एस. सी. सी. 339 : **दिल्ली विकास प्राधिकरण** बनाम **महेन्द्र सिंह और एक अन्य** ;	43
[1991]	(1991) 1 एस. सी. सी. 262 : **श्री विजय कॉटन एंड ऑयल मिल्स लिमिटेड** बनाम **गुजरात राज्य** ।	41

सिविल अपीली अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 1622-1631, 1632-1641 और 1642-1643.

1999 की रिट अपील सं. 1384 से 1392 और 1755 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 8 जुलाई, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थियों की ओर से — सर्वश्री आर. वेंकटरमणी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, वी. जी. प्रागसम, प्रभु रामासुब्रमण्यम, एस. मनुराज, यशराज सिंह बुंदेला और प्रवीन विग्नेश

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री जी. शिवबालमुरुगन, वसंत कुमार, एल. के. पांडेय, पी. जेगन और पी. परमेश्वन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें 1999 की रिट अपील सं. 1384 से 1392 और 1755 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 8 जुलाई, 2009 के उस

अंतिम निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई हैं जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने इस मामले में के अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई रिट अपीलें खारिज कर दी थीं और 1993 की रिट याचिका सं. 5486-5494 में उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 13 अप्रैल, 1999 के आदेश और 1999 की रिट याचिका सं. 11806 में तारीख 13 जुलाई, 1999 के आदेश को पुष्ट कर दिया था ।

3. इन अपीलों में अंतर्वलित विवाद्यक संक्षिप्त है और उसका मूल्यांकन करने की दृष्टि से कुछ सुसंगत तथ्यों का इसमें इसके नीचे उल्लेख करना आवश्यक है ।

4. प्रथम अपीलार्थी सचिव, राजस्व विभाग, पांडिचेरी के माध्यम से भारत संघ है और द्वितीय अपीलार्थी राजस्व अधिकारी-सह-भूमि अर्जन अधिकारी है । इस मामले में के अपीलार्थी उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में प्रत्यर्थी थे जबकि इस मामले में के प्रत्यर्थी, जो कि भू-स्वामी हैं, उसमें रिट याची थे ।

5. पांडिचेरी सरकार ने भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 4 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 22 दिसम्बर, 1986 को एक अधिसूचना जारी की, जिसके द्वारा ग्राम पिल्लेचावाड़ी में स्थित सर्वेक्षण सं. 2, भाग वाली 3 हैक्टेयर 83 आरे 50 सेंट की सीमा तक भूमि को लोक प्रयोजन, अर्थात्, केन्द्रीय विश्वविद्यालय (चरण-5) की स्थापना के लिए अर्जित करने की ईप्सा की गई थी । इसके पश्चात्, अधिनियम की धारा 6 के अधीन तारीख 12 मार्च, 1987 को एक घोषणा की गई थी । अर्जित भूमि के अंतर्गत इस मामले में के प्रत्यर्थियों की भूमि भी शामिल थी ।

6. भूमि अर्जन अधिकारी ने अधिनियम की धारा 11 के अधीन तारीख 1 जून, 1987 को एक अधिनिर्णय (सं. 2/1987) पारित किया और अर्जित भूमि के लिए 318/- रुपए प्रति आरे की दर से प्रतिकर अवधारित किया ।

7. गोविन्दाम्माल नामक एक भू-स्वामी ने, जिसकी भूमि उसी अधिसूचना के अधीन अर्जित की गई थी, भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की दर से असंतुष्ट होते हुए, अधिनियम की धारा 18 के अधीन अपनी अर्जित भूमि के लिए प्रतिकर की दर के पुनः अवधारण के लिए सिविल न्यायालय में निर्देश करने की ईप्सा की । निर्देश न्यायालय ने, निर्देश मामला सं. एल.ए.ओ.पी. सं. 337/88 में तारीख 9 मई, 1989 के

अपने अधिनिर्णय द्वारा अर्जित भूमि के प्रतिकर की दर 318/- रुपए प्रति आरे से बढ़ाकर 1,000/- रुपए प्रति कुझी (1,868/- रुपए प्रति आरे) कर दी ।

8. प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) ने निर्देश न्यायालय द्वारा ऊपर निर्दिष्ट प्रतिकर में वृद्धि करते हुए अधिनिर्णय पारित किए जाने की जानकारी प्राप्त होने पर अधिनियम की धारा 28क के अधीन कलक्टर (भूमि अर्जन अधिकारी) के समक्ष तारीख 8 अगस्त, 1991 को ऊपर उल्लिखित अर्जन कार्यवाहियों में उनकी अर्जित भूमि के लिए उन्हें संदेय प्रतिकर का पुनः अवधारण करने के लिए आवेदन फाइल किए ।

9. यद्यपि कलक्टर ने प्रत्यर्थियों द्वारा किए गए आवेदनों के संबंध में अधिनियम की धारा 28क के अधीन यथा-अनुध्यात जांच की तथापि, कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया गया था । अतः, प्रत्यर्थियों ने मद्रास उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं (1996 की रिट याचिका सं. 10649 इत्यादि) फाइल कीं ।

10. उच्च न्यायालय ने तारीख 19 अगस्त, 1998 के आदेश द्वारा रिट याचिकाओं को भागतः मंजूर कर लिया और कलक्टर को यह निदेश दिया कि प्रत्यर्थियों द्वारा अधिनियम की धारा 28क के अधीन फाइल किए गए आवेदनों का निपटारा किया जाए । तद्नुसार, कलक्टर ने तारीख 15 नवम्बर, 1994 और 22 नवम्बर, 1994 के बीच की भिन्न-भिन्न तारीखों को आदेश पारित करके उन आवेदनों का निपटारा कर दिया और प्रत्यर्थियों को संदेय प्रतिकर का पुनः अवधारण कर दिया ।

11. प्रत्यर्थियों ने यह अवेक्षा करते हुए कि यद्यपि कलक्टर ने प्रतिकर का पुनः अवधारण किया है तथापि, वह अधिनियम की धारा 28 या धारा 34 के अधीन प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने में असफल रहा, कलक्टर के आदेशों से व्यथित महसूस करते हुए कलक्टर के समक्ष एक अभ्यावेदन फाइल किया, जिसके द्वारा प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने की प्रार्थना की गई । कलक्टर ने, तारीख 14 दिसम्बर, 1998 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थियों के अभ्यावेदन को नामंजूर कर दिया ।

12. प्रत्यर्थियों ने इससे व्यथित होकर, उच्च न्यायालय में रिट याचिकाएं फाइल कीं और उसमें कलक्टर के तारीख 14 दिसम्बर, 1998 के आदेश की वैधता और शुद्धता को चुनौती दी जिसके द्वारा धारा 28क के अधीन वाली कार्यवाहियों में उसके द्वारा अवधारित प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया था ।

13. इस मामले में के अपीलार्थियों ने, जो कि उक्त रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी थे, प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं की संधार्यता के बारे में प्रारंभिक आक्षेप उठाया । उनकी मुख्य दलील यह थी कि ऐसी दशा में इस मामले में के प्रत्यर्थियों के लिए अधिनियम की धारा 18 के साथ पठित धारा 28क(3) के अधीन यथा-उपबंधित सिविल न्यायालय को निर्देश करने के लिए आवेदन करने का उपचार रहता है । यह दलील दी गई थी कि यदि प्रत्यर्थी (भू-स्वामी) कलक्टर के आदेश से व्यथित थे, जिसने प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया था, तो उनके पास समुचित उपचार यह था कि वे अधिनियम की धारा 28क(3) के अधीन यथा-उपबंधित सिविल न्यायालय में निर्देश की ईप्सा करें क्योंकि अधिनियम के अधीन उन्हें यही कानूनी उपचार उपलब्ध है न कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिकाएं फाइल करना ।

14. एकल न्यायाधीश ने तारीख 13 अप्रैल, 1999 के आदेश द्वारा प्रारंभिक आक्षेप को उलट दिया, रिट याचिकाओं को गुणागुण के आधार पर मंजूर कर लिया और प्रत्यर्थियों द्वारा यथा-दावाकृत ब्याज अधिनिर्णीत किया । भारत संघ ने एकल न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर खंड न्यायपीठ के समक्ष अंतर-न्यायालीय अपीलें फाइल कीं । खंड न्यायपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा रिट अपीलें खारिज कर दीं और एकल न्यायाधीश (रिट न्यायालय) के आदेश को पुष्ट कर दिया । इसी निर्णय के विरुद्ध, भारत संघ ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष ये अपीलें फाइल की हैं ।

15. हमने अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री आर. वेंकटरमणी और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री जी. शिवबालमुरुगन और श्री पी. जेगन की सुनवाई की ।

16. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री आर. वेंकटरमणी ने आक्षेपित निर्णय की वैधता और शुद्धता को चुनौती देते समय वही निवेदन दोहराए गए जिन पर उच्च न्यायालय के समक्ष असफल रूप से जोर दिया गया था ।

17. विद्वान् काउन्सेल ने अपने निवेदनों को स्पष्ट करते हुए यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिकाओं में उठाए गए विवाद्यक को गुणागुण के आधार पर विनिश्चित करने के लिए उन रिट याचिकाओं को ग्रहण करके गलती की है ।

18. विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, कलक्टर द्वारा धारा 28क(2) के अधीन आने वाली कार्यवाहियों में ब्याज अधिनिर्णीत करने से संबंधित विवाद्यक निर्देश कार्यवाहियों में केवल निर्देश न्यायालय (सिविल न्यायालय) द्वारा ही विचारणीय है इसलिए प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) के पास जो उपचार उपलब्ध था वह अधिनियम की धारा 18 के अधीन सिविल न्यायालय में निर्देश करने के लिए अधिनियम की धारा 28क(3) के अधीन कलक्टर के पास समावेदन करना और इसके पश्चात् अधिनियम के अधीन उपबंधित न्यायालयों में इस मुद्दे पर आगे कार्यवाही करना था न कि उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल करना था ।

19. विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि चूंकि धारा 11 या धारा 28क(2) के अधीन आने वाली कार्यवाहियों के अधीन कलक्टर / भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत न करना, अधिनिर्णय का एक भाग है इसलिए इसे अधिनियम की धारा 18 की कठोरताएं लागू होती हैं ।

20. विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि यदि अधिनिर्णय में कोई त्रुटि पाई जाती है तो उसे अधिनियम की यथास्थिति, धारा 18 या धारा 28क(3) के अधीन निर्देश कार्यवाहियों में सिविल न्यायालय के समक्ष ही चुनौती दी जा सकती है ।

21. विद्वान् काउन्सेल ने इस बात पर जोर दिया कि जब कि अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है और उसमें भू-स्वामियों को उनकी अर्जित भूमि के लिए संदेय प्रतिकर से संबंधित सभी मुद्दों का अवधारण करने के लिए अधिनियम की धारा 28क(3) के साथ पठित धारा 18 के अधीन निर्देश करने के कानूनी उपचार का उपबंध है तो उच्च न्यायालय को रिट याचिकाएं ग्रहण नहीं करनी चाहिए थी और इसके बजाय प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) को अधिनियम की धारा 28क(3) के अधीन सिविल न्यायालय में निर्देश करने का उपचार का अवलंब लेने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए थी ।

22. इसके उत्तर में, प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) की ओर से उपस्थित विद्वान् काउन्सेल ने उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय में दिए गए तर्काधार और निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन किया और यह दलील दी कि आक्षेपित निर्णय में कोई हस्तक्षेप करने का कोई मामला साबित नहीं होता है ।

23. पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल की सुनवाई करने और मामले के

अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, हमें इन अपीलों में कोई सार प्रतीत नहीं होता है । हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया तर्काधार और निकाला गया निष्कर्ष वैध और उचित प्रतीत होता है ।

24. इन अपीलों में जो संक्षिप्त प्रश्न विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि यदि कलक्टर भू-स्वामियों को धारा 28क के अंतर्गत आने वाली कार्यवाहियों के अधीन प्रतिकर पर ब्याज अधिनिर्णीत करने से इनकार करता है तो ऐसे आदेश के विरुद्ध भू-स्वामियों के पास कौन-सा विधिक उपचार उपलब्ध रहता है – भू-स्वामियों को अधिनियम की धारा 18 के साथ पठित धारा 28क(3) के अधीन निर्देश में सिविल न्यायालय में समावेदन करना चाहिए या संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल करनी चाहिए ।

25. इन अपीलों में उद्भूत प्रश्न का विनिश्चय करने की दृष्टि से कुछ सुसंगत धाराओं का उल्लेख करना आवश्यक है । ये धाराएं हैं, अधिनियम की धारा 11, 18, 23, 26, 28, 28-क और 34, जिन्हें नीचे अक्षरशः उल्लिखित किया जाता है ।

धारा 11

"11. **कलक्टर द्वारा जांच और अधिनिर्णय** – (1) ऐसे नियत दिन या किसी भी अन्य दिन, जिसके लिए वह जांच स्थगित कर दी गई है, कलक्टर उन आक्षेपों की (यदि कोई हों), जो धारा 9 के अधीन निकाली गई सूचना के अनुसरण में किसी हितबद्ध व्यक्ति ने धारा 8 के अधीन किए गए मापों की बाबत किए हैं और धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख पर भूमि के मूल्य की और प्रतिकर के लिए दावा करने वाले व्यक्तियों के क्रमिक हितों की जांच करने के लिए अग्रसर होगा और –

(i) भूमि के सही क्षेत्रफल की बाबत;

(ii) उस प्रतिकर की बाबत, जो उसकी राय में भूमि के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए, तथा

(iii) जिन व्यक्तियों के संबंध में यह ज्ञात है या विश्वास किया जाता है कि वे भूमि में हितबद्ध हैं, उन सब व्यक्तियों में से, उनमें, जिनके संबंध में या जिनके दावों के संबंध में उसे जानकारी है, भले ही वे उसके सामने उपसंजात हुए हों या

नहीं, उक्त प्रतिकर के प्रभाजन की बाबत,

हस्ताक्षरित अधिनिर्णय देगा :

परन्तु कलक्टर द्वारा इस उपधारा के अधीन कोई अधिनिर्णय समुचित सरकार के या ऐसे अधिकारी के पूर्व अनुमोदन के बिना नहीं किया जाएगा जिसे समुचित सरकार इस निमित्त प्राधिकृत करे :

परन्तु यह और कि समुचित सरकार यह निदेश देने के लिए सक्षम होगी कि कलक्टर ऐसे वर्ग के मामलों में जिन्हें समुचित सरकार इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, ऐसे अनुमोदन के बिना ऐसा अधिनिर्णय कर सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, यदि कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर कलक्टर का यह समाधान हो जाता है कि भूमि में हितबद्ध सभी व्यक्तियों ने, जो उसके समक्ष उपसंजात हुए थे, समुचित सरकार द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा विहित रूप में कलक्टर के अधिनिर्णय में सम्मिलित किए जाने वाले विषयों के संबंध में लिखित रूप में करार किया है तो वह और जांच किए बिना ऐसे करार के निबंधनों के अनुसार अधिनिर्णय कर सकेगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन किसी भूमि के लिए प्रतिकर के अवधारण से उसी परिक्षेत्र में या अन्यत्र अन्य भूमियों की बाबत इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अनुसार प्रतिकर का अवधारण किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं होगा ।

(4) रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) में किसी बात के होते हुए भी, उपधारा (2) के अधीन किया गया कोई करार इस अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकरण के लिए दायी नहीं होगा ।

धारा 18

18. **न्यायालय को निर्देश** – (1) कोई भी हितबद्ध व्यक्ति, जिसने अधिनिर्णय प्रतिगृहीत नहीं किया है, चाहे उस व्यक्ति का आक्षेप भूमि के माप के, चाहे प्रतिकर की रकम के, चाहे उन व्यक्तियों के, जिनको वह संदेय है, चाहे हितबद्ध व्यक्तियों में प्रतिकर के प्रभाजन के बारे में हो, कलक्टर से किए गए लिखित आवेदन द्वारा इस बात की अपेक्षा कर सकेगा कि उस मामले को कलक्टर न्यायालय के अवधारण के लिए निर्देशित कर दे ।

(2) आवेदन उन आधारों का कथन करेगा जिन पर कि अधिनिर्णय पर आक्षेप किया गया है :

परन्तु ऐसा हर आवेदन –

(क) उस दशा में, जिसमें कि वह व्यक्ति, जो ऐसा आवेदन करता है, कलक्टर के सामने उस समय जब कलक्टर ने अधिनिर्णय दिया था, उपस्थित था या उसका प्रतिनिधित्व किया गया था, कलक्टर के अधिनिर्णय की तारीख से छह सप्ताह के भीतर,

(ख) अन्य दशाओं में, धारा 12 की उपधारा (2) के अधीन कलक्टर से सूचना की प्राप्ति के छह सप्ताह और कलक्टर के अधिनिर्णय की तारीख से छह मास में से जिस कालावधि का पहले अवसान हो उसके भीतर,

किया जाएगा ।

धारा 23

23. **प्रतिकर अवधारित करने में विचार में ली जाने वाली बातें** – (1) उस प्रतिकर की, जो इस अधिनियम के अधीन अर्जित भूमि के लिए अधिनिर्णीत किया जाना है, रकम अवधारित करने में न्यायालय –

प्रथम धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन की अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख पर उस भूमि का बाज़ार मूल्य ;

द्वितीय, वह नुकसान जो हितबद्ध व्यक्ति किन्हीं ऐसी खड़ी फसलों या वृक्षों के ले लिए जाने के कारण उठाया हो जो जब कलक्टर ने उस भूमि पर कब्ज़ा किया, उस समय उस भूमि पर हो ;

तृतीय, वह नुकसान (यदि कोई हो), जो हितबद्ध व्यक्ति ने ऐसी भूमि अपनी दूसरी भूमि से अलग किए जाने के कारण उस समय उठाया हो जब कलक्टर ने उस भूमि पर कब्ज़ा किया ;

चतुर्थ, वह नुकसान (यदि कोई हो), जो हितबद्ध व्यक्ति ने उस समय जब कलक्टर ने उस भूमि पर कब्ज़ा किया, इस कारण उठाया हो कि उस अर्जन से उसकी अन्य स्थावर या जंगम संपत्ति पर किसी अन्य रीति में या उसके उपार्जनों पर

क्षतिकर प्रभाव पड़ा है ;

पंचम, उस दशा में, जिसमें कि हितबद्ध व्यक्ति कलक्टर द्वारा उस भूमि के अर्जन के परिणामस्वरूप अपना निवास या कारबार का स्थान बदलने के लिए विवश हो जाता है, ऐसी तब्दीली से आनुषंगिक युक्तियुक्त व्यय (यदि कोई हो) ; तथा

षष्ठम्, वह नुकसान (यदि कोई हो), जो धारा 6 के अधीन घोषणा के प्रकाशन के समय और कलक्टर द्वारा उस भूमि पर कब्ज़ा किए जाने के समय के बीच भूमि से लाभों में घटती होने के परिणामस्वरूप सद्भाव रहते हुए भी हुआ हो,

विचार में लेगा ।

(1क) भूमि के बाजार मूल्य के अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर उपबंधित है, न्यायालय प्रत्येक मामले में ऐसी भूमि के संबंध में धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से ही प्रारंभ होने वाली और कलक्टर के अधिनिर्णय की तारीख तक या उस भूमि का कब्ज़ा लेने की तारीख तक की, इनमें से जो भी पहले हो, कालावधि के लिए ऐसे बाजार मूल्य पर बारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से संगणित रकम अधिनिर्णीय करेगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में निर्दिष्ट कालावधि की संगणना करने में ऐसी कालावधि या कालावधियों को, जिसके दौरान भूमि के अर्जन के लिए कार्यवाहियां किसी न्यायालय के आदेश द्वारा, रोक आदेश या व्यादेश के कारण रोक दी गई थीं, अपवर्जित कर दिया जाएगा ।

(2) भूमि के बाजार मूल्य के अतिरिक्त, जैसा कि ऊपर उपबंधित किया गया है, हर मामले में न्यायालय ऐसे बाजार मूल्य के तीस प्रतिशत के बराबर राशि अर्जन के वैवश्यिक प्रकृति का होने के प्रतिफलस्वरूप अधिनिर्णीत करेगा ।

धारा 26

26. **अधिनिर्णयों का प्ररूप** – (1) इस भाग के अधीन वाला हर अधिनिर्णय लिखित रूप में और न्यायाधीश द्वारा हस्ताक्षरित होगा और उसमें धारा 23 की उपधारा (1) के प्रथम खंड के अधीन अधिनिर्णीत रकम और उसी उपधारा के अन्य खंडों में से क्रमशः हर एक के अधीन अधिनिर्णीत रकमें भी (यदि कोई हों) उक्त रकमों में से हर

एक के अधिनिर्णीत किए जाने के आधारों सहित विनिर्दिष्ट होगी ।

(2) ऐसा हर अधिनिर्णय एक डिक्री और ऐसे अधिनिर्णीत किए जाने के आधारों का कथन एक निर्णय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) की क्रमशः धारा 2 के खंड (2) और धारा 2 के खंड (9) के अर्थ में समझा जाएगा ।

धारा 28

28. **अतिरिक्त प्रतिकर पर ब्याज देने का निदेश कलक्टर को दिया जा सकेगा** – यदि वह राशि, जिसकी बाबत न्यायालय की राय है कि कलक्टर द्वारा वह प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत की जानी चाहिए थी, उस राशि से, जो कलक्टर ने प्रतिकर के रूप में अधिनिर्णीत की है, अधिक है तो न्यायालय के अधिनिर्णय में यह निदेश हो सकेगा कि कलक्टर ऐसे आधिक्य पर उस तारीख से, जिसको उसने भूमि का कब्ज़ा लिया, ऐसा आधिक्य न्यायालय में जमा किए जाने की तारीख तक नौ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज दे :

परन्तु न्यायालय के अधिनिर्णय में यह भी निदेश हो सकेगा कि जहां ऐसे आधिक्य या उसके किसी भाग को ऐसी तारीख से जिसको कब्ज़ा लिया जाता है, एक वर्ष की कालावधि के अवसान की तारीख के पश्चात् न्यायालय में जमा किया जाता है वहां ऐसे आधिक्य की रकम या उसके भाग पर, जो ऐसे अवसान की तारीख के पूर्व न्यायालय में जमा नहीं किया गया है, एक वर्ष की उक्त कालावधि के अवसान की तारीख से पन्द्रह प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदेय होगा ।

धारा 28क

28क. **न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण** – (1) जहां इस भाग के अधीन किसी अधिनिर्णय में आवेदन को न्यायालय, कलक्टर द्वारा धारा 11 के अधीन अधिनिर्णीत रकम से अधिक प्रतिकर की शेष रकम अनुज्ञात करता है वहां धारा 4 की उपधारा (1) के अधीन उसी अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली अन्य सभी भूमि में हितबद्ध ऐसे व्यक्ति, जो कलक्टर के अधिनिर्णय से भी व्यथित हैं, इस बात के होते हुए भी कि उन्होंने धारा 18 के अधीन कलक्टर से आवेदन नहीं किया है, न्यायालय के

अधिनिर्णय की तारीख से तीन मास के भीतर कलक्टर से लिखित आवेदन करके यह अपेक्षा कर सकेंगे कि उनको संदेय प्रतिकर की रकम न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर की रकम के आधार पर पुनः अवधारित की जाए :

परन्तु तीन मास की ऐसी कालावधि की संगणना करने में, जिसके भीतर इस उपधारा के अधीन कलक्टर से आवेदन किया जाएगा । उस दिन को, जिस दिन अधिनिर्णय सुनाया गया था और उस समय को, जो अधिनिर्णय की प्रति प्राप्त करने के लिए अपेक्षित हो, अपवर्जित कर दिया जाएगा ।

(2) कलक्टर, उपधारा (1) के अधीन आवेदन के प्राप्त होने पर, सभी हितबद्ध व्यक्तियों को सूचना देने और उन्हें सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देने के पश्चात्, जांच करेगा और आवेदकों को संदेय प्रतिकर की रकम अवधारित करते हुए अधिनिर्णय करेगा ।

(3) कोई ऐसा व्यक्ति, जिसने उपधारा (2) के अधीन अधिनिर्णीय स्वीकार नहीं किया है, कलक्टर से लिखित आवेदन करके यह अपेक्षा कर सकेगा कि उस मामले को न्यायालय के अवधारण के लिए कलक्टर द्वारा निर्देशित किया जाए और धारा 18 से धारा 28 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे निर्देश को वैसे ही लागू होंगे जैसे वे धारा 18 के अधीन किसी निर्देश को लागू होते हैं ।

धारा 34

34. **ब्याज का संदाय** – जबकि ऐसे प्रतिकर की रकम भूमि का कब्ज़ा लेने पर या के पूर्व न तो दी जाती है और न निक्षिप्त की जाती है तब कलक्टर अधिनिर्णीत रकम ऐसे कब्ज़ा लेने के समय से लेकर उतनी कालावधि तक के, जब तक वह ऐसे संदत्त या निक्षिप्त नहीं की जाती, नौ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से उस पर ब्याज सहित देगा :

परन्तु यदि ऐसा प्रतिकर या उसका कोई भाग उस तारीख से, जिसको कब्ज़ा लिया जाता है, एक वर्ष की कालावधि के भीतर संदत्त या निक्षिप्त नहीं किया जाता है तो ऐसे प्रतिकर की रकम या उसके भाग पर जो ऐसे अवसान की तारीख के पूर्व संदत्त या निक्षिप्त नहीं किया गया है, एक वर्ष की उक्त कालावधि के अवसान की तारीख से पन्द्रह प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदेय होगा ।

26. धारा 11 कलक्टर द्वारा जांच करने और अधिनिर्णय देने के संबंध में है । इस धारा में ऐसे तीन शीर्षों का उपबंध किया गया है जिनके अधीन अधिनिर्णय किया जाना है, अर्थात्, (i) भूमि का सही क्षेत्रफल; (ii) वह प्रतिकर, जो उसकी राय में भू-स्वामियों को संदेय है; (iii) भूमि में हितबद्ध समस्त व्यक्तियों के बीच प्रतिकर का प्रभाजन ।

27. धारा 18 में उन व्यक्तियों के लिए, जिन्होंने अधिनियम की धारा 11 के अधीन पारित कलक्टर के अधिनिर्णय को स्वीकार नहीं किया है, उपचार का उपबंध है । ऐसे व्यक्ति कलक्टर से विवाद्यकों का विनिश्चय करने के लिए सिविल न्यायालय को निर्देश करने की प्रार्थना कर सकते हैं । वे विवाद्यक ये हैं : प्रथमतः – भूमि के माप से संबंधित, द्वितीयतः – प्रतिकर की रकम, तृतीयतः – वे व्यक्ति, जिन्हें प्रतिकर संदेय है और चतुर्थतः – हितबद्ध व्यक्तियों के बीच प्रतिकर का प्रभाजन ।

28. अधिनियम की धारा 23 में ऐसे छह कारकों का उपबंध है, जिन्हें न्यायालय द्वारा प्रतिकर का अवधारण करते समय ध्यान में रखा जाना आवश्यक है । उपधारा (1क) और उपधारा (2) में प्रत्येक भू-स्वामी को भूमि के बाजार मूल्य के अतिरिक्त संदेय कानूनी प्रतिकर का संदाय करने का उपबंध है । उपधारा (1क) के अधीन, भू-स्वामी को भूमि के बाजार मूल्य के 12 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर प्रतिकर का संदाय किया जाता है जबकि उपधारा (2) के अधीन उसे उसकी भूमि के बाजार मूल्य के 30 प्रतिशत की दर पर प्रतिकर का संदाय किया जाता है ।

29. धारा 26 में अधिनिर्णयों के प्ररूप के संबंध में उपबंध किया गया है । इसमें यह उपबंधित है कि प्रथमतः वह धारा 23 की उपधारा (1) के प्रथम खंड के अधीन अधिनिर्णीत रकम को और ऐसी रकमों को भी, यदि कोई हैं, जो उसी उपधारा के अन्य खंडों में से प्रत्येक के अधीन अधिनिर्णीत की गई हैं, उक्त प्रत्येक रकम अधिनिर्णीत करने के आधारों सहित विनिर्दिष्ट करेगा ।

30. इसमें दो धाराएं ऐसी हैं जो ब्याज के संदाय के संबंध में है, अर्थात् धारा 28 और धारा 34 जहां तक धारा 38 का संबंध है, यह अधिक प्रतिकर पर ब्याज का संदाय करने के संबंध में है । इसमें सिविल न्यायालय को कलक्टर द्वारा अधिनिर्णीत रकम से अधिक अधिनिर्णीत रकम के आधिक्य पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त किया गया है । इसमें न्यायालय को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह कलक्टर को न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत ऐसे आधिक्य रकम पर उस तारीख से, जिसको कलक्टर

ने भूमि का कब्जा लिया, ऐसी आधिक्य रकम न्यायालय में जमा किए जाने की तारीख तक 9 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदत्त करने का निर्देश दें । इसके अलावा, धारा 28 के परन्तुक में न्यायालय को ऐसी आधिक्य रकम पर ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए समर्थ बनाया गया है यदि भूमि के संबंध में किन्हीं अर्जन कार्यवाहियों में परन्तुक में विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी कर दी जाती हैं ।

31. जहां तक धारा 34 का संबंध है, यह भू-स्वामियों को ब्याज का संदाय करने की एक अन्य पद्धति के संबंध में है । इसमें यह उपबंध किया गया है कि यदि प्रतिकर भूमि का कब्ज़ा लेने पर या के पूर्व न तो संदत्त किया जाता है और न ही निक्षिप्त किया जाता है तब कलक्टर ऐसे कब्ज़ा लेने के समय से लेकर उतनी कालावधि तक के, जब तक वह ऐसे संदत्त या निक्षिप्त नहीं किया जाता, नौ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से उस पर ब्याज देगा । तथापि, इस धारा का परन्तुक कलक्टर को 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज संदत्त करने के लिए सशक्त करता है, यदि उसमें विनिर्दिष्ट शर्तें किसी अर्जन मामले में पूरी कर दी जाती हैं ।

32. धारा 28क में न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने का उपबंध किया गया है । इसमें भू-स्वामियों को उनके समान ऐसे अन्य व्यक्तियों के मामलों में, जिनकी भूमि धारा 4 की उसी अधिसूचना के अधीन अर्जित की गई थी और जिन्होंने उन्हें संदेय प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए न्यायालय में समावेदन किया था जबकि अन्य भू-स्वामियों ने उनके साथ न्यायालय में समावेदन नहीं किया था, न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के आधार पर उन्हें संदेय प्रतिकर की रकम का पुनः अवधारण करने के लिए न्यायालय में समावेदन करने के लिए समर्थ बनाया गया है । ऐसे भू-स्वामियों को न्यायालय के ऐसे अधिनिर्णय की तारीख से तीन मास के भीतर कलक्टर को आवेदन करने का और उसमें उसी प्रतिकर का दावा करने का अधिकार दिया गया है जो कि न्यायालय द्वारा अन्य भू-स्वामियों के अधिनिर्णीत किया गया था । धारा 28क की उपधारा (2) कलक्टर को जांच का संचालन करने और ऐसे भू-स्वामियों को संदेय प्रतिकर की रकम का अवधारण करते हुए अधिनिर्णय करने के लिए सशक्त करती है । धारा 28क की उपधारा (3) भू-स्वामियों को अपना/अपने मामला/मामले न्यायालय को निर्देशित करने के लिए कलक्टर को समावेदन करने के लिए सशक्त करती है यदि वह/वे अधिनियम की धारा 28क की उपधारा (2) के

अधीन कलक्टर द्वारा पारित अधिनिर्णय से व्यथित है/हैं ।

33. ऊपर उल्लिखित धाराओं के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कलक्टर को भू-स्वामियों को संदेय प्रतिकर का अवधारण करते समय उन तीन कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है जो धारा 11 के अधीन विनिर्दिष्ट हैं जबकि न्यायालय के लिए अधिनियम की धारा 23(1) के अधीन विनिर्दिष्ट छह कारकों को ध्यान में रखना आवश्यक है । ये कारक प्रत्येक मामले में भिन्न-भिन्न होते हैं ।

34. इसी प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि धारा 28 और धारा 34, जो कि अधिनिर्णीत धनराशि पर ब्याज का संदाय करने के संबंध में हैं, उस मामले में लागू होती हैं जहां भू-स्वामी द्वारा अपने मामले में संबंधित धाराओं के अधीन विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी कर दी जाती हैं ।

35. इसी प्रकार, कलक्टर द्वारा धारा 18 के अधीन न्यायालय को निर्देश केवल तभी किया जाता है जब भूमि के माप या प्रतिकर की रकम के बारे में या ऐसे व्यक्तियों के बारे में कि प्रतिकर किसे संदेय है और अंततः प्रतिकर का दावा करने में हितबद्ध व्यक्तियों के बीच प्रतिकर के प्रभाजन के संबंध में विवाद हो ।

36. हमारी सुविचारित राय में, भू-स्वामियों को ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद, चाहे वह धारा 28 के अधीन हो या धारा 34 के अधीन, ऐसा कोई विवाद नहीं है जो अधिनियम की धारा 18 या/और धारा 28क(3) के अंतर्गत आता है । दूसरे शब्दों में, धारा 18 के अधीन कलक्टर द्वारा कोई निर्देश केवल उन विवाद्यकों की बाबत किया जा सकता है, जो धारा 18 के अधीन विनिर्दिष्ट हैं ।

37. भू-स्वामियों को अधिनियम की धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन संदेय ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी विवाद धारा 18 के अधीन विनिर्दिष्ट नहीं है और इसलिए यह कलक्टर द्वारा अधिनियम की धारा 18 के अधीन सिविल न्यायालय को निर्देशित किए जाने योग्य नहीं है । यह इस कारण भी है कि ब्याज का संदाय कानूनी स्वरूप का होने के कारण कानूनी है इसलिए जैसे ही धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन विनिर्दिष्ट शर्तें पूरी कर दी जाती हैं तो संदाय करना आज्ञापक है जाता है ।

38. यह सही है कि जैसा ही न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 28 के अधीन या कलक्टर द्वारा धारा 34 के अधीन ब्याज अधिनिर्णीत कर दिया जाता है, वह अधिनिर्णय का भाग बन जाता है । तथापि, ब्याज अधिनिर्णीत

न करने से संबंधित मुद्दे को चुनौती देने के उपचार से संबंधित प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए वह किसी प्रकार से महत्वपूर्ण नहीं है और न ही उसका उससे कोई संबंध है ।

39. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, ऐसे प्रश्न का विनिश्चय अधिनियम की धारा 18 की भाषा को ध्यान में रखते हुए किया जाना आवश्यक है, जिसमें वे मुद्दे विनिर्दिष्ट किए गए हैं जिनके संबंध में न्यायालय को निर्देश किया जा सकता है और ब्याज अधिनिर्णीत न करना अधिनियम की धारा 18 में विनिर्दिष्ट कोई मुद्दा नहीं है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, ब्याज अधिनिर्णीत न करने संबंधी मुद्दे का विनिश्चय करने के लिए अधिनियम की धारा 18 के अधीन न्यायालय को कोई निर्देश नहीं किया जा सकता है ।

40. हमारी राय में, ऊपर उल्लिखित तर्काधार अधिनियम की धारा 28क(2) और (3) के अंतर्गत आने वाले मामलों को भी समान रूप से लागू होता है क्योंकि कोई भी विवाद, चाहे वह धारा 11 के अधीन उद्भूत हो या धारा 28क(2) के अधीन, अधिनियम की धारा 18 के अधीन कलक्टर द्वारा निर्देश में सिविल न्यायालय को निर्देशित किया जा सकता है ।

41. इस न्यायालय ने धारा 28 और धारा 34 के उद्देश्य और व्याप्ति को **श्री विजय कॉटन एंड ऑयल मिल्स लिमिटेड** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में सारगर्भित रूप से निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट कर दिया है :–

> "16. धारा 28 और धारा 34 की भाषा में यह दर्शित करने के लिए अंतर्निहित साक्ष्य मौजूद है कि अधिनियम के निर्माताओं का आशय उस व्यक्ति को, जिसकी भूमि अर्जित की गई थी, ब्याज का संदाय सुनिश्चित करना था और उनका यह आशय नहीं था कि उक्त संदाय को प्रक्रियात्मक कठिनाइयों के अध्यधीन रखा जाए । धारा 34 में यह अधिकथित किया गया है कि 'कलक्टर अधिनिर्णीत रकम का संदाय 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर पर ब्याज सहित करेगा ....' विधायी आज्ञा स्पष्ट है । कलक्टर को उस विशिष्ट परिस्थिति में ब्याज का संदाय करने का निदेश दिया गया है । धारा 34 में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि ब्याज की रकम को अधिनियम की धारा 26 के साथ पठित धारा 23(1) के अधीन तैयार की गई अधिनिर्णय-डिक्री में

[1] (1991) 1 एस. सी. सी. 262.

शामिल किया जाना है । इसी प्रकार, धारा 28 में यह उपबंध किया गया है कि 'न्यायालय के अधिनिर्णय में यह निदेश दिया जा सकता है कि कलक्टर ब्याज का संदाय करेगा' । यहां भी, धारा 26 के साथ पठित धारा 23(1) के अधीन किए गए अधिनिर्णय को धारा के अधीन ब्याज का संदाय करने से सुभिन्न रखा गया है । धारा 34 के अधीन तथा धारा 28 के अधीन भी संदत्त किया जाने वाला ब्याज अधिनियम की धारा 23(1) के अधीन प्रतिकर की रकम से भिन्न प्रकृति का है । जबकि ब्याज का, यदि अधिनियम के अधीन संदेय है, अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर दावा किया जा सकता है किन्तु धारा 23(1) के अधीन प्रतिकर की रकम, जो कि धारा 26 के अधीन एक अधिनिर्णय-डिक्री है, प्रक्रिया और परिसीमा से संबंधित नियमों के अध्यधीन है । प्रक्रिया संबंधी नियम न्याय के अधीनस्थ हैं । प्रक्रियात्मक परेशानी इस अधिनियम के अधीन नागरिकों के सारवान् अधिकारों के मार्ग में रुकावट नहीं हो सकती ।"

42. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि किसी व्यथित व्यक्ति द्वारा ब्याज अधिनिर्णीत किए जाने के संबंध में विवाद केवल संविधान के अनुच्छेद 226 का अवलंब लेते हुए रिट याचिका में किया जा सकता है । दूसरे शब्दों में, धारा 18 या धारा 28क(3) के अधीन निर्देश को ऐसा कोई अनुकल्पी कानूनी उपचार नहीं समझा जा सकता है जो भू-स्वामी को अधिनियम की धारा 28 या/और धारा 34 के अधीन संदेय ब्याज अधिनिर्णीत न किए जाने संबंधी प्रश्न का सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चय किए जाने के लिए उपलब्ध है ।

43. इस न्यायालय ने **दिल्ली विकास प्राधिकरण** बनाम **महेन्द्र सिंह और एक अन्य**[1] वाले मामले में निम्नलिखित शब्दों में वही दृष्टिकोण अपनाया है जो कि हमने ऊपर अपनाया है :–

> "12. ऊपर जो कुछ उपदर्शित किया गया है उसे ध्यान में रखते हुए, यह निष्कर्ष निकालना अप्रतिरोध्य है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते समय ऐसी रीति में ब्याज संदत्त करने का निदेश देने की कोई गुंजाइश नहीं है जो कि न तो धारा 28 और न ही धारा 34 में अनुध्यात है ।"

44. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि उच्च

---

[1] (2009) 5 एस. सी. सी. 339.

न्यायालय ने प्रत्यर्थियों (भू-स्वामियों) द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं को ग्रहण करके सही किया था और अंततोगत्वा उसके द्वारा उन्हें गुणागुण के आधार पर मंजूर करना भी सही था ।

45. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने आक्षेपित निर्णय को गुणागुण के आधार पर प्रश्नगत नहीं किया था, इसलिए, हमें रिट याचिकाओं में अंतर्वलित मुद्दे की गुणागुण के आधार पर परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ।

46. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमें इन अपीलों में कोई सार प्रतीत नहीं होता है । अतः, अपीलें असफल होती हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं ।

2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 20089-20098 से उद्भूत 2018 की सिविल अपील सं. 1632-1641 तथा 2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 21043-21044 से उद्भूत 2018 की सिविल अपील सं. 1642-1643.

47. इजाजत दी जाती है ।

48. ये अपीलें मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 2010 की रिट याचिका (सिविल) सं. 5596 से 5605 में तारीख 22 मार्च, 2010 तथा 2006 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1556-1557 में तारीख 2 दिसम्बर, 2011 को पारित उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस मामले में के प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं का निपटारा 1999 की रिट अपील सं. 1384 से 1392 और 1755 में पारित तारीख 8 जुलाई, 2009 के आदेश के आधार पर कर दिया था ।

49. 2012 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 4689-4698 से उद्भूत सिविल अपीलों पारित निर्णय को ध्यान में रखते हुए, ये अपीलें असफल होती हैं और तद्नुसार खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

ग्रो.

[2018] 3 उम. नि. प. 381

देव कन्या तिवारी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

12 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति एन. वी. रमना और न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी न होना – पारिस्थितिक साक्ष्य – दोषसिद्धि – **जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में यह सिद्ध हो गया हो कि मृतक द्वारा विष खाकर आत्महत्या की गई है और मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में गला घोंटकर उसकी हत्या करने का कोई चिह्न मौजूद नहीं पाया गया है, वहां अभियुक्त को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त करना उचित होगा ।**

इस मामले के तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता-शशि भूषण तिवारी (अभि. सा. 5) ने तारीख 30 सितंबर, 1995 को पुलिस थाना, करछाना, जिला इलाहाबाद में एक शिकायत यह उल्लेख करते हुए दर्ज की कि उसका भाई बृज भूषण तिवारी (मृतक) अपने बालकों की कुशल-क्षेम जानने के लिए तारीख 28 सितंबर, 1995 को अपनी ससुराल गया था और उसका यह विश्वास है कि उसके भाई की उसकी पत्नी और ससुराल वालों ने हत्या कर दी । मृतक की पत्नी ने भी पुलिस में एक शिकायत दी । अन्वेषक अधिकारी ने साधारण डायरी में आवश्यक प्रविष्टियां करने के पश्चात् घटनास्थल का दौरा किया और स्थल-नक्शा बनाया तथा साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्त संतोष देवी (मृतक की पत्नी) और देव कन्या तिवारी (मृतक की सास और इस अपील में अपीलार्थी) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप विरचित किए । उन्होंने अपराध कारित करने की बात से इनकार किया और विचारण करने के लिए अनुरोध किया । उन्होंने यह प्रतिरक्षा ली कि मृतक ने विषाक्त गोलियां खाकर आत्महत्या की थी और उन्हें इस मामले में शिकायतकर्ता द्वारा मिथ्या रूप से फंसाया गया है क्योंकि वह संपूर्ण सम्पत्ति को हड़पना चाहता है । तथापि, विचारण के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त संतोष देवी-मृतक की पत्नी की मृत्यु हो गई । विचारण

न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियुक्त द्वारा मृतक की मृत्यु के लिए दिया गया स्पष्टीकरण मिथ्या है । विचारण न्यायालय ने यह समाधान होने पर कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दिया है, अभियुक्त-अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और जुर्माने सहित आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अभियुक्त-अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश से असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में गई । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की अभिपुष्टि की और अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । अभियुक्त-अपीलार्थी ने निचले न्यायालयों के विनिश्चय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह स्पष्ट है कि अभि. सा. 1 संतोष कुमार, अभि. सा. 2 लल्लन और अभि. सा. 3 शिव लाल ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया, अपितु विनिर्दिष्ट रूप से अभियुक्त के बयान का समर्थन किया । यह बात महत्वपूर्ण है कि इन साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था । अन्वेषक अधिकारी अभि. सा. 8 के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि डा. हीरा लाल ने उसे यह बताया था कि मृतक ने यह निवेदन किया है कि उसके जीवन को न बचाया जाए क्योंकि वह अपने जीवन से ऊब चुका है और उसने सल्फॉस की गोलियां खा ली हैं । तद्नुसार, पंचनामा स्वीकृत रूप से अभि. सा. 5 की मौजूदगी में तैयार किया गया था और पंचनामा के समय शव पर कोई स्पष्ट क्षति नहीं थी । अभि. सा. 7 राम निवास पांडे ने भी, जिसने पंचनामा भरा था और पंच साक्षियों के हस्ताक्षर कराए थे, यह कथन किया कि मृतक के शरीर पर कोई दृष्टिगोचर क्षति नहीं पाई गई थी और पंच साक्षियों की यह सामुहिक राय थी कि मृतक की मृत्यु कुछ विषैला पदार्थ खाने के कारण हुई है और उसने भी उनसे सहमति जताई थी । मामले की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, जब प्रारंभिक तौर पर मृतक की पत्नी द्वारा यह उल्लेख करते हुए दर्ज की गई शिकायत विद्यमान थी कि मृतक ने विष खाकर आत्महत्या की है, तो सामान्यतया यह प्रत्याशा की जाती है कि डाक्टर रासायनिक विश्लेषण के लिए विसरा परिरक्षित रखेगा । इस बिंदु पर अभियोजन पक्ष अपने कर्तव्य को पूरा करने में असफल रहा है, क्योंकि विसरा परिरक्षित रखने के लिए कोई उपाय नहीं किए थे । अभि. सा. 6 डाक्टर द्वारा किया गया मात्र यह कथन इस मामले के विलक्षण तथ्यों में पर्याप्त नहीं है कि विसरा इसलिए

परिरक्षित नहीं किया गया था क्योंकि विष की मौजूदगी नहीं थी, विशिष्ट रूप से जब स्वतंत्र पंच साक्षियों ने एक साथ तथा अन्वेषक अधिकारी ने भी अपना यह मत लेखबद्ध किया है कि यह एक विषाक्तिकरण का मामला है और इसका अभि. सा. 1, 2 और 3 द्वारा सम्यक् रूप से समर्थन किया गया है । तथापि, अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन पक्ष द्वारा किए गए अभिकथन का समर्थन केवल अभि. सा. 5 मृतक के भाई द्वारा किया गया है । यहां तक कि मृतक के पिता (अभि. सा. 4) के साक्ष्य को भी विचार में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि उसे घटना के बारे में जानकारी केवल अभि. सा. 5 के माध्यम से मिली थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट के रूप में चिकित्सीय साक्ष्य से हालांकि अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन होता है, किंतु डाक्टर द्वारा विसरा को परिरक्षित न करने की बात अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक हो जाती है । यह उल्लेख करना उपयोगी है कि अभि. सा. 5 ने अपने साक्ष्य में कहीं भी मृतक की गर्दन पर बांधने का चिह्न देखने के बारे में उल्लेख नहीं किया है और न ही पंचनामा के दौरान उसने मृत्यु के कारण की बात उठाई थी । वास्तविकता यह है कि कतिपय पहलुओं पर विचारण न्यायालय ने भी अभि. सा. 5 के वृत्तांत को अविश्वसनीय पाया है । इस न्यायालय की राय में, अभियोजन पक्ष घटनाओं की उस श्रृंखला को सिद्ध करने में पूरी तरह से असफल रहा है जो अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हो और निचले न्यायालयों ने विधि के स्थिर सिद्धांतों के अनुसार मामले पर विचार करने में गंभीर गलती की है । न्यायालय का सर्वोपरि ध्यान अवश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि न्याय की हानि न हो । दांडिक न्याय प्रशासन में सर्वाधिक प्रचलित धारणा यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हैं, जिनमें से एक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करता हो और दूसरा अभियुक्त की निर्दोषिता को, तो वह मत जो अभियुक्त के समर्थन में है, उसे ही प्रसामान्यतः अपनाया जाना चाहिए । क्योंकि इस न्यायालय ने पहले ही यह मत व्यक्त किया है कि इस मामले में इस बारे में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि मृतक ने विष खाया था या उसकी गला घोंट कर मृत्यु कारित की गई थी । मृतक के संपूर्ण शरीर पर छालों की मौजूदगी और उसके नाखून नीले हो जाना, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित अनुसार मृतक के शरीर पर उंगलियों के कोई चिह्न न होना, पंचनामा के समय अभि. सा. 5 का मौजूद रहना और कोई आक्षेप न करना, डा. हीरा लाल की परीक्षा न करना, अधिकांश अभियोजन साक्षियों द्वारा किए गए संपुष्टिकारी कथनों के साथ-साथ

अन्वेषक अधिकारी का कथन, जिसको डा. हीरा लाल ने यह बताया था कि मृतक ने विष खाया है, सभी परिस्थितियां अभियुक्त के इस पक्षकथन को सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य का गठन करती हैं कि मृतक ने आत्महत्या की थी । इसलिए इस न्यायालय का यह मत है कि निचले न्यायालयों को अपीलार्थी को संदेह का फायदा देने के लिए प्रेरित होना चाहिए था, क्योंकि इस मामले के विलक्षण तथ्यों में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं है । (पैरा 15, 16, 17 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1953] 1953 क्रिमिनल ला जर्नल 129 :
हनुमंत गोविंद नारगुंडकर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** । 10

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 720.

2014 की दांडिक अपील सं. 2894 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 14 मार्च, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एस. वसीम ए. कादरी, जुबैर अहदम खान, जैद अली, तमीम कादरी, मुदसीर नबी, सईद कादरी, सय्यद फैजान अली और लक्ष्मी रमन सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री रत्नाकर दास, ज्येष्ठ अधिवक्ता और अरधेंदुमौली कुमार प्रसाद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमना ने दिया ।

न्या. रमना – विशेष इजाजत लेकर फाइल की गई यह अपील 2014 की दांडिक अपील सं. 2894 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 14 मार्च, 2016 को पारित किए गए उस निर्णय से उद्भूत हुई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई दांडिक अपील को खारिज करते हुए 1997 के सेशन मामला सं. 105 में विचारण न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन अपराधों के लिए तारीख 22 जुलाई, 2014 को अधिनिर्णीत उसकी दोषसिद्धि और दंडादेश को कायम रखा ।

2. अभियोजन पक्षकथन से प्रकटित अनुसार इस मामले के तथ्य यह हैं कि शिकायतकर्ता-शशि भूषण तिवारी (अभि. सा. 5) ने तारीख 30 सितंबर, 1995 को पुलिस थाना, करछाना, जिला इलाहाबाद में एक शिकायत (उपाबंध पी-2) यह कथन करते हुए दर्ज की कि उसका भाई बृज भूषण तिवारी (मृतक) अपने बालकों की कुशल-क्षेम जानने के लिए तारीख 28 सितंबर, 1995 को अपनी ससुराल गया था और उसका यह विश्वास है कि उसके भाई की उसकी पत्नी और ससुराल वालों ने हत्या कर दी, इस शिकायत को 1995 के अपराध मामला सं. 177 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । मृतक की पत्नी ने भी पुलिस में एक शिकायत दी । थाना अधिकारी राम निवास पांडे (अभि. सा. 7) ने शव की मृत्यु-समीक्षा की, पंचायतनामा (प्रदर्श पी-2) तैयार किया और शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा । डा. अशोक कुमार गुप्ता (अभि. सा. 6) ने तारीख 1 अक्तूबर, 1995 को मरणोत्तर परीक्षा की और मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी-1 के रूप में चिह्नित है । डाक्टर ने यह राय व्यक्त की कि मृत्यु गला घोंटने की वजह से श्वासावरोध होने के कारण हुई थी ।

3. अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 8) वीर बहादुर सिंह ने साधारण डायरी में आवश्यक प्रविष्टियां करने के पश्चात् घटनास्थल का दौरा किया और स्थल-नक्शा (प्रदर्श पी-5) बनाया, साक्षियों के कथन अभिलिखित किए और अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र (प्रदर्श पी-6) फाइल किया । मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, इलाहाबाद ने अपराध का संज्ञान किया और मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने अभियुक्त संतोष देवी (मृतक की पत्नी) और देव कन्या तिवारी (मृतक की सास और इस अपील में अपीलार्थी) के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन आरोप विरचित किए । उन्होंने अपराध कारित करने की बात से इनकार किया और विचारण करने के लिए अनुरोध किया । उन्होंने यह प्रतिरक्षा ली कि मृतक ने विषाक्त गोलियां खाकर आत्महत्या की थी और उन्हें इस मामले में शिकायतकर्ता द्वारा मिथ्या रूप से फंसाया गया है क्योंकि वह संपूर्ण सम्पत्ति को हड़पना चाहता है । तथापि, विचारण के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त संतोष देवी मृतक की पत्नी की मृत्यु हो गई ।

4. अभियोजन पक्ष ने विचारण में अपने पक्षकथन के समर्थन में कुल 8 साक्षियों की परीक्षा की । विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभियुक्त द्वारा मृतक की मृत्यु के लिए दिया गया स्पष्टीकरण मिथ्या है ।

विचारण न्यायालय ने यह समाधान होने पर कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित कर दिया है, अभियुक्त-अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/34 के अधीन दोषसिद्ध किया और आजीवन कारावास भुगतने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने और जुर्माने का संदाय करने में असफल रहने पर छह माह का अतिरिक्त कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया ।

5. अभियुक्त-अपीलार्थी विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि और दंडादेश के आदेश से असंतुष्ट होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में गई । उच्च न्यायालय ने इस अपील में आक्षेपित निर्णय द्वारा विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश की अभिपुष्टि की और अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । अपीलार्थी ने निचले न्यायालयों के विनिश्चय से व्यथित होकर हमारे समक्ष यह अपील फाइल की है ।

6. हमने अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल तथा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सुना ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की विनिर्दिष्ट दलील यह है कि निचले न्यायालयों द्वारा अधिनिर्णीत दोषसिद्धि और दंडादेश का आदेश गंभीर कमियों से ग्रस्त है । मरणोत्तर परीक्षा प्रमाणपत्र को असम्यक् महत्व दिया गया है जिसमें यह उपदर्शित किया गया है कि मृतक की मृत्यु गला घोंटने से हुई थी और शरीर पर एक बांधने का निशान पाया गया था । मृतक के अंग संकुचित हो गए थे और संपूर्ण शरीर पर छाले पाए गए थे तथा नाखून नीले हो गए थे, जिससे स्पष्ट रूप से यह प्रतिबिंबित होता है कि यह एक विषाक्तिकरण का मामला था और वस्तुतः मृतक ने विष खाकर आत्महत्या की थी । अपीलार्थी को मिथ्या रूप से फंसाने की दृष्टि से मृतक द्वारा विष खाकर आत्महत्या करने के तथ्य को दरकिनार कर दिया गया और इसीलिए डाक्टरों द्वारा विसरा परिरक्षित नहीं रखा गया था । अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र साक्षी नहीं था ।

8. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि पंचनामा रिपोर्ट अभि. सा. 5 की मौजूदगी में तैयार की गई थी और पंचनामा में शरीर पर कोई बांधने का निशान या क्षतियां होने का उल्लेख नहीं था । पंचनामा तैयार करने के दौरान अभि. सा. 5 द्वारा कोई आक्षेप नहीं किया गया था । निचले न्यायालयों ने मामले के इन महत्वपूर्ण तथ्यों की अनदेखी करते हुए

अभियुक्त-अपीलार्थी को दोषसिद्ध ठहराया, जो विधि की गंभीर गलती है और इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए ।

9. दूसरी ओर, राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थी की ओर से दिए गए तर्कों का जोरदार रूप से विरोध किया और यह दलील दी कि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए अभिलेख पर पर्याप्त साक्ष्य है और निचले न्यायालयों ने चिकित्सीय साक्ष्य पर विचार करने में कोई गलती नहीं की है । मृतक की मृत्यु अभियुक्त के मकान में हुई थी जहां उसे अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था और घटनाओं की शृंखला को पूर्ण रूप से साबित किया गया है, इसलिए इस अपील को खारिज करने कि ईप्सा की गई ।

10. दोनों पक्षों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् हमने अभिलेख की सामग्री पर सावधानीपूर्वक विचार किया है । स्पष्टतः, घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है और मामला पूर्णतः पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । ऐसे मामले में, न्यायालय से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह साक्ष्य का विश्लेषण करने और अभियुक्त को दोषसिद्ध करने में अधिक सावधानी बरते । दूसरे शब्दों में, सभी अधिसंभाव्यताओं में परिस्थितियों की शृंखला से यह अप्रतिरोध्य निष्कर्ष निकलना चाहिए कि अभियुक्त ने अपराध कारित करने में भाग लिया था और अपराध कारित किया था । इस न्यायालय ने बहुत पहले **हनुमंत गोविंद नारगुंडकर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में पारिस्थितिक साक्ष्य का मूल्यांकन करने की रीति को निम्नलिखित शब्दों में निश्चित किया है :–

> "यह स्मरण करना उचित है कि ऐसे मामलों में जहां साक्ष्य पारिस्थितिक प्रकृति का है, वहां परिस्थितियां जिनसे दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना है, वे प्रथम बार में पूरी तरह से सिद्ध की जानी चाहिएं और इस प्रकार सिद्ध किए गए सभी तथ्य केवल अभियुक्त की दोषिता की परिकल्पना के संगत होने चाहिएं । पुनः, परिस्थितियां एक निश्चायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिएं और वे ऐसी होनी चाहिएं जिससे कि साबित किए जाने के लिए प्रस्थापित परिकल्पना को छोड़ कर प्रत्येक परिकल्पना को अपवर्जित किया जा सके । दूसरे शब्दों में, <u>साक्ष्य की शृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए</u>

---

[1] 1953 क्रिमिनल ला जर्नल 129.

जिससे कि अभियुक्त की निर्दोषिता के संगत निष्कर्ष निकालने के लिए कोई युक्तियुक्त आधार न बचे और यह निष्कर्ष ऐसा होना चाहिए जिससे यह दर्शित हो कि सभी मानवीय अधिसंभाव्यताओं में कृत्य अभियुक्त द्वारा किया गया था ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

11. प्रस्तुत मामले में, अभि. सा. 5 द्वारा दर्ज कराई गई शिकायत से पूर्व अन्य अभियुक्त संतोष देवी (जिसकी विचारण के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी) मृतक बृज भूषण तिवारी की पत्नी द्वारा तारीख 30 सितंबर, 1995 को पहले ही एक शिकायत (उपाबंध पी-1) दर्ज कराई गई थी । उस शिकायत के अनुसार, मृतक पूर्ववर्ती दिन खाना खाने के पश्चात् टहलने के लिए बाहर गया था और लगभग 6.00 बजे अपराह्न में लड़खड़ाते, डगमगाते और गिरते-पड़ते हुए वापस आया था । जब मृतक को डा. हीरा लाल (जिसकी परीक्षा नहीं की गई) के पास ले जाया गया तो उसने डाक्टर को सल्फास की गोलियां खा लेने के बारे में बताया, क्योंकि वह और जीवित रहना नहीं चाहता है और डाक्टर से अनुरोध किया कि उसके जीवन को बचाने के लिए कोई प्रयास न करे । जब वे उसे इलाहाबाद अस्पताल ले जा रहे थे, तो रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई । अभि. सा. 1 (संतोष कुमार), अभि. सा. 2 (लल्लन) और अभि. सा. 3 (शिव लाल) ने भी अपने अभिसाक्ष्यों में इन तथ्यों की अभिपुष्टि की । अन्वेषक अधिकारी, वीर बहादुर सिंह अभि. सा. 8 ने भी अपनी प्रतिपरीक्षा में इस तथ्य को स्वीकार किया कि डा. हीरा लाल ने अपने कथन में यह व्यक्त किया था कि मृतक उसे यह कह रहा था कि वह अपने जीवन से ऊब चुका है और इसलिए उसने सल्फास की गोलियां खा ली हैं । उसने (अभि. सा. 8) विनिर्दिष्ट रूप से यह प्रकट किया कि पंचनामा के समय शव पर कोई स्पष्ट क्षति नहीं थी । पत्नी की शिकायत को उद्धृत करना सुसंगत होगा, जो निम्नलिखित है :–

"सविनय निवेदन यह है कि आवेदक संतोष देवी, पत्नी बृज भूषण तिवारी हिंदूपुर, पुलिस करछाना की निवासी है । मेरा पति 3/4 दिन पहले मेरे पिता के घर आया था और यहां आराम से रह रहा था । कल लगभग 10.00 बजे पूर्वाह्न में वह खाना खाने के पश्चात् टहलने के लिए बाहर गया था । जब वह लगभग 6.00 बजे मेरे पिता के घर वापस आया तो वह लड़खड़ा और डगमगा रहा था और गिर-पड़ रहा था । इसलिए इन परिस्थितियों में आवेदक, उसकी माता और

गांव के अन्य निवासी किसी-न-किसी तरह से उसे हीरा लाल के क्लिनिक पर लेकर आए । वहां श्री बृज भूषण तिवारी ने स्वयं डाक्टर को बताया कि मैंने बहुत सारी सल्फास की गोलियां खा लीं हैं तथा मैं और जीवित नहीं रहना चाहता हूं और मेरे जीवन को बचाने का कोई प्रयास न किया जाए । उसके पश्चात् जब हम उसे इलाहाबाद अस्पताल ले जा रहे थे, तब रास्ते में उसकी मृत्यु हो गई ।

अतः, आवेदक आपको उचित कार्रवाई करने के लिए सूचित कर रही है ।"

12. उसी दिन अर्थात् तारीख 30 सितंबर, 1995 को अभि. सा. 5 मृतक के भाई ने भी थाना अधिकारी, पुलिस थाना करछाना के समक्ष निम्नलिखित एक शिकायत फाइल की :–

"यह विन्रम निवेदन है कि आवेदक गांव नारी, पुलिस थाना सोरौंव, जिला इलाहाबाद का निवासी है । यहां बेला चौरोहा, पुलिस थाना करछाना में राम सूरत तिवारी का मकान है, जो आवेदक के भाई स्वार्गीय श्री बृज भूषण तिवारी के ससुराल वालों का है । आवेदक का भाई तारीख 28 सितंबर, 1995 को अपने बालकों के बारे में जानने के लिए और उनकी कुशल-क्षेम के बारे में पता करने के लिए अपनी ससुराल गया था । कल तारीख 29 सितंबर, 1995 को रात्रि में 3.00 बजे आवेदक के घर यह सूचना प्राप्त हुई कि बेला चौराहा के कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने आवेदक के भाई स्वर्गीय श्री बृज भूषण तिवारी को मार दिया है ।

यह सूचना मिलने के पश्चात् मैं प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सीधे पुलिस थाने आया हूं । आवेदक का यह विश्वास है कि आवेदक के भाई को उसके ससुराल वालों ने मारा है ।

तद्द्वारा यह रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है । आवश्यक कार्रवाई की जाए ।"

13. पूर्वोल्लिखित दोनों शिकायतों के आधार पर दांडिक विधि के अधीन कार्रवाई आरंभ की गई । विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय ने मुख्य रूप से मृतक के भाई (अभि. सा. 5) के साक्ष्य और अभि. सा. 6 डाक्टर अशोक कुमार गुप्ता जिसने मरणोत्तर परीक्षा की थी, की राय का अवलंब लिया । अभि. सा. 5 के अनुसार, जब वह 10.00 बजे पूर्वाह्न में अभियुक्त के मकान पर पहुंचा तो उन्होंने रोना शुरू कर दिया और उसके

समक्ष यह संस्वीकृति की कि उन्होंने उसके भाई का गला घोंटने की गलती की है क्योंकि वह अपनी पत्नी को वापस ले जाने के लिए अड़ा हुआ था । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त ने उससे पुलिस में शिकायत न करने का भी निवेदन किया और यहां तक कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज होने के पश्चात् भी उन्होंने उससे प्रथम इत्तिला रिपोर्ट वापस ले लेने के लिए अनुरोध किया । चूंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में इस परिस्थिति का उल्लेख नहीं था, इसलिए विचारण न्यायालय ने अभियुक्त की न्यायिकेतर संस्वीकृति के विषय में अभि. सा. 5 के बयान पर विश्वास नहीं किया, तो भी यह मत व्यक्त किया कि पंचनामा मृतक के परिवार के किसी सदस्य के घटनास्थल पर पहुंचने से पूर्व तैयार किया गया था और पंचनामा के समय पर उसके परिवार का कोई सदस्य मौजूद नहीं था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अभि. सा. 5 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि पंचनामा तैयार करने के समय और जब शव को मरणोत्तर परीक्षा के लिए भेजा गया था, तब वह वहां मौजूद था । घटना के बारे में उसने यह कथन किया कि उसे कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं थी अपितु उसे केवल अनुश्रुत बात के आधार पर घटना के बारे में पता चला था ।

14. डा. अशोक कुमार गुप्ता (अभि. सा. 6), जिसने शव की मरणोत्तर परीक्षा की थी, ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसने मृतक के मुंह और नाक से रक्तरंजित तरल निकलता हुआ पाया था, जबकि उसके नाखून नीले रंग के हो गए थे तथा जीभ दांतों के बीच कसी हुई मुंह से बाहर निकली हुई थी । गर्दन के मध्य भाग पर बांधने के चिह्न की $13\frac{1}{2} \times \frac{1}{2}$ इंच की मृत्यु-पूर्व की क्षति थी, जबकि समस्त गर्दन पर अनुप्रस्थ रूप से स्थित नील मौजूद था । आंतरिक रूप से, टेंटुए की हड्डी का अस्थिभंग पाया गया था । उसकी राय में, मृत्यु का कारण गला घोंटने के परिणामस्वरूप श्वासावरोध हो जाना था । प्रतिपरीक्षा में यह प्रकट किया गया कि विष खाने के लक्षण न होने कारण विसरा परिरक्षित नहीं रखा गया था ।

15. विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट है कि अभि. सा. 1 संतोष कुमार, अभि. सा. 2 लल्लन, अभि. सा. 3 शिव लाल ने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया अपितु विनिर्दिष्ट रूप से अभियुक्त के बयान का समर्थन किया । यह बात महत्वपूर्ण है कि इन साक्षियों को पक्षद्रोही घोषित नहीं किया गया था । अन्वेषक अधिकारी अभि. सा. 8 के साक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि डा. हीरा लाल ने उसे यह बताया था कि मृतक ने यह

निवेदन किया है कि उसके जीवन को न बचाया जाए क्योंकि वह अपने जीवन से ऊब चुका है और उसने सल्फास की गोलियां खा ली हैं । तद्नुसार, पंचनामा स्वीकृत रूप से अभि. सा. 5 की मौजूदगी में तैयार किया गया था और पंचनामा के समय शव पर कोई स्पष्ट क्षति नहीं थी । अभि. सा. 7 राम निवास पांडे ने भी, जिसने पंचनामा (प्रदर्श पी 2) भरा था और पंच साक्षियों के हस्ताक्षर कराए थे, यह कथन किया कि मृतक के शरीर पर कोई दृष्टिगोचर क्षति नहीं पाई गई थी और पंच साक्षियों की यह सामूहिक राय थी कि मृतक की मृत्यु कुछ विषैला पदार्थ खाने के कारण हुई है और उसने भी उनसे सहमति जताई थी ।

16. मामले की उपरोक्त पृष्ठभूमि में, जब प्रारंभिक तौर पर मृतक की पत्नी द्वारा यह उल्लेख करते हुए दर्ज की गई शिकायत विद्यमान थी कि मृतक ने विष खाकर आत्महत्या की है, तो सामान्यतया यह प्रत्याशा की जाती है कि डाक्टर रासायनिक विश्लेषण के लिए विसरा परिरक्षित रखेगा । इस बिंदु पर अभियोजन पक्ष अपने कर्तव्य को पूरा करने में असफल रहा है क्योंकि विसरा परिरक्षित रखने के लिए कोई उपाय नहीं किए थे । अभि. सा. 6 डाक्टर द्वारा किया गया मात्र यह कथन इस मामले के विलक्षण तथ्यों में पर्याप्त नहीं है कि विसरा इसलिए परिरक्षित नहीं किया गया था क्योंकि विष की मौजूदगी नहीं थी, विशिष्ट रूप से जब स्वतंत्र पंच साक्षियों ने एक साथ तथा अन्वेषक अधिकारी ने भी अपना यह मत लेखबद्ध किया है कि यह एक विषाक्तिकरण का मामला है और इसका अभि. सा. 1, 2 और 3 द्वारा सम्यक् रूप से समर्थन किया गया है ।

17. तथापि, अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन पक्ष द्वारा किए गए अभिकथन का समर्थन केवल अभि. सा. 5 मृतक के भाई द्वारा किया गया है । यहां तक कि मृतक के पिता (अभि. सा. 4) के साक्ष्य को भी विचार में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि स्पष्ट रूप से यह प्रतीत होता है कि उसे घटना के बारे में जानकारी केवल अभि. सा. 5 के माध्यम से मिली थी । मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-1) के रूप में चिकित्सीय साक्ष्य से हालांकि अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन होता है, किंतु डाक्टर द्वारा विसरा को परिरक्षित न रखने की बात अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक हो जाती है । यह उल्लेख करना उपयोगी है कि अभि. सा. 5 ने अपने साक्ष्य में कहीं भी मृतक की गर्दन पर बांधने का चिह्न देखने के बारे में उल्लेख नहीं किया है और न ही पंचनामा के दौरान उसने मृत्यु के कारण की बात उठाई थी । वास्तविकता यह है कि कतिपय पहलुओं पर विचारण न्यायालय ने भी अभि. सा. 5 के वृत्तांत को अविश्वसनीय पाया है । हमारी

राय में, अभियोजन पक्ष घटनाओं की उस शृंखला को सिद्ध करने में पूरी तरह से असफल रहा है जो अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हो और निचले न्यायालयों ने विधि के स्थिर सिद्धांतों के अनुसार मामले पर विचार करने में गंभीर गलती की है ।

18. न्यायालय का सर्वोपरि ध्यान अवश्य यह सुनिश्चित करना होना चाहिए कि न्याय की हानि न हो । दांडिक न्याय प्रशासन में सर्वाधिक प्रचलित धारणा यह है कि यदि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हैं, जिनमें से एक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करता हो और दूसरा अभियुक्त की निर्दोषिता को, तो वह मत जो अभियुक्त के समर्थन में है उसे ही प्रसामान्यतः अपनाया जाना चाहिए । क्योंकि हमने प्रस्तुत मामले में पहले ही यह मत व्यक्त किया है कि इस बारे में कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि मृतक ने विष खाया था या उसकी गला घोंट कर मृत्यु कारित की गई थी । मृतक के संपूर्ण शरीर पर छालों की मौजूदगी और उसके नाखून नीले हो जाना, मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में उल्लिखित अनुसार मृतक के शरीर पर अंगुलियों के कोई चिह्न न होना, पंचनामा के समय अभि. सा. 5 का मौजूद रहना और कोई आक्षेप न करना, डा. हीरा लाल की परीक्षा न करना, अधिकांश अभियोजन साक्षियों द्वारा किए गए संपुष्टिकारी कथनों के साथ-साथ अन्वेषक अधिकारी का कथन, जिसको डा. हीरा लाल ने यह बताया था कि मृतक ने विष खाया है, सभी परिस्थितियां अभियुक्त के इस पक्षकथन को सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य का गठन करती हैं कि मृतक ने आत्महत्या की थी । इसलिए हम यह मत व्यक्त करते हैं कि निचले न्यायालयों को अपीलार्थी को संदेह का फायदा देने के लिए प्रेरित होना चाहिए था, क्योंकि इस मामले के विलक्षण तथ्यों में अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध करना सुरक्षित नहीं है ।

19. पूर्वगामी चर्चा को देखते हुए, यह अपील सफल होती है । अपीलार्थी को, यदि उसकी किसी अन्य मामले में अभिरक्षा अपेक्षित नहीं है, तुरंत अभिरक्षा से रिहा कर दिया जाए ।

20. तद्नुसार यह अपील मंजूर की जाती है । लंबित आवेदन, यदि कोई हैं, का भी निपटारा हो जाएगा ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

लोक प्रहरी, उसके महासचिव एस. एन. शुक्ला के माध्यम से और एक अन्य

बनाम

भारत संघ और अन्य

6 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति संजय किशन कौल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 106, अनुसूची 7, सूची 1, प्रविष्टि 73 [सपठित संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (1954 का 30] – धारा 8क, 8कक, 8कग और 6ख – संसद् सदस्यों, भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को पेंशन – विधिमान्यता – संविधान में किसी भी सांविधानिक कृत्यकारी को पेंशन का संदाय करना आदिष्ट नहीं है बल्कि उसमें नियुक्ति की तारीख को सुसंगत विधि के अधीन संदेय किसी पेंशन को केवल संरक्षित किया गया है तथा संविधान में कतिपय सांविधानिक कृत्यकारियों के लिए पेंशन संदत्त करने का उल्लेख होने पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि संविधान में अन्य सांविधानिक कृत्यकारियों को पेंशन का संदाय करना प्रतिषिद्ध किया गया है ।

कानूनों का निर्वचन – "भत्ते" अभिव्यक्ति – संविधान की अनुसूची 7, सूची 1 की प्रविष्टि 73 में आने वाली "भत्ते" अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत संसद् सदस्यों या भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करना और अन्य फायदे प्रदान करना भी आता है तथा वह संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के उपबंधों के अंतर्गत भी आती है ।

यह अपील उस रिट याचिका से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) में किए गए कतिपय संशोधनों की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई है । इसमें जिन उपबंधों को चुनौती दी गई है उनका संबंध संसद् सदस्यों और संसद् के भूतपूर्व सदस्यों और उनके पतियों (पत्नियों)/साथियों/आश्रितों को (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् संयुक्त रूप से "संबद्ध व्यक्ति (एसोसिएट्स)" कहा गया है) पेंशन

का संदाय करने और अन्य सुविधाएं प्रदान करने से है । प्रथम अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ ये प्रार्थनाएं कीं थीं – (1) यह घोषित किया जाए कि 1954 के अधिनियम सं. 30 के विभिन्न संशोधनकारी अधिनियमों के उपबंध और विशेष रूप से 2004 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 9 और 2006 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 40 तथा 2010 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 37 के वे उपबंध जिनमें भूतपूर्व संसद् सदस्यों/आश्रितों को पेंशन/कुटुम्ब पेंशन, पति/पत्नी और अन्य गैर-सदस्यों (साथी के अतिरिक्त) तथा भूतपूर्व संसद् सदस्यों को यात्रा सुविधाएं देने तथा टेलीफोन कालों, विद्युत और जल यूनिटों के अनुपयोजित कोटे के संबंध में सुविधाएं जारी रखने से संबंधित उपबंध किए गए हैं, संविधान और मूल अधिनियम के अधिकारातीत हैं । (2) विरोधी पक्षकार सं. 1 से 4 को यह परमादेश जारी किया जाए कि वे भूतपूर्व संसद् सदस्यों/आश्रितों को पेंशन/कुटुम्ब पेंशन का संदाय करना और ऊपर 1 में दी गई अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करना बन्द कर दें । (3) अवैध पेंशन/कुटुम्ब पेंशन प्राप्तिकर्ताओं से उसकी वसूली करने का आदेश किया जाए । उच्च न्यायालय ने इस मामले में के प्रथम अपीलार्थी द्वारा दी गई सभी दलीलों को नकारते हुए और यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट याचिका खारिज कर दी कि कॉमन काज़, एक रजिस्ट्रीकृत सोसायटी **बनाम** भारत संघ [(2002) 1 एस. सी. सी. 88] वाले मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संसद् भूतपूर्व संसद् सदस्यों के लिए पेंशन के संबंध में विधान बनाने के लिए सक्षम है और परिणामस्वरूप उसे ऐसी कोई शर्त विहित करने की शक्ति प्राप्त है जिसके अधीन पेंशन का संदाय किया जा सकता है । जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना शेष है, वह यह है कि क्या किन्हीं ऐसे आक्षेपित संशोधनों से, जो भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों के पक्ष में विभिन्न अधिकारों का और संसद् सदस्यों के लिए कतिपय अन्य सुविधाओं का सृजन करते हैं, विभेदकारी होने के कारण भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है । अपीलार्थी का यह पक्षकथन था कि कॉमन काज़ वाले मामले में दिया गया निर्णय इस बाबत मौन है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि कॉमन काज़ वाले मामले द्वारा अनुच्छेद 14 को दी गई चुनौती को पुरोबंधित कर दिया गया है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थियों की दलीलें इस गलत उपधारणा पर आधारित हैं कि संविधान के कतिपय उपबंधों में ऐसे व्यक्तियों को, जो सांविधानिक पद धारण करते हैं, जैसे इस न्यायालय के न्यायाधीश, पेंशन का संदाय किया जाना आदिष्ट है । न्यायालय ने संविधान के सुसंगत उपबंधों की भाषा की पहले ही परीक्षा कर ली है । उन उपबंधों के पाठ का सही और उचित अर्थान्वयन करने पर उनमें पेंशन का संदाय किया जाना आदिष्ट नहीं है । उनमें केवल उस पेंशन को, जो यदि उन पदों में से किसी भी पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति की तारीख को लागू सुसंगत विधि के अधीन संदेय है, यह घोषणा करके संरक्षित किया गया है कि ऐसी शर्त में किसी व्यक्ति की नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकर परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा । तथापि, उन व्यक्तियों को, जो ऐसे पद धारण करते हैं, पेंशन संदाय करने की सांविधानिक बाध्यता उन पदों से सुसंगत संविधान की समग्र स्कीम को ध्यान में रखते हुए, विवक्षा द्वारा उद्भूत हो सकती है । उन पदधारियों को इस संबंध में आश्वस्त करके उनकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि न तो विधायिका और न ही कार्यपालिका इस तथ्य के बावजूद कि उन पदों में से प्रत्येक पद के पदधारियों द्वारा शासकीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए लिया गया विनिश्चय या तो विधायिका या कार्यपालिका को स्वीकार्य है अथवा नहीं उन्हें उन वित्तीय संसाधनों से वंचित करने में समर्थ होगी जो उन्हें धनहीनता से दूर रखने के लिए आवश्यक हैं । इस विश्लेषण का प्रयोजन केवल यह प्रदर्शित करने तक सीमित है कि अपीलार्थियों ने यह उपधारणा करके गलत आधार पर कार्यवाही आरंभ की है कि संविधान के पाठ में ऐसे अभिव्यक्त उपबंध हैं जो कतिपय सांविधानिक पदों के संबंध में पेंशन संदत्त किया जाना आदिष्ट करते हैं । (पैरा 20)

इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि संविधान में कतिपय सांविधानिक कृत्यकारियों के लिए न कि अन्य कृत्यकारियों के संबंध में पेंशन का संदाय करने के बारे में अभिव्यक्त उल्लेख किया गया है, यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि संविधान के इस संबंध में मौन रहने के कारण, उसमें उन सांविधानिक कृत्यकारियों को पेंशन का संदाय किए जाने से प्रतिषिद्ध किया गया है । प्रत्येक सांविधानिक पदधारी या तो संविधान द्वारा या उसकी शक्तियों और कर्तव्यों से सुसंगत विधियों द्वारा उसे समनुदेशित शक्तियों और कर्तव्यों के अनुसार कृत्य करता है । संविधान के निर्माताओं का यह विश्वास था कि कतिपय पदधारियों के लिए प्रत्याशित व्यापक कोटि की स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए उनके लिए उच्चतर कोटि के संरक्षण की

अपेक्षा है । संविधान-निर्माता, सत्ताधारियों द्वारा ऐसे पदधारियों को अधीन बनाए जाने के इतिहास और प्रयासों से भिज्ञ थे । अतः, उनके कार्यकाल और उनके पदों से सुसंगत अन्य सेवा शर्तों के विभिन्न पहलुओं की बाबत सुरक्षोपायों के उपबंध किए गए थे । तथापि, जहां तक संसद् सदस्यों का संबंध है, ऐसे उच्चतर कोटि के सांविधानिक संरक्षण की वास्तव में आवश्यकता नहीं है क्योंकि विधियां बनाने का प्राधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त है । (पैरा 21)

वे निबंधन और शर्तें, जिनके अध्यधीन किसी व्यक्ति को सांविधानिक पद पर या तो नियुक्त किया जाता है या धारण करने के लिए निर्वाचित किया जाता है, नीति के चयन का विषय है । उन शर्तों को अवधारित करने के लिए सांविधानिक दृष्टि से पदाभिहित प्राधिकारी, समुचित विधायिका ही होगी । सांविधानिक विधि में यह भी सुस्थापित है कि नीति संबंधी चयन करने का विधायिका का प्राधिकार, संविधान द्वारा, या तो अभिव्यक्त उपबंध द्वारा या संविधान की स्कीम से उद्भूत होने वाली आवश्यक विवक्षा द्वारा अधिरोपित परिसीमाओं द्वारा ही सीमित है । यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि संविधान द्वारा जो कुछ प्रतिषिद्ध नहीं है वह विधायिका के लिए अनुज्ञेय है । (पैरा 22)

यदि इस दलील को स्वीकार किया जाता है कि वे सांविधानिक कृत्यकारी, जो संविधान के पाठ द्वारा पेंशन के हकदार हैं, उन सांविधानिक कृत्यकारियों से, जो अनन्य रूप से पेंशन का संदाय किए जाने के हकदार हैं, एक सुभिन्न वर्ग गठित करते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, संसद् या राज्य विधान-मंडल के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा केन्द्र और राज्यों के मंत्री पेंशन से निर्हकित हो जाएंगे । (पैरा 23)

अपीलार्थियों द्वारा दी गई एक अन्य दलील यह है कि राज्य के किसी कर्मचारी को उसकी अधिवार्षिकी के पश्चात् पेंशन संदेय होती है । चूंकि संसद् सदस्य राज्य के कर्मचारी नहीं हैं इसलिए वे पेंशन के हकदार नहीं हैं और न ही संसद् भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करने हेतु उपबंध करने के लिए सक्षम है । हमारी राय में, उपर्युक्त दलील में भ्रांति है, जहां तक उसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि पेंशन केवल राज्य के भूतपूर्व कर्मचारियों को न कि किसी अन्य व्यक्ति को संदेय हैं । ऐसी दलील इस तथ्य से कि राज्य के भूतपूर्व कर्मचारियों को किए जाने वाले कतिपय संदायों को पेंशन कहा जाता है और अपीलार्थियों के इस भ्रम से

प्रकट होती है कि "पेंशन" अभिव्यक्ति का केवल एक अर्थ हो सकता है । राज्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न अन्य प्रवर्गों के संदाय हैं, जिन्हें पेंशन कहा जाता है, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन और दिव्यांगता पेंशन आदि । (पैरा 24)

संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 73 में आने वाली संसद् सदस्यों के "भत्ते" अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत संसद् सदस्यों या भूतपूर्व संसद् सदस्यों को आक्षेपित उपबंधों के अंतर्गत "पेंशन" का संदाय करना और अन्य फायदे देना भी आता है । अन्यथा भी, सूची 1 की प्रविष्टि 97 के अधीन संसद् का प्राधिकार इतना व्यापक है कि उसके अंतर्गत आक्षेपित विधान भी आता है । (पैरा 27)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 6 एस. सी. सी. 82 : **अलगापुरम आर. मोहनराज और अन्य** बनाम **तमिलनाडु विधान सभा** ;	25,26
[2002]	(2002) 1 एस. सी. सी. 88 : **कॉमन काज़, एक रजिस्ट्रीकृत सोसायटी** बनाम **भारत संघ** ;	3,4,5,27
[1984]	[1984] 2 उम. नि. प. 199 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 189 : **डा. पी. नल्ला थम्पी थेरा** बनाम **भारत संघ** **और अन्य** ;	31
[1977]	(1977) 4 एस. सी. सी. 608 : **कर्नाटक राज्य** बनाम **भारत संघ** ;	22
[1976]	(1976) 2 एस. सी. सी. 310 : **केरल राज्य** बनाम **एन. एम. थॉमस** ;	22
[1819]	(1819) 4 लाइयर्स एडीशन 579: 4 व्हीट. 316 : **मकुलोच** बनाम **मैरीलैंड** ।	22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 3798.

2004 की लोक हित सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 1620 (एम.

बी.) सं. 1620 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की लखनऊ न्यायपीठ के तारीख 20 अप्रैल, 2016 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री एस. एन. शुक्ला-स्वयं, श्रीमती कामिनी जायसवाल, सुश्री श्रुति दत्त, जतिन्दर पाल सिंह, सुयश श्रीवास्तव और सुश्री रानी मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री के. के. वेणुगोपाल, महाधिवक्ता, शिव मंगल शर्मा, अपर महाधिवक्ता, अजीत कुमार सिन्हा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रोहित भट्ट, सुश्री अलंकृता सिन्हा, शरद कुमार सिंघानिया, बी. वी. बलराम दास, बी. कृष्ण प्रसाद, सुश्री मोनिषा हांडा और मोहित डी. राम

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर ने दिया ।

न्या. चेलामेश्वर – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील उस रिट याचिका से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) में किए गए कतिपय संशोधनों की सांविधानिक विधिमान्यता को चुनौती दी गई है । इसमें जिन उपबंधों को चुनौती दी गई है उनका संबंध संसद् सदस्यों और संसद् के भूतपूर्व सदस्यों और उनके पतियों (पत्नियों)/साथियों/आश्रितों को (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् संयुक्त रूप से "संबद्ध व्यक्ति (एसोसिएट्स)" कहा गया है) पेंशन का संदाय करने और अन्य सुविधाएं प्रदान करने से है । प्रथम अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रार्थनाएं कीं :–

> "1. यह घोषित किया जाए कि 1954 के अधिनियम सं. 30 के विभिन्न संशोधनकारी अधिनियमों के उपबंध और विशेष रूप से 2004 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 9 और 2006 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 40 तथा 2010 के संशोधनकारी अधिनियम सं. 37 के वे उपबंध जिनमें भूतपूर्व संसद् सदस्यों/आश्रितों को पेंशन/कुटुम्ब पेंशन, पति/पत्नी और अन्य गैर-सदस्यों (साथी के अतिरिक्त) तथा

भूतपूर्व संसद् सदस्यों को यात्रा सुविधाएं देने तथा टेलीफोन कालों, विद्युत और जल यूनिटों के अनुपयोजित कोटे के संबंध में सुविधाएं जारी रखने से संबंधित उपबंध किए गए हैं, संविधान और मूल अधिनियम के अधिकारातीत हैं ।

2. विरोधी पक्षकार सं. 1 से 4 को यह परमादेश जारी किया जाए कि वे भूतपूर्व संसद् सदस्यों/आश्रितों को पेंशन/कुटुम्ब पेंशन का संदाय करना और ऊपर 1 में दी गई अन्य सुविधाओं की व्यवस्था करना बन्द कर दें ।

3. अवैध पेंशन/कुटुम्ब पेंशन प्राप्तिकर्ताओं से उसकी वसूली करने का आदेश किया जाए ।"

3. उच्च न्यायालय ने इस मामले में के प्रथम अपीलार्थी द्वारा दी गई सभी दलीलों को नकारते हुए और यह अभिनिर्धारित करते हुए रिट याचिका खारिज कर दी कि **कॉमन काज़, एक रजिस्ट्रीकृत सोसायटी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न अब अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संसद् भूतपूर्व संसद् सदस्यों के लिए पेंशन के संबंध में विधान बनाने के लिए सक्षम है और परिणामस्वरूप उसे ऐसी कोई शर्त विहित करने की शक्ति प्राप्त है जिसके अधीन पेंशन का संदाय किया जा सकता है । हम विधायी सक्षमता के प्रश्न के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से पूर्णतः सहमत हैं ।

4. जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना शेष है, वह यह है कि क्या किन्हीं ऐसे आक्षेपित संशोधनों से, जो भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों के पक्ष में विभिन्न अधिकारों का और संसद् सदस्यों के लिए कतिपय अन्य सुविधाओं का सृजन करते हैं, विभेदकारी होने के कारण भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है । अपीलार्थी का यह पक्षकथन था कि **कॉमन काज़** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिया गया निर्णय इस बाबत मौन है । तथापि, उच्च न्यायालय ने यह मत अपनाया कि **कॉमन काज़** (उपर्युक्त) वाले मामले द्वारा अनुच्छेद 14 को दी गई चुनौती को पुरोबंधित कर दिया गया है ।

5. हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया है कि **कॉमन काज़** (उपर्युक्त)

---

[1] (2002) 1 एस. सी. सी. 88.

वाले मामले में याची के इस तर्क[1] का उल्लेख किया गया था कि अधिनियम अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है तथापि, इस मुद्दे के संबंध में न तो कोई विचार-विमर्श किया गया था और न ही इस प्रश्न के संबंध में कोई बाध्यकारी विनिश्चय किया गया था ।[2] इसलिए, यह दलील दी जाती है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालकर गलती की है कि आक्षेपित उपबंधों को दी गई चुनौती अननुज्ञेय है । हम प्रस्तुत मामले में अपनी परीक्षा को **कॉमन काज़** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के पश्चात् लाए गए विभिन्न संशोधनों की विधायी सक्षमता से भिन्न आधारों पर उनकी सांविधानिकता के प्रश्न तक सीमित करते हैं ।

6. इसका उत्तर देने के लिए हम विभिन्न सांविधानिक पदों का सृजन करने वाले संविधान के विभिन्न उपबंधों का विश्लेषण करना प्रारंभ करते हैं क्योंकि इन उपबंधों में से कुछ उपबंधों में कतिपय सांविधानिक पदों की बाबत पेंशन का संदाय किए जाने की संभाव्यता अनुध्यात है जबकि संविधान द्वारा सृजित विभिन्न अन्य पदों के संबंध में कोई अभिव्यक्त निर्देश नहीं किया गया है ।

7. अनुच्छेद 59(3)[3] में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि राष्ट्रपति "ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का, जो संसद् विधि द्वारा अवधारित करे," हकदार होगा जबकि अनुच्छेद 158(3) में राज्यपाल के लिए यही विनिर्दिष्ट किया गया है । इनमें से किसी भी अनुच्छेद में पेंशन का संदाय करने के बारे में कोई उल्लेख नहीं है । तथापि, राष्ट्रपति

---

[1] "5. 1993 की रिट याचिका (सिविल) सं. 246 में याची द्वारा, जो कि स्वयं उपस्थित हुआ था, अनुच्छेद 14 के उपबंधों के प्रति निर्देश किया गया था और यह दलील दी गई थी कि संसद् सदस्यों को पेंशन देकर उनके पक्ष में विभेद किया गया है जबकि न्यायाधीशों की तरह वे महाभियोग की प्रक्रिया के अध्यधीन नहीं आते हैं ।"

[2] "7. हमारे समक्ष जो प्रश्न है, वह भी सक्षमता के संबंध में है, अर्थात्, उक्त धारा 8-क को अधिनियमित करने संबंधी संसद् की सक्षमता । हमें सूची 1 की प्रविष्टि 73 की परीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि हमें इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि संसद् को ऐसी सक्षमता सूची 1 की अवशिष्ट प्रविष्टि 97 द्वारा प्रदत्त की गई है और अनुच्छेद 106 या अन्यत्र ऐसा कोई उपबंध नहीं है जिसमें संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करने से वर्जित किया गया हो ।"

[3] **59(3). राष्ट्रपति के पद के लिए शर्तें** – राष्ट्रपति, बिना किराया दिए, अपने शासकीय निवासों के उपयोग का हकदार होगा और ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का भी, जो संसद्, विधि द्वारा अवधारित करे और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है तब तक ऐसी उपलब्धियों, भत्तों और विशेषाधिकारों का, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, हकदार होगा ।

उपलब्धि और पेंशन अधिनियम, 1951 की धारा 2 में सेवानिवृत्त होने वाले राष्ट्रपति को पेंशन का संदाय करने और अन्य सुविधाओं के लिए उपबंध किए गए हैं ।[1]

8. अनुच्छेद 75(6)[2] और अनुच्छेद 164(5) क्रमशः मंत्रियों के वेतन और भत्तों के संबंध में हैं, जो संसद् और राज्य विधान-मंडल विधि द्वारा अवधारित करे ।

9. अनुच्छेद 97[3] और अनुच्छेद 186[4] में संसद् और राज्य विधान-मंडलों

---

[1] **धारा 2. (1) सेवानिवृत्त होने वाले राष्ट्रपतियों को पेंशन** – प्रत्येक व्यक्ति को, जो अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने या अपना पदत्याग कर देने के कारण राष्ट्रपति के रूप में पद पर नहीं रह जाता है, उसके शेष जीवनकाल में एक लाख बीस हजार रुपए प्रतिवर्ष पेंशन दी जाएगी ।

(2) ऐसे किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, जो इस निमित्त बनाए जाएं, प्रत्येक ऐसा व्यक्ति अपने शेष जीवनकाल में –

(क) किराए के संदाय के बिना सुसज्जित निवास का (जिसके अंतर्गत उसका रखरखाव भी है), एक टेलीफोन और एक मोटरकार का मुफ्त उपयोग करने का या ऐसे कार भत्ते का, जो नियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए ;

(ख) सचिवीय कर्मचारिवृन्द का, जिसमें एक निजी सचिव, एक निजी सहायक और एक चपरासी होगा तथा कार्यालयों व्ययों का, जिस पर कुल व्यय बारह हजार रुपए प्रतिवर्ष से अधिक नहीं होगा ;

(ग) मुफ्त चिकित्सीय परिचर्या और उपचार का ;

(घ) वायुयान, रेल या स्टीमर द्वारा उच्चतम दर्जे में, एक व्यक्ति के साथ भारत में कहीं भी यात्रा करने का,

हकदार होगा ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए "निवास" का वही अर्थ होगा, जो मंत्रियों के संबलमों और भत्तों से संबंधित अधिनियम, 1952 में है ।

[2] **अनुच्छेद 75. मंत्रियों के बारे में अन्य उपबंध** – (6) मंत्रियों के वेतन और भत्ते ऐसे होंगे जो संसद्, विधि द्वारा समय-समय पर अवधारित करे और जब तक संसद् इस प्रकार अवधारित नहीं करती है तब तक ऐसे होंगे जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं ।

[3] **अनुच्छेद 97. सभापति और उपसभापति तथा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते** – राज्य सभा के सभापति और उपसभापति को तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को, ऐसे वेतन और भत्तों का जो संसद्, विधि द्वारा, नियत करे और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है तब तक ऐसे वेतन और भत्तों का, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, संदाय किया जाएगा ।

[4] **अनुच्छेद 186. अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा सभापति और उपसभापति के वेतन और भत्ते** –

के सभापति और उपसभापति तथा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को "वेतन और भत्तों" का संदाय करने के लिए उपबंध किए गए हैं । उपराष्ट्रपति पेंशन अधिनियम, 1997 में पेंशन का संदाय करने और सेवानिवृत्ति के पश्चात् सुविधाओं की बाबत वही उपबंध हैं जो राष्ट्रपति के लिए उपबंधित हैं ।[1]

10. संविधान के अनुच्छेद 106 में यह अनुबंधित है कि संसद् सदस्य वही "वेतन और भत्तें" प्राप्त करने के हकदार होंगे जो संसद् द्वारा विधान के माध्यम से अवधारित किए जाएं ।[2] पेंशन का संदाय किए जाने के बारे में कोई अभिव्यक्त निर्देश नहीं है ।

विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को तथा विधान परिषद् के सभापति और उपसभापति को, ऐसे वेतन और भत्तों का जो राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, नियत करे और जब तक इस निमित्त इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है तब तक ऐसे वेतन और भत्तों का जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, संदाय किया जाएगा ।

[1] **धारा 2. सेवानिवृत्त होने वाले उपराष्ट्रपतियों को पेंशन** – (1) प्रत्येक उस व्यक्ति को, जो अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने या अपना पद त्याग कर देने के कारण उपराष्ट्रपति के रूप में पद पर नहीं रह जाता है, उसके शेष जीवनकाल में उपराष्ट्रपति के वेतन के पचास प्रतिशत की दर से प्रतिमास पेंशन दी जाएगी :

परन्तु ऐसा व्यक्ति उस अवधि के दौरान, जब वह प्रधानमंत्री का पद, किसी मंत्री का पद या कोई अन्य पद धारण करता है या संसद् सदस्य हो जाता है और ऐसा वेतन और भत्ते प्राप्त करता है, जो भारत की संचित निधि या किसी राज्य की संचित निधि में से चुकाए जाते हैं, कोई पेंशन प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा ।

(1क) किसी ऐसे व्यक्ति की, जिसकी, –

(क) उपराष्ट्रपति का पद धारण करने के दौरान ; या

(ख) उपराष्ट्रपति के रूप में अपने पद की अवधि समाप्त हो जाने या अपने पद का त्याग कर देने के कारण पद पर न रहने के पश्चात्,

मृत्यु हो जाती है, पत्नी या पति को, उसके शेष जीवनकाल में उस पेंशन के, जो निवृत्त होने वाले उपराष्ट्रपति को अनुज्ञेय है, पचास प्रतिशत की दर से कुटुंब पेंशन संदत्त की जाएगी ।

[2] **अनुच्छेद 106. सदस्यों के वेतन और भत्ते** – संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य ऐसे वेतन और भत्ते, जिन्हें संसद्, समय-समय पर, विधि द्वारा, अवधारित करे और जब तक इस संबंध में इस प्रकार उपबंध नहीं किया जाता है तब तक ऐसे भत्ते, ऐसी दरों से और ऐसी शर्तों पर, जो भारत डोमिनियन की संविधान सभा के सदस्यों को इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले लागू थीं, प्राप्त करने के हकदार होंगे होगें ।

11. दूसरी ओर, अनुच्छेद 125(2)[1] और अनुच्छेद 221(2)[2] के परन्तुकों में क्रमशः उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों को पेंशन का संदाय किए जाने के प्रति अभिव्यक्त निर्देश किया गया है ।

12. अनुच्छेद 148(3)[3] में यह उपबंध किया गया है कि नियंत्रक-लेखापरीक्षक का वेतन और सेवा की अन्य शर्तें ऐसी होंगी जो संसद्, विधि द्वारा, अवधारित करे । उसके परन्तुक में पेंशन का संदाय किए जाने के प्रति निर्देश है । नियंत्रक-महालेखापरीक्षक (कर्तव्य, शक्तियां और सेवा की शर्तें) अधिनियम, 1971 में उसके द्वारा पद छोड़ने पर पेंशन का संदाय

---

[1] **अनुच्छेद 125. न्यायाधीशों के वेतन आदि** – (2) प्रत्येक न्यायाधीश ऐसे विशेषाधिकारों और भत्तों का तथा अनुपस्थिति छुट्टी और पेंशन के संबंध में ऐसे अधिकारों का, जो संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन समय-समय पर अवधारित किए जाएं और जब तक इस प्रकार अवधारित नहीं किए जाते हैं तब तक ऐसे विशेषाधिकारों, भत्तों और अधिकारों का, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, हकदार होगा :

परन्तु किसी न्यायाधीश के विशेषाधिकारों और भत्तों में तथा अनुपस्थिति छुट्टी या पेंशन के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

[2] **अनुच्छेद 221. न्यायाधीशों के वेतन आदि** – (2) प्रत्येक न्यायाधीश ऐसे भत्तों का तथा अनुपस्थिति छुट्टी और पेंशन के संबंध में ऐसे अधिकारों का, जो संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन समय-समय पर अवधारित किए जाएं, और जब तक इस प्रकार अवधारित नहीं किए जाते हैं तब तक ऐसे भत्तों और अधिकारों का जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं, हकदार होगा :

परन्तु किसी न्यायाधीश के भत्तों में और अनुपस्थिति छुट्टी या पेंशन के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

[3] **अनुच्छेद 148. भारत का नियंत्रक-महालेखापरीक्षक** – **(3)** नियंत्रक-महालेखापरीक्षक की वेतन और सेवा की अन्य शर्तें ऐसी होंगी जो संसद्, विधि द्वारा, अवधारित करे और जब तक वे इस प्रकार अवधारित नहीं की जाती हैं तब तक ऐसी होंगी जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं :

परन्तु नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के वेतन में और अनुपस्थिति छुट्टी, पेंशन या निवृत्ति की आयु के संबंध में उसके अधिकारों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा ।

करने के लिए विभिन्न उपबंध अंतर्विष्ट हैं ।[1]

13. अनुच्छेद 322[2] में यह घोषित किया गया है कि लोक सेवा आयोगों के व्यय भारत की संचित निधि पर भारित होंगे और ऐसे व्ययों के अंतर्गत आयोग के सदस्यों या कर्मचारिवृन्द को या उनके संबंध में संदेय "वेतन, भत्ते और पेंशन" हैं ।

14. अनुच्छेद 324(5)[3] में यह अनुबंधित है कि "निर्वाचन आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे" । यद्यपि निर्वाचन आयुक्तों को पेंशन का संदाय किए जाने के संबंध में संविधान में कोई उल्लेख नहीं है तथापि, निर्वाचन आयोग (निर्वाचन

---

[1] **धारा 6. पेंशन** – कोई व्यक्ति, जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद त्यागपत्र द्वारा छोड़ता है इस प्रकार छोड़ने पर नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में अपनी सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष के लिए दो हजार रुपए प्रतिवर्ष की दर से पेंशन का पात्र होगा :

परन्तु उपधारा (1) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट व्यक्ति की दशा में इस उपधारा के अधीन अनुज्ञेय पेंशन की कुल रकम उसकी पेंशन के संराशीकृत प्रभाग, यदि कोई हो, के सहित पेंशन की रकम तथा उस सेवा को जिसमें वह नियंत्रक-महालेखापरीक्षक के रूप में पद ग्रहण करने के ठीक पूर्व था, तत्समय लागू नियमों के अधीन उसे अनुज्ञेय निवृत्ति उपदान, यदि कोई हो के समतुल्य पेंशन को सम्मिलित करते हुए प्रतिवर्ष पंद्रह हजार रुपए या यथास्थिति, उपधारा (2) या उपधारा (3) के परन्तुक में निर्दिष्ट उच्चतर पेंशन से अधिक नहीं होगी ।

[2] **अनुच्छेद 322. लोक सेवा आयोगों के व्यय** – संघ या राज्य लोक सेवा आयोग के व्यय, जिनके अंतर्गत आयोग के सदस्यों या कर्मचारिवृन्द को या उनके संबंध में संदेय कोई वेतन, भत्ते और पेंशन है, यथास्थिति, भारत की संचित निधि या राज्य की संचित निधि पर भारित होंगे ।

[3] **अनुच्छेद 324. निर्वाचनों के अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना** – (5) संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, निर्वाचन आयुक्तों और प्रादेशिक आयुक्तों की सेवा की शर्तें और पदावधि ऐसी होंगी जो राष्ट्रपति नियम द्वारा अवधारित करे :

परन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसके पद से उसी रीति से और उन्हीं आधारों पर हटाया जाएगा, जिस रीति से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है अन्यथा नहीं और मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा की शर्तों में उसकी नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जाएगा :

परन्तु यह और कि किसी अन्य निर्वाचन आयुक्त या प्रादेशिक आयुक्त को मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सिफारिश पर ही पद से हटाया जाएगा, अन्यथा नहीं ।

आयुक्त सेवा शर्त और कारबार का संव्यवहार) अधिनियम, 1991 की धारा 6 में निर्वाचन आयुक्तों को पेंशन का संदाय करने के लिए उपबंध किया गया है, जो कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को संदेय पेंशन के बराबर है ।[1]

15. सांविधानिक स्कीम से यह देखा जा सकता है कि किसी भी सांविधानिक पद की बाबत पेंशन का संदाय करने के लिए कोई अभिव्यक्त आज्ञा विद्यमान नहीं है । तथापि, उच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों तथा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से संबंधित अनुच्छेदों में यह अनुबद्ध किया गया है कि उनके कार्यकाल के दौरान पेंशन में परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा । इससे यह विवक्षित होता है कि यदि उक्त पदों में से किसी पद के किसी पदधारी की सेवा शर्तों से संबंधित विधि में उनकी नियुक्ति के समय पेंशन का संदाय करने के लिए उपबंध किया गया है तो विधि के ऐसे उपबंध में पदधारी के लिए अलाभकारी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है ।

16. जिन उपबंधों को चुनौती दी गई है, वे दो प्रवर्गों के अधीन आते हैं (i) वे उपबंध, जो संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को मुफ्त यात्रा आदि का अधिकार प्रदत्त करते हैं ; और (ii) वे उपबंध, जो भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को पेंशन का और मुफ्त यात्रा करने के अधिकार का फायदा प्रदान करते हैं ।

आक्षेपाधीन उपबंध

---

[1] **6. निर्वाचन आयुक्तों को संदेय पेंशन** –

(2) जहां मुख्य निर्वाचन आयुक्त या कोई निर्वाचन आयुक्त, चाहे उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट किसी रीति में या त्यागपत्र द्वारा पद छोड़ता है वहां वह, इस प्रकार पद छोड़ने पर, –

(क) ऐसी पेंशन का हकदार होगा जो समय-समय पर यथासंशोधित उच्चतम न्यायालय न्यायाधीश (सेवा शर्तें) अधिनियम, 1958 की अनुसूची के भाग 3 के उपबंधों के अनुसार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को संदेय पेंशन के बराबर है ; और

(ख) ऐसी पेंशन (जिसके अंतर्गत पेंशन का संराशीकरण भी है), कुटुम्ब पेंशन और उपदान का हकदार होगा जो समय-समय पर यथासंशोधित उक्त अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को अनुज्ञेय हैं.... ।

17. अधिनियम की धारा 8क[1] में (i) भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन अनुदत्त की गई है, और (ii) उनकी मृत्यु होने पर उनके अपने-अपने पति/पत्नी को पेंशन दी गई है । धारा 8कग[2] में संसद् सदस्य की मृत्यु हो जाने पर ऐसे संसद् सदस्य के पति/पत्नी को कुटुंब पेंशन देने का उपबंध किया गया है । यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि मूल रूप से यथा-अधिनियमित धारा 8क में यह उपबंध किया गया था कि किसी संसद् सदस्य ने पेंशन का पात्र होने के लिए संसद् में चार वर्ष का कार्यकाल अवश्य पूरा किया हो । किन्तु 2004 के संशोधन अधिनियम सं. 9 द्वारा इसे भूतलक्षी प्रभाव से समाप्त कर दिया गया था ।

अधिनियम की धारा 6ख(1)[3] सभी संसद् सदस्यों को भारत में किसी स्थान से भारत में किसी अन्य स्थान तक पत्नी/साथी के साथ असीमित यात्रा करने का अधिकार प्रदत्त करती है । धारा 6ख(2)[4] में जब संसद् सत्र में हो तो संसद् सदस्य के प्रायिक निवास स्थान से दिल्ली तक आने या वापस जाने के लिए अधिकतम 8 हवाई यात्राओं का उपबंध है और उसमें संसद् सदस्य की पत्नी के लिए वर्ष के दौरान किसी भी समय वातानुकूलित प्रथम दर्जे में असीमित रेल यात्रा करने का उपबंध है । धारा 8कक[5] में भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को यात्रा सुविधाओं का अधिकार प्रदत्त किया गया है । इसमें किसी भूतपूर्व संसद्

---

[1] **धारा 8क. (1)** 18 मई, 2009 से, ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को बीस हजार रुपए प्रतिमास पेंशन संदत्त की जाएगी जिसने अंतःकालीन संसद् या संसद् के किसी सदन के सदस्य के रूप में किसी भी अवधि तक सेवा की है :

परन्तु जहां किसी व्यक्ति ने अंतःकालीन संसद् या संसद् के किसी सदन के सदस्य के रूप में पांच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए सेवा की है, वहां उसे पांच वर्ष से अधिक सेवा किए गए प्रत्येक वर्ष के लिए पन्द्रह सौ रुपए प्रतिमास की अतिरिक्त पेंशन दी जाएगी ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए "अंतःकालीन संसद्" के अंतर्गत वह निकाय भी है, जिसने संविधान के प्रारंभ के ठीक पहले भारत डोमिनियन की संविधान सभा के रूप में काम किया था ।

[2] 2006 के अधिनियम सं. 40 द्वारा अंतःस्थापित – 15 सितम्बर, 2006 से प्रभावी ।

[3] 1999 के अधिनियम सं. 16 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[4] 2010 के अधिनियम सं. 37 द्वारा अंतःस्थापित – 1 अक्तूबर, 2010 से प्रभावी ।

[5] 2004 के अधिनियम सं. 9 द्वारा प्रतिस्थापित – 15 सितम्बर, 2006 से प्रभावी ।

सदस्य के साथ जाने वाले एक व्यक्ति के लिए समस्त रेल यात्राओं में मुफ्त वातानुकूलित दो-टियर पास का और भारत में किसी स्थान से भारत में किसी अन्य स्थान तक पत्नी/साथी के साथ रेल द्वारा असीमित मुफ्त यात्रा का उपबंध किया गया है ।

18. इन उपबंधों को निम्नलिखित आधारों पर आक्षेपित किया गया है :–

(i) विभिन्न सांविधानिक पदधारियों को संदेय वेतन और अन्य भत्तों से संबंधित संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों में प्रदर्शित भाषा की परस्पर तुलना करने से आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकलना चाहिए कि संविधान में संसद् सदस्यों और भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन और अन्य फायदों का संदाय करने की अनुज्ञा नहीं दी गई है ;

(ii) संविधान निर्माताओं ने संसद् सदस्यों को पेंशन संबंधी फायदे देने से विनिर्दिष्ट रूप से इनकार किया था और इसलिए भूतपूर्व संसद् सदस्यों और उनसे संबद्ध व्यक्तियों को सेवानिवृत्ति के पश्चात् कोई फायदे देना उन सदस्यों को, जिन्हें पेंशन संबंधी इस सांविधानिक अधिकार से वंचित किया गया था उन सांविधानिक पदधारियों के समरूप मानने की कोटि में आएगा जिनकी पेंशन को अभिव्यक्ततः संरक्षित किया गया था और उन्हें उनके बराबर मानने के परिणामस्वरूप समता के अधिकार का अतिक्रमण होगा ;

(iii) आक्षेपित उपबंध तर्कहीन[1] और मनमाने हैं क्योंकि सभी संसद् सदस्यों को उनके अपने-अपने कार्यकाल और आर्थिक दशाओं को ध्यान में रखे बिना पेंशन देना लोक हित के विरुद्ध होगा[2]; और

(iv) करदाताओं और करोड़ों गरीब और जरूरतमंद लोगों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित उपबंध, संसद् के विधायी प्राधिकार का अनुचित और अन्यायोचित प्रयोग है ।[3]

19. अब हम मुख्य निवेदन की परीक्षा करेंगे – क्या अनुच्छेद 106 में इस संबंध में चुप्पी भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करने के बारे में एक प्रतिषेध के रूप में प्रवर्तित होती है ?

---

[1] इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में याची के लिखित निवेदन ।

[2] यथोक्त

[3] रिट याचिका का आधार घ.

20. अपीलार्थियों की दलीलें इस गलत उपधारणा पर आधारित हैं कि संविधान के कतिपय उपबंधों में ऐसे व्यक्तियों को, जो सांविधानिक पद धारण करते हैं, जैसे इस न्यायालय के न्यायाधीश, पेंशन का संदाय किया जाना आदिष्ट है । हमने संविधान के सुसंगत उपबंधों की भाषा की पहले ही परीक्षा कर ली है । हमारी यह राय है कि उन उपबंधों के पाठ का सही और उचित अर्थान्वयन करने पर उनमें पेंशन का संदाय किया जाना आदिष्ट नहीं है । उनमें केवल उस पेंशन को, जो यदि उन पदों में से किसी भी पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति की तारीख को लागू सुसंगत विधि के अधीन संदेय है, यह घोषणा करके संरक्षित किया गया है कि ऐसी शर्त में किसी व्यक्ति की नियुक्ति के पश्चात् उसके लिए अलाभकर परिवर्तन नहीं किया जा सकेगा ।

तथापि, उन व्यक्तियों को, जो ऐसे पद धारण करते हैं, पेंशन संदाय करने की सांविधानिक बाध्यता उन पदों से सुसंगत संविधान की समग्र स्कीम को ध्यान में रखते हुए, विवक्षा द्वारा उद्भूत हो सकती है । उन पदधारियों को इस संबंध में आश्वस्त करके उनकी स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि न तो विधायिका और न ही कार्यपालिका इस तथ्य के बावजूद कि उन पदों में से प्रत्येक पद के पदधारियों द्वारा शासकीय उत्तरदायित्वों का निर्वहन करते हुए लिया गया विनिश्चय या तो विधायिका या कार्यपालिका को स्वीकार्य है अथवा नहीं उन्हें उन वित्तीय संसाधनों से वंचित करने में समर्थ होगी जो उन्हें धनहीनता से दूर रखने के लिए आवश्यक हैं । हमें यहां यह बात भी जोड़ देनी चाहिए कि हमारे बारे में यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हम इस संबंध में विधि संबंधी कोई अंतिम घोषणा कर रहे हैं ।

इस विश्लेषण का प्रयोजन केवल यह प्रदर्शित करने तक सीमित है कि अपीलार्थियों ने यह उपधारणा करके गलत आधार पर कार्यवाही आरंभ की है कि संविधान के पाठ में ऐसे अभिव्यक्त उपबंध हैं जो कतिपय सांविधानिक पदों के संबंध में पेंशन संदत्त किया जाना आदिष्ट करते हैं ।

21. हमारी राय में, इस तथ्य के परिणामस्वरूप कि संविधान में कतिपय सांविधानिक कृत्यकारियों के लिए न कि अन्य कृत्यकारियों के संबंध में पेंशन का संदाय करने के बारे में अभिव्यक्त उल्लेख किया गया है, यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि संविधान के इस संबंध में मौन रहने के कारण, उसमें उन सांविधानिक कृत्यकारियों को पेंशन का संदाय किए जाने से प्रतिषिद्ध किया गया है । प्रत्येक सांविधानिक पदधारी या तो

संविधान द्वारा या उसकी शक्तियों और कर्तव्यों से सुसंगत विधियों द्वारा उसे समनुदेशित शक्तियों और कर्तव्यों के अनुसार कृत्य करता है । संविधान के निर्माताओं का यह विश्वास था कि कतिपय पदधारियों के लिए प्रत्याशित व्यापक कोटि की स्वतंत्रता को ध्यान में रखते हुए उनके लिए उच्चतर कोटि के संरक्षण की अपेक्षा है । संविधान-निर्माता, सत्ताधारियों द्वारा ऐसे पदधारियों को अधीन बनाए जाने के इतिहास और प्रयासों से भिज्ञ थे । अतः, उनके कार्यकाल और उनके पदों से सुसंगत अन्य सेवा शर्तों के विभिन्न पहलुओं की बाबत सुरक्षोपायों के उपबंध किए गए थे । तथापि, जहां तक संसद् सदस्यों का संबंध है, ऐसे उच्चतर कोटि के सांविधानिक संरक्षण की वास्तव में आवश्यकता नहीं है क्योंकि विधियां बनाने का प्राधिकार केवल उन्हें ही प्राप्त है ।

22. वे निबंधन और शर्तें, जिनके अध्यधीन किसी व्यक्ति को सांविधानिक पद पर या तो नियुक्त किया जाता है या धारण करने के लिए निर्वाचित किया जाता है, नीति के चयन का विषय है । उन शर्तों को अवधारित करने के लिए सांविधानिक दृष्टि से पदाभिहित प्राधिकारी, समुचित विधायिका ही होगी । सांविधानिक विधि में यह भी सुस्थापित है कि नीति संबंधी चयन करने का विधायिका का प्राधिकार, संविधान द्वारा, या तो अभिव्यक्त उपबंध द्वारा या संविधान की स्कीम से उद्भूत होने वाली आवश्यक विवक्षा द्वारा अधिरोपित परिसीमाओं द्वारा ही सीमित है । यह एक सुस्थापित सिद्धांत है कि संविधान द्वारा जो कुछ प्रतिषिद्ध नहीं है वह विधायिका के लिए अनुज्ञेय है, जिसकी शुरूआत **मकुलोच** बनाम **मैरीलैंड**[1] वाले मामले से हुई थी और जिसका अनुसरण अनेक निर्णयों में किया गया है । (इस संबंध में **केरल राज्य** बनाम **एन. एम. थॉमस**[2] तथा **कर्नाटक राज्य** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले देखिए ।)

---

[1] 4 व्हीट. 316, 425-437, 4 लाइयर्स एडीशन 579(1819) :
"किन्तु हम यह समझते हैं कि संविधान के ठोस ढांचे में राष्ट्रीय विधायिका को इस बात के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए कि ऐसे माध्यमों की बाबत, विवेकाधिकार का निष्पादन, जिसके द्वारा वह शक्तियां प्रदत्त करती है, इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे वह निकाय उसे समनुदेशित उच्च कर्तव्यों का पालन ऐसी रीति में करने में समर्थ हो सके जो कि लोगों के लिए अत्यंत लाभप्रद है । लक्ष्य विधिसम्मत होना चाहिए, वह संविधान की परिधि के भीतर होना चाहिए और ऐसे सभी साधन, जो समुचित हैं, जो स्पष्टतः उस लक्ष्य के अनुकूल हैं, जो प्रतिषिद्ध नहीं हैं किन्तु संविधान की भाषा और भाव के अनुरूप हैं, सांविधानिक हों ।

[2] (1976) 2 एस. सी. सी. 310.

[3] (1977) 4 एस. सी. सी. 608.

23. इसके अतिरिक्त, यदि हम इस दलील को स्वीकार करते हैं कि वे सांविधानिक कृत्यकारी, जो संविधान के पाठ द्वारा पेंशन के हकदार हैं, उन सांविधानिक कृत्यकारियों से, जो अनन्य रूप से पेंशन का संदाय किए जाने के हकदार हैं, एक सुभिन्न वर्ग गठित करते हैं तो इसका परिणाम यह होगा कि नियंत्रक-महालेखापरीक्षक, संसद् या राज्य विधान-मंडल के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा केन्द्र और राज्यों के मंत्री पेंशन से निर्हकित हो जाएंगे ।

24. अपीलार्थियों द्वारा दी गई एक अन्य दलील यह है कि राज्य के किसी कर्मचारी को उसकी अधिवार्षिकी के पश्चात् पेंशन संदेय होती है । चूंकि संसद् सदस्य राज्य के कर्मचारी नहीं हैं इसलिए वे पेंशन के हकदार नहीं हैं और न ही संसद् भूतपूर्व संसद् सदस्यों को पेंशन का संदाय करने हेतु उपबंध करने के लिए सक्षम है । हमारी राय में, उपर्युक्त दलील में भ्रांति है, जहां तक उसमें यह सुनिश्चित किया गया है कि पेंशन केवल राज्य के भूतपूर्व कर्मचारियों को न कि किसी अन्य व्यक्ति को संदेय है । ऐसी दलील इस तथ्य से कि राज्य के भूतपूर्व कर्मचारियों को किए जाने वाले कतिपय संदायों को पेंशन कहा जाता है और अपीलार्थियों के इस भ्रम से प्रकट होती है कि "पेंशन" अभिव्यक्ति का केवल एक अर्थ हो सकता है । राज्य द्वारा किए जाने वाले विभिन्न अन्य प्रवर्गों के संदाय हैं, जिन्हें पेंशन कहा जाता है, जैसे वृद्धावस्था पेंशन, विधवा पेंशन और दिव्यांगता पेंशन आदि ।

25. अपीलार्थियों ने यह तर्क देने के लिए कि संसद् सदस्यों का क्रियाकलाप भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा अनुध्यात "उपजीविका" नहीं है और इसलिए भूतपूर्व संसद् सदस्यों या उनसे संबद्ध व्यक्तियों को कोई पेंशन संदत्त नहीं की जा सकती है, **अलगापुरम आर. मोहनराज और अन्य** बनाम **तमिलनाडु विधान सभा**[1] वाले विनिश्चय का अवलंब लिया ।

26. हमारी राय में, इस तर्क को मात्र इस कारण अस्वीकार किया जाना चाहिए कि यह पुनः इस विश्वास पर आधारित है कि "पेंशन" अभिव्यक्ति का विधि की दृष्टि से केवल एक अर्थ है । इस न्यायालय के समक्ष **अलगापुरम आर. मोहनराज** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रश्न यह था कि विधान सभा का कोई सदस्य भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अर्थान्तर्गत कोई उपजाविका चला रहा है अथवा नहीं । इस तथ्य से कि

[1] (2016) 6 एस. सी. सी. 82.

इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह अनुच्छेद 19(1)(छ) के अधीन कोई उपजाविका नहीं है, अनिवार्य रूप से यह अभिप्रेत होना आवश्यक नहीं है कि संसद्, यदि वह विभिन्न सुसंगत कारकों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना उचित समझती है तो संसद् सदस्यों को ऐसे भत्तों का संदाय करने से प्रतिषिद्ध है ।

27. हमारी राय में, सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 73[1] में आने वाली संसद् सदस्यों के "भत्ते" अभिव्यक्ति इतनी व्यापक है कि उसके अंतर्गत संसद् सदस्यों या भूतपूर्व संसद् सदस्यों को आक्षेपित उपबंधों के अंतर्गत "पेंशन" का संदाय करना और अन्य फायदे देना भी आता है । अन्यथा भी, सूची 1 की प्रविष्टि 97[2] के अधीन संसद् का प्राधिकार इतना व्यापक है कि उसके अंतर्गत आक्षेपित विधान भी आता है, जैसा कि **कॉमन काज़** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है ।

28. इस संदर्भ में, हम अपीलार्थियों की समझ संबंधी भ्रांति को स्पष्ट करने के लिए संविधान सभा के दो प्रख्यात सदस्यों, अर्थात् डा. बी. आर. अम्बेडकर और श्री के. टी. शाह द्वारा की गई टिप्पणियों को दोहरा सकते हैं ।

29. डा. अम्बेडकर ने, भारत के राष्ट्रपति को पेंशन संबंधी फायदे प्रदान करने की आवश्यकता पर बहस करते हुए इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश डाला : क्या संविधान सभा संसद् सदस्यों को निवृत्ति-पश्चात् के फायदों से अपवर्जित करना चाहती है :–

> "अतः मैं, उस रूप में, जिसमें यह संशोधन पेश किया गया है, यह नहीं समझता कि यह किसी व्यक्ति द्वारा स्वीकार किए जाने हेतु कोई व्यावहारिक प्रतिपादना है । किन्तु उस सामान्य दृष्टिकोण के बारे में, जो उसने अभिव्यक्त किया है, कोई संदेह नहीं है कि संसद् में कतिपय अवधि की सेवा के पश्चात्, सदस्य, जिसके अंतर्गत

---

[1] भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 73

> "संसद् सदस्यों के, राज्य सभा के सभापति और उपसभापति के तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते ।"

[2] भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची 1 की प्रविष्टि 97

> "कोई अन्य विषय जो सूची 2 या सूची 3 में प्रगणित नहीं है और जिसके अंतर्गत कोई ऐसा कर है जो उन सूचियों में से किसी सूची में उल्लिखित नहीं है ।"

राष्ट्रपति भी है, किसी प्रकार की पेंशन के हकदार होने चाहिएं और मैं समझता हूं कि यह एक प्रशंसनीय विचार है जिसे ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रभावी किया गया है और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारी भावी संसद् इस तथ्य को ध्यान में रखेगी ।"[1] (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

30. इस संबंध में बहस करते हुए कि क्या राज्यपालों द्वारा पद छोड़ने के पश्चात् उन्हें पेंशन का संदाय करने के लिए कोई अभिव्यक्त उपबंध करना आवश्यक था, श्री शाह ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :-

"ऐसे व्यक्तियों के लिए, जो इतने ऊंचे स्तर तक पहुंचे हैं, ऐसी प्रतिभूति का उपबंध करने का उद्देश्य वहीं है जैसा कि आजकल सभ्य राष्ट्र में प्रत्येक कर्मकार के लिए वृद्धावस्था पेंशन, कोई पेंशन या अधिवार्षिकी भत्ता सुनिश्चित करना है, जिसकी गणना इस प्रकार की जाएगी कि वह उसका उस जीवन-स्तर में भरणपोषण करने के लिए पर्याप्त हो, जिसका वह कार्य करते समय आदी था । पेंशन एक ऐसा आस्थगित वेतन है जो कर्मकार को तब संदत्त नहीं किया जाता है जब वह कार्यरत होता है; और यहां भी यही सादृश्यता लागू होगी । यह भी एक ऐसी किस्म का कार्य है – संभवतः अपनी किस्म का उच्चतम कार्य है – जिसे राष्ट्र द्वारा ऐसे पक्षकारों के शेष जीवनकाल के लिए, जिन्होंने देश की इतनी उत्कृष्ट रूप से सेवा की है, कोई उपबंध किए बिना, पूर्णतः अनदेखा नहीं किया चाहिए ।"[2] (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

31. हमारा यह मत है कि ये प्रश्न विधायी नीति का चयन/परिवर्तन करने संबंधी संसद् के विवेक की परिधि के अंतर्गत आते हैं कि आक्षेपित उपबंधों के अधीन सृजित विभिन्न फायदे कुछ संसद् सदस्यों की सम्पन्न वित्तीय स्थिति या करोड़ों लोगों की निर्धनता, आदि को ध्यान में रखते हुए तर्कसंगत हैं अथवा नहीं । ये न्याय्य मुद्दे नहीं हैं । इस संदर्भ में, हम इस न्यायालय द्वारा **डा. पी. नल्ला थम्पी थेरा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3]

---

[1] भारत की संविधान सभा वाद-विवाद खंड 7 – अनुच्छेद 48 के प्रारूप पर बहस, 27 दिसम्बर, 1948.

[2] भारत की संविधान सभा वाद-विवाद खंड 8 – अनुच्छेद 135क के प्रारूप पर बहस, 31 मई, 1949.

[3] [1984] 2 उम. नि. प. 199 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 189.

वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत के प्रति निर्देश कर सकते हैं :--

"यदि विधि के उपबंध संविधान का अतिक्रमण करते हैं तो उन्हें अभिखंडित करना होगा । तथापि, किसी विधि को इस आधार पर नकार नहीं सकते हैं कि हम उस नीति का अनुमोदन नहीं करते हैं जो उसमें अंतर्निहित है । क्या न्यायालय, उदाहरणार्थ, नियम 90 को इस आधार पर अभिखंडित कर सकता है कि भारतीय संदर्भ में एक लाख रुपए की सीमा काफी अधिक है ? हमारी अपनी प्राथमिकताएं और अनुभूतियां हो सकती हैं किन्तु उनका प्रयोग विधियों को अविधिमान्य बनाने के लिए नहीं किया जा सकता है ।"

32. इस अपील में एक अंतर्वर्ती आवेदन फाइल किया गया था जिसका निपटारा करना आवश्यक है । यह आवेदन प्रत्यर्थी सं. 5, भारत के निर्वाचन आयोग की ओर से फाइल किया गया था, जिसमें उसे पक्षकारों की सूची में से हटाए जाने की ईप्सा की गई है । यह कथन किया गया है कि इस अपील में न तो उनसे किसी अनुतोष की ईप्सा की गई है और न ही प्रत्यर्थी सं. 5 को कोई निदेश देने की प्रार्थना की गई है, क्योंकि यह एक पूर्णतः सांविधानिक चुनौती है ।

अंतर्वर्ती आवेदन मंजूर किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 5 को पक्षकारों की सूची में से हटाया जाता है ।

33. पूर्वगामी कारणों से, यह अपील खारिज की जाती है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

[2018] 3 उम. नि. प. 414

सुच्चा सिंह सोढी (मृत) विधिक प्रतिनिधियों की मार्फत

बनाम

बलदेव राज वालिया और एक अन्य

13 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 2, नियम 2(2) – द्वितीय वाद पर वर्जन – जब स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया प्रथम वाद और उस वाद को वापस लेने के पश्चात् करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए नए सिरे से फाइल किया गया पश्चात्वर्ती वाद भिन्न-भिन्न वाद-हेतुक पर आधारित हों और उनमें दावाकृत अनुतोष भी भिन्न-भिन्न हों तो आदेश 2, नियम 2 के अधीन वर्जन लागू नहीं होगा ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – आदेश 23, नियम 1(3) और आदेश 2, नियम 2 – वाद का वापस लिया जाना और नए सिरे से पश्चात्वर्ती वाद फाइल किया जाना – जब स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया प्रथम वाद, नए सिरे से समुचित कार्यवाहियां फाइल करने का कथन करते हुए वापस लिया जाता है तो वाद को वापस लेने के लिए दी गई अनुज्ञा से न्यायालय द्वारा नए सिरे से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करना भी प्रतिबिंबित होता है और आदेश 23, नियम 1(3) के अधीन अपेक्षाएं पूरी करके फाइल किए गए नए वाद के बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह आदेश 2, नियम 2 के अधीन वर्जित है ।

प्रस्तुत मामले में, मूल वादी ने, जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है और अब उसका प्रतिनिधित्व उसके विधिक प्रतिनिधियों (अपीलार्थी सं. 1 से 4) द्वारा किया जा रहा है, प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए वाद फाइल किया था । वादपत्र, अन्य बातों के साथ-साथ इन अभिकथनों पर आधारित था कि प्रत्यर्थी सं. 1 वादगत परिसर का स्वामी था और उसने वादी को उसका विक्रय करने का करार किया और वादी ने प्रत्यर्थी सं. 1 को कुल रकम में से अग्रिम के रूप में कुछ राशि का संदाय कर दिया । वादी को उक्त परिसर का कब्ज़ा दे दिया गया था । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 ने वादी को वादगत परिसर से बेदखल करने की धमकी दी और अपने गुर्गों की सहायता से उसे बेदखल

करने का असफल प्रयास किया । इस वाद-हेतुक के आधार पर वादी ने वादगत परिसर के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध वादगत परिसर पर उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से उसे अवरुद्ध करने के लिए स्थायी व्यादेश हेतु एक सिविल वाद फाइल किया । प्रत्यर्थी सं. 1 ने लिखित कथन फाइल करके यह अभिकथन किया कि उसने वादगत परिसर का कब्ज़ा, प्रस्तुत प्रत्यर्थी सं. 2 को पहले ही अंतरित कर दिया है और इसलिए वादी के पास उपलब्ध उपचार, यदि कोई है, यह होगा कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए सिविल वाद फाइल करे न कि स्थायी व्यादेश के लिए वाद चलाए । वादी ने न्यायालय में यह कथन किया कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध समुचित अनुतोष का दावा करने के लिए सक्षम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां फाइल करने की दृष्टि से सिविल वाद वापस लेना चाहता है । विचारण न्यायालय ने वादी को सिविल वाद वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया । इसके पश्चात् वादी ने प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए अपर जिला न्यायाधीश के न्यायालय में सिविल वाद फाइल किया । प्रत्यर्थी सं. 2, अर्थात्, अभिकथित पश्चात्वर्ती क्रेता ने वाद में पक्षकार (प्रतिवादी) बनने के लिए संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । वह आवेदन मंजूर कर लिया गया था और प्रत्यर्थी सं. 2 को प्रतिवादी सं. 2 के रूप में शामिल किया गया था । दोनों प्रत्यर्थियों (प्रतिवादी सं. 1 और 2) ने अपने-अपने लिखित कथन फाइल किए और तथ्य तथा विधि संबंधी विभिन्न आधारों पर वादी के दावे से इनकार किया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने भी वादपत्र खारिज किए जाने के लिए संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । यह अभिकथन किया गया कि प्रश्नगत वाद (करार का विनिर्दिष्ट पालन) संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा प्रभावित होता है क्योंकि विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा, जिसका दावा प्रस्तुत वाद में किया गया है, वादी द्वारा पूर्व में संस्थित उस वाद में, जो कि उसने स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया था, किया जा सकता था और किया जाना चाहिए था । यह दलील दी गई थी कि पूर्व में संस्थित वाद में करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा न करने से, जो कि यद्यपि वादी के पास पूर्ववर्ती वाद में जिस वाद-हेतुक का अभिवाक् किया गया है उसके आधार पर दावा किए जाने के लिए उपलब्ध था, संहिता के आदेश 2, नियम 2 में अंतर्विष्ट वर्जन बाद में संस्थित किए गए ऐसे सिविल वाद को लागू होगा जिसमें करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा किया जाता है और इसलिए ऐसे वाद का अब गुणागुण के आधार पर

विचारण नहीं किया जा सकता है । इस वाद के लंबित रहने के दौरान, वादी की मृत्यु हो गई और मुकदमेबाजी को चालू रखने के लिए उसके विधिक प्रतिनिधियों (जो कि इस मामले में अपीलार्थी हैं) को वादियों के रूप में अभिलेख पर लाया गया । तथापि, विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 के आवेदन को मंजूर कर लिया और परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित करते हुए अपीलार्थियों के वाद को खारिज कर दिया कि वह संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा वर्जित है । वादियों ने व्यथित महसूस करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा, विचारण न्यायालय के तर्काधार और निष्कर्ष से सहमत होते हुए अपील खारिज कर दी । वादियों ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रतिवादी द्वारा वादी के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2(2) का अवलंब लेने की अनिवार्यता यह है कि वह अनुतोष, जिसका दावा वादी ने द्वितीय वाद में किया है, वादी के पास प्रतिवादी के विरुद्ध पूर्ववर्ती वाद में किए गए वाद-हेतुक के अभिवाक् के आधार पर पूर्ववर्ती वाद में दावा किए जाने के लिए भी उपलब्ध था किन्तु वादी द्वारा उसका दावा नहीं किया गया था । (पैरा 27)

इस प्रश्न के संबंध में कि मूल वादी, पूर्व में संस्थित वाद में स्थायी व्यादेश के अपने दावे के अतिरिक्त प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा कर सकता था अथवा नहीं न्यायालय का उत्तर वादियों (अपीलार्थियों) के पक्ष में और प्रतिवादियों (प्रत्यर्थियों) के विरुद्ध है । दूसरे शब्दों में, वादी पूर्ववर्ती वाद में स्थायी व्यादेश के अनुतोष के साथ-साथ, प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा इन कारणों से नहीं कर सकता था । प्रथमतः, स्थायी व्यादेश के अनुतोष का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक और करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक अलग-अलग हैं और एक वाद-हेतुक के अंतर्गत दूसरा वाद-हेतुक नहीं आ सकता है । दूसरे शब्दों में, कोई वादी ऐसे वाद-हेतुक के आधार पर, जिसमें उसने स्थायी व्यादेश के अनुतोष का दावा किया है, प्रतिवादी के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा नहीं कर सकता है । द्वितीयतः, वादगत परिसर पर वादी के कब्ज़े में हस्तक्षेप करने पर प्रतिवादियों के विरुद्ध अस्थायी/स्थायी व्यादेश का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक तब प्रोद्भूत

हुआ जब प्रतिवादी सं. 1 ने वादी को वादगत परिसर से बेदखल करने की धमकी दी या अन्यथा वादगत परिसर के संबंध में वादी को क्षति कारित की । यह संहिता के आदेश 39, नियम 1(ग) द्वारा शासित होता है, जो कि व्यादेश अनुदत्त किए जाने के संबंध में है । ऐसा वाद फाइल करने की परिसीमा अवधि प्रतिवादी द्वारा वादी को बाधा कारित करने की तारीख से तीन वर्ष है । दूसरी ओर, करार के विनिर्दिष्ट पालन का दावा करने के लिए वाद फाइल करने संबंधी वाद-हेतुक उस तारीख से उद्भूत होता है जो कि करार के पालन के लिए नियत की गई है या जब ऐसी कोई तारीख नियत नहीं की जाती है तब वह तारीख जब वादी को इस बात की अवेक्षा होती है कि प्रतिवादी द्वारा पालन से इनकार किया गया है । ऐसा वाद फाइल करने की परिसीमा अवधि ऐसी तारीख से तीन वर्ष है । तृतीयतः, जब दोनों अनुतोष/दावे, अर्थात् (1) स्थायी व्यादेश और (2) करार का विनिर्दिष्ट पालन, समान नहीं हैं, जब वाद चलाने के लिए वाद-हेतुक भिन्न-भिन्न हैं, जब दोनों अनुतोषों/दावों के लिए अलग-अलग वाद-हेतुक गठित करने के लिए आवश्यक तथ्य संबंधी घटक भिन्न-भिन्न हैं और अंततः जब दोनों अनुतोष/दावे परिसीमा अधिनियम के पृथक्-पृथक् अनुच्छेदों द्वारा शासित होते हैं, तब दोनों अनुतोषों का एक-साथ एक ही वाद-हेतुक में दावा करना संभव नहीं है । (पैरा 30, 31, 32, 33, 34 और 35)

मूल वादी ने पूर्ववर्ती वाद में स्पष्ट रूप से यह कथन किया था कि वह वाद को इसलिए वापस लेना चाहता है क्योंकि वह वाद की विषयवस्तु के संबंध में सक्षम न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाहियां फाइल करना चाहता है । विचारण न्यायालय ने उसका कथन अभिलिखित किया और वाद को वापस लेने की अनुज्ञा प्रदान की । मूल वादी के कथन को न्यायालय द्वारा वाद को वापस लेने के लिए प्रदान की गई अनुज्ञा के साथ पढ़ने से संहिता के आदेश 23, नियम 1(3) की अपेक्षा पूरी हो जाती है । इससे वादी निश्चित रूप से नए सिरे से वाद, अर्थात्, प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन का दावा करने के लिए सिविल वाद, फाइल करने के लिए समर्थ हो जाता है । न्यायालय मूल वादी द्वारा वाद को वापस लेने और उसे नए सिरे से फाइल करने के संबंध में किए गए कथन को विचार में लेने का हकदार था और उसके कथन को सिविल वाद वापस लेने और नए सिरे से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश का भाग बनाया जा सकता था । अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थियों के विरुद्ध फाइल किया गया सिविल वाद चलाने योग्य अभिनिर्धारित किया जाता है ।

इसे तद्नुसार गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार विचारण किए जाने के लिए उसकी मूल फाइल पर प्रत्यावर्तित किया जाता है । (पैरा 42, 43 46 और 48)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 5 एस. सी. सी. 223 : **रत्नावती और एक अन्य** बनाम **कविता घनश्यामदास** ;	36,37
[2004]	(2004) 11 एस. सी. सी. 219 : **गुरिंदर पाल** बनाम **जगमित्तर सिंह** ।	39,40,43

सिविल अपीली अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 3777.

2012 की आर.एफ.ए. सं. 353 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 18 फरवरी, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री भीम सैन जैन और सुश्री प्रेरणा मेहता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जयंत भूषण, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सुश्री वी. एस. लक्ष्मी, ए. वेन्यागम बालन, प्रमोद दयाल, निकुंज दयाल और सुश्री पायल दयाल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील 2012 की आर. एफ. ए. सं. 353 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 18 फरवरी, 2014 के उस अंतिम निर्णय और आदेश से उद्भूत हुई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने इस मामले में के अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज कर दी थी और 2008 के वाद सं. 135 में अपर जिला न्यायाधीश, तीस हज़ारी न्यायालय, दिल्ली द्वारा पारित तारीख 8 मई, 2012 के उस निर्णय और आदेश को कायम रखा था जिसके द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) के आदेश 7, नियम 11 के अधीन शक्तियों का सहारा लेते हुए अपीलार्थियों के वाद को खारिज कर दिया गया था ।

3. इस अपील में अंतर्वलित विधि संबंधी संक्षिप्त प्रश्न का मूल्यांकन करने की दृष्टि से कुछ सुसंगत तथ्यों का, जो बहुत संक्षिप्त हैं, इसमें इसके नीचे उल्लेख करना आवश्यक है ।

4. अपीलार्थी, उस सिविल वाद में, जिससे यह अपील उद्‌भूत हुई है, वादी हैं जबकि प्रत्यर्थी प्रतिवादी हैं ।

5. तारीख 11 अक्तूबर, 1996 को, सुच्चा सिंह (मूल वादी), जिसकी अब मृत्यु हो चुकी है और अब उसका प्रतिनिधित्व उसके विधिक प्रतिनिधियों (अपीलार्थी सं. 1 से 4) द्वारा किया जा रहा है, प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध ज्येष्ठ सिविल न्यायाधीश, दिल्ली के न्यायालय में 1996 का सिविल वाद सं. 705 फाइल किया था । वह वाद केवल स्थायी व्यादेश की मंजूरी के लिए फाइल किया गया था ।

6. वादपत्र, अन्य बातों के साथ-साथ इन अभिकथनों पर आधारित था कि प्रत्यर्थी सं. 1 मकान, अर्थात्, सनवर नगर डाकघर रायपुर खुर्द, नई दिल्ली में स्थित गली सं. 9 के भू-खंड सं. 1 में के परिसर की बेसमेंट और आधे प्रथम तल का, जैसा कि वादपत्र (उपाबंध पी-2) में विस्तार से वर्णन किया गया है (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वादगत परिसर" कहा गया है) स्वामी था । प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 27 फरवरी, 1996 को वादगत परिसर का सुच्चा सिंह (वादी) को 11,50,000/- रुपए में विक्रय करने का करार किया और सुच्चा सिंह ने प्रत्यर्थी सं. 1 को कुल रकम में से अग्रिम के रूप में चैक द्वारा 2,00,000/- रुपए की राशि का संदाय कर दिया ।

7. इसके अतिरिक्त, यह प्रकथन किया गया था कि सुच्चा सिंह को फरवरी, 1996 में उक्त परिसर का कब्ज़ा दे दिया गया था । यह अभिकथित किया गया था कि मई, 1996 में प्रत्यर्थी सं. 1 ने सुच्चा सिंह से और धनराशि की मांग की जिसके अनुसरण में सुच्चा सिंह ने प्रत्यर्थी सं. 1 को 36,000/- रुपए का नकद संदाय कर दिया ।

8. यह अभिकथन किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 10 अक्तूबर, 1996 को सुच्चा सिंह को वादगत परिसर से बेदखल करने की धमकी दी और अपने गुर्गों की सहायता से उसे बेदखल करने का असफल प्रयास किया (वादपत्र का पैरा 13) ।

9. इस वाद-हेतुक के आधार पर सुच्चा सिंह ने वादगत परिसर के संबंध में प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध तारीख 11 अक्तूबर, 1996 को वादगत परिसर पर उसके कब्जे में हस्तक्षेप करने से उसे अवरुद्ध करने के लिए

स्थायी व्यादेश हेतु एक सिविल वाद फाइल किया ।

10. प्रत्यर्थी सं. 1 ने लिखित कथन फाइल किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिकथन किया गया कि उसने वादगत परिसर का कब्ज़ा, प्रस्तुत प्रत्यर्थी सं. 2 को पहले ही अंतरित कर दिया है और इसलिए वादी-सुच्चा सिंह के पास उपलब्ध उपचार, यदि कोई है, यह होगा कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए सिविल वाद फाइल करे न कि स्थायी व्यादेश के लिए वाद चलाए ।

11. सुच्चा सिंह (वादी) ने तारीख 27 नवम्बर, 1998 को न्यायालय में यह कथन किया कि वह सिविल वाद वापस लेना चाहता है । उसने यह कथन भी किया कि वह प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध समुचित अनुतोष का दावा करने के लिए सक्षम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां फाइल करने की दृष्टि से सिविल वाद वापस ले रहा है ।

12. विचारण न्यायालय ने तारीख 27 नवम्बर, 1998 को मूल वादी (सुच्चा सिंह) को सिविल वाद वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया और निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "वादी के काउन्सेल द्वारा यह निवेदन किया गया है कि वह समुचित न्यायालय के समक्ष मामला फाइल करने के लिए इस न्यायालय से वाद वापस लेना चाहता है । प्रतिवादी की ओर से उपस्थित काउन्सेल ने वादी द्वारा वाद वापस लिए जाने के संबंध में कोई आक्षेप नहीं किया है तथापि, उन्होंने उपगत खर्चे की मांग की है । दोनों पक्षकारों के कथनों को पृथक्-पृथक् लेखबद्ध किया गया है । पक्षकार न्यायालय में अपने कथनों के संबंध में अपने वचनबंधों के रूप में आबद्ध होंगे ।
>
> मैंने फाइल के अभिलेख और दोनों पक्षकारों के कथनों का परिशीलन किया है । वादी को 500/- रुपए के खर्चे के अधीन रहते हुए, जो कि प्रतिवादी को संदत्त किया जाएगा, वाद को वापस लेने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । कार्यवाही पूरी होने के पश्चात्, फाइल अभिलेख-कक्ष में परेषित की जाए ।
>
> (अर्चना सिन्हा)
> सिविल न्यायाधीश, दिल्ली
> 27.11.1998"

13. तारीख 25 फरवरी, 1999 को सुच्चा सिंह ने प्रत्यर्थी सं. 1 के विरुद्ध तारीख 27 फरवरी, 1996 के करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए अपर जिला न्यायाधीश, तीस हज़ारी न्यायालय, दिल्ली के न्यायालय में 1999 का सिविल वाद सं. 54 (जिसे 2008 के वाद सं. 135 के रूप में पुनर्संख्यांकित किया गया था) फाइल किया । वादी ने पैरा 13 में करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल करने हेतु वाद-हेतुक का प्रोद्भवन गठित करने वाले तथ्यों का कथन किया ।

14. प्रत्यर्थी सं. 2, अर्थात्, अभिकथित पश्चात्वर्ती क्रेता ने वाद में पक्षकार (प्रतिवादी) बनने के लिए संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । वह आवेदन मंजूर कर लिया गया था और प्रत्यर्थी सं. 2 को प्रतिवादी सं. 2 के रूप में शामिल किया गया था ।

15. दोनों प्रत्यर्थियों (प्रतिवादी सं. 1 और 2) ने अपने-अपने लिखित कथन फाइल किए और तथ्य तथा विधि संबंधी विभिन्न आधारों पर वादी के दावे से इनकार किया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने भी वादपत्र खारिज किए जाने के लिए संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन एक आवेदन फाइल किया ।

16. अन्य बातों के साथ-साथ, यह अभिकथन किया गया कि प्रश्नगत वाद (करार का विनिर्दिष्ट पालन) संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा प्रभावित होता है क्योंकि विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा, जिसका दावा प्रस्तुत वाद में किया गया है, वादी-सुच्चा सिंह द्वारा पूर्व में संस्थित उस वाद में, जो कि उसने स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया था, किया जा सकता था और किया जाना चाहिए था । यह दलील दी गई थी कि पूर्व में संस्थित वाद में करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा न करने से, जो कि यद्यपि वादी के पास पूर्ववर्ती वाद में जिस वाद-हेतुक का अभिवाक् किया गया है उसके आधार पर दावा किए जाने के लिए उपलब्ध था, संहिता के आदेश 2, नियम 2 में अंतर्विष्ट वर्जन बाद में संस्थित किए गए ऐसे सिविल वाद को लागू होगा जिसमें करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा किया जाता है और इसलिए ऐसे वाद का अब गुणागुण के आधार पर विचारण नहीं किया जा सकता है ।

17. इस वाद के लंबित रहने के दौरान, सुच्चा सिंह की तारीख 4 अगस्त, 2000 को मृत्यु हो गई और मुकदमेबाजी को चालू रखने के लिए उसके विधिक प्रतिनिधियों (जो कि इस मामले में अपीलार्थी हैं) को वादियों

के रूप में अभिलेख पर लाया गया । अपीलार्थियों (वादियों) ने प्रत्यर्थी सं. 2 (इसमें प्रत्यर्थी सं. 2) द्वारा फाइल किए गए आवेदन का विरोध किया और यह दलील दी कि करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद संधार्य है और संहिता के आदेश 2, नियम 2 द्वारा वर्जित नहीं है ।

18. तथापि, विचारण न्यायालय ने तारीख 8 मई, 2012 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के आवेदन को मंजूर कर लिया और परिणामस्वरूप यह अभिनिर्धारित करते हुए अपीलार्थियों के वाद को खारिज कर दिया कि वह संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा वर्जित है । दूसरे शब्दों में, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वादियों को करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा पूर्ववर्ती वाद में करना चाहिए था, जो कि सुच्चा सिंह (मूल वादी) द्वारा स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया था क्योंकि विचारण न्यायालय के अनुसार ऐसा अनुतोष तब दावा किए जाने के लिए उपलब्ध था जब प्रथम वाद फाइल किया गया था ।

19. वादियों ने व्यथित महसूस करते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा, विचारण न्यायालय के तर्काधार और निष्कर्ष से सहमत होते हुए अपील खारिज कर दी । वादियों ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर इस न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर प्रस्तुत अपील फाइल की है ।

20. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री भीम सैन जैन, प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री जयन्त भूषण और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री प्रमोद दयाल को सुना गया

21. पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल की सुनवाई करने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हम अपील को मंजूर करने के लिए प्रेरित हुए हैं और जबकि उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रतिवादी सं. 2) द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को खारिज करते हैं और इस मामले में के अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थियों के विरुद्ध फाइल किए गए 1999 के सिविल वाद सं. 54 (जिसे 2008 के वाद सं. 135 के रूप में पुनर्संख्यांकित किया गया है) को, जिससे यह अपील उद्भूत हुई है, विधि के अनुसार गुणागुण के आधार पर विचारण किए जाने के लिए प्रत्यावर्तित करते हैं ।

22. हमारी सुविचारित राय में, विचारण न्यायालय और उच्च

न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर करके गलती की है और तद्नुसार संहिता के आदेश 7, नियम 11 के उपबंधों का अवलंब लेते हुए वाद को संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा वर्जित मानकर उसे खारिज करके गलती की है । हमारी राय में, इस मामले के तथ्यों को संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंध लागू नहीं होते हैं और इसलिए सिविल वाद को संहिता के आदेश 2, नियम 2 के अधीन वर्जित मानकर खारिज नहीं किया जाना चाहिए था ।

23. संहिता का आदेश 2, नियम 2 निम्नलिखित रूप में है :–

> "2. **वाद के अंतर्गत संपूर्ण दावा होगा** - (1) हर वाद के अंतर्गत वह पूरा दावा होगा जिसे उस वाद-हेतुक के विषय में करने का वादी हकदार है, किन्तु वादी वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने दावे के किसी भाग का त्याग कर सकेगा ।
>
> (2) **दावे के भाग का त्याग** – जहां वादी अपने दावे के किसी भाग के बारे में वाद लाने का लोप करता है या उसे साशय त्याग देता है वहां उसके पश्चात् वह इस प्रकार लोप किए गए या त्यक्त भाग के बारे में वाद नहीं लाएगा ।"

24. संहिता के आदेश 2, नियम 2(1) में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक वाद के अंतर्गत वह पूरा दावा होगा जिसे उस वाद-हेतुक के विषय में करने का वादी हकदार है । तथापि, वादी को, वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने दावे के किसी भाग का त्याग करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है ।

25. संहिता के आदेश 2, नियम (1) के पठन से यह स्पष्ट होता है कि जब भी वादी वादपत्र में किए गए वाद-हेतुक के अभिवाक् के आधार पर कोई वाद फाइल करता है तब वह प्रतिवादी के विरुद्ध उन सभी अनुतोषों को, जो कि उसके वादपत्र में उसके द्वारा किए गए वाद-हेतुक के अभिवाक् के आधार पर उसे प्रोद्भूत हुए हैं, सम्मिलित करने और उनका दावा करने संबंधी विधिक बाध्यता के अधीन होता है । दूसरे शब्दों में, यदि वादी द्वारा वादपत्र में जिस वाद-हेतुक का अभिवाक् किया गया है उसके आधार पर वह प्रतिवादी (प्रतिवादियों) के विरुद्ध दो अनुतोषों, अर्थात् "क" और "ख" का दावा करने का हकदार है तो वह वाद में "क" और "ख"

दोनों अनुतोषों का एक साथ दावा करने के बाध्यताधीन है । संहिता का आदेश 2, नियम 2(1) वादी को, वाद को किसी न्यायालय की अधिकारिता के भीतर लाने की दृष्टि से अपने अनुतोष के किसी भाग का त्याग करने के लिए समर्थ करता है ।

26. तथापि, संहिता के आदेश 2, नियम 2(2) में यह उपबंध किया गया है कि जब वादी अपने वाद में अपने दावे/अनुतोष के किसी भाग के बारे में वाद लाने का लोप करता है या उसे साशय त्याग देता है तब, ऐसी दशा में, उसे उसके पश्चात् अपने वाद में इस प्रकार लोप किए गए या/और त्यक्त दावे/अनुतोष की बाबत वाद लाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा । दूसरे शब्दों में, नियम 2(2) वादी को लोप किए गए या/और त्यक्त अनुतोष का दावा करने के लिए द्वितीय वाद फाइल करने की अनुज्ञा नहीं देता है ।

27. हमारी राय में, प्रतिवादी द्वारा वादी के विरुद्ध आदेश 2, नियम 2(2) का अवलंब लेने की अनिवार्यता यह है कि वह अनुतोष, जिसका दावा वादी ने द्वितीय वाद में किया है, वादी के पास प्रतिवादी के विरुद्ध पूर्ववर्ती वाद में किए गए वाद-हेतुक के अभिवाक् के आधार पर पूर्ववर्ती वाद में दावा किए जाने के लिए भी उपलब्ध था किन्तु वादी द्वारा उसका दावा नहीं किया गया था ।

28. अतः, हमें इस प्रश्न की परीक्षा करनी होगी कि वादी वादगत संपत्ति के संबंध में प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध पूर्ववर्ती वाद में उसके द्वारा किए गए वाद-हेतुक के अभिवाक् के आधार पर करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा करने का हकदार था अथवा नहीं ।

29. दूसरे शब्दों में, जो प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत होता है, वह यह है कि सुच्चा सिंह (मूल वादी) पूर्व में संस्थित वाद में स्थायी व्यादेश के अपने दावे के अतिरिक्त प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा कर सकता था अथवा नहीं ?

30. ऊपर उल्लिखित प्रश्न के संबंध में हमारा उत्तर वादियों (अपीलार्थियों) के पक्ष में और प्रतिवादियों (प्रत्यर्थियों) के विरुद्ध है । दूसरे शब्दों में, ऊपर उल्लिखित प्रश्न के संबंध में हमारा उत्तर यह है कि वादी पूर्ववर्ती वाद में स्थायी व्यादेश के अनुतोष के साथ-साथ, प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा निम्नलिखित कारणों से नहीं कर सकता था ।

31. प्रथमतः, स्थायी व्यादेश के अनुतोष का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक और करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक अलग-अलग हैं और एक वाद-हेतुक के अंतर्गत दूसरा वाद-हेतुक नहीं आ सकता है ।

32. दूसरे शब्दों में, कोई वादी ऐसे वाद-हेतुक के आधार पर, जिसमें उसने स्थायी व्यादेश के अनुतोष का दावा किया है, प्रतिवादी के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का दावा नहीं कर सकता है ।

33. द्वितीयतः, वादगत परिसर पर वादी के कब्ज़े में हस्तक्षेप करने पर प्रतिवादियों के विरुद्ध अस्थायी/स्थायी व्यादेश का दावा करने संबंधी वाद-हेतुक तब प्रोद्भूत हुआ जब प्रतिवादी सं. 1 ने वादी को वादगत परिसर से बेदखल करने की धमकी दी या अन्यथा वादगत परिसर के संबंध में वादी को क्षति कारित की । यह संहिता के आदेश 39, नियम 1(ग) द्वारा शासित होता है, जो कि व्यादेश अनुदत्त किए जाने के संबंध में है । ऐसा वाद फाइल करने की परिसीमा अवधि प्रतिवादी द्वारा वादी को बाधा कारित करने की तारीख से तीन वर्ष है (देखिए – परिसीमा अधिनियम के भाग 7 के अनुच्छेद 85, 86 और 87) ।

34. दूसरी ओर, करार के विनिर्दिष्ट पालन का दावा करने के लिए वाद फाइल करने संबंधी वाद-हेतुक उस तारीख से उद्भूत होता है जो कि करार के पालन के लिए नियत की गई है या जब ऐसी कोई तारीख नियत नहीं की जाती है तब वह तारीख जब वादी को इस बात की अवेक्षा होती है कि प्रतिवादी द्वारा पालन से इनकार किया गया है । ऐसा वाद फाइल करने की परिसीमा अवधि ऐसी तारीख से तीन वर्ष है (देखिए – परिसीमा अधिनियम के भाग 2 का अनुच्छेद 54) ।

35. तृतीयतः, जब दोनों अनुतोष/दावे, अर्थात् (1) स्थायी व्यादेश और (2) करार का विनिर्दिष्ट पालन, समान नहीं हैं, जब वाद चलाने के लिए वाद-हेतुक भिन्न-भिन्न हैं, जब दोनों अनुतोषों/दावों के लिए अलग-अलग वाद-हेतुक गठित करने के लिए आवश्यक तथ्य संबंधी घटक भिन्न-भिन्न हैं और अंततः जब दोनों अनुतोष/दावे परिसीमा अधिनियम के पृथक्-पृथक् अनुच्छेदों द्वारा शासित होते हैं, तब हमारी राय में दोनों अनुतोषों का एक-साथ एक ही वाद-हेतुक में दावा करना संभव नहीं है ।

36. इस न्यायालय ने **रत्नावती और एक अन्य** बनाम **कविता घनश्यामदास**[1] वाले मामले में किंचित समरूप तथ्यों के आधार पर इसी प्रश्न की विस्तार से परीक्षा की । इस न्यायालय ने इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें इस प्रश्न के संबंध में कार्यवाही की गई है, पैरा 22 से पैरा 31 में यह अभिनिर्धारित किया कि इन तथ्यों के आधार पर संहिता के आदेश 2, नियम 2 में अंतर्विष्ट वर्जन वादी के विरुद्ध इस प्रकार लागू नहीं होता है कि उसे वादगत संपत्ति के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन का दावा करने के लिए पश्चात्वर्ती वाद फाइल करने से निर्हकित कर दिया जाए ।

37. हम **रत्नावती** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि को लागू करते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि मूल वादी द्वारा प्रत्यर्थियों (प्रतिवादियों) के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए फाइल किया गया वाद संहिता के आदेश 2, नियम 2 द्वारा वर्जित नहीं है और उसे गुणागुण के आधार पर विचारण के लिए चलाने योग्य अभिनिर्धारित किया जाता है ।

38. इसके बाद हम इस संबंध में एक अन्य प्रश्न की परीक्षा करते हैं कि क्या वादी को स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किए गए पूर्ववर्ती वाद को वापस लेते समय विचारण न्यायालय की किसी अनुज्ञा/स्वतंत्रता के अभाव में वादी वादगत संपत्ति के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल करने का हकदार था ?

39. हमारी सुविचारित राय में, जो कुछ ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, उसे देखते हुए यह प्रश्न अब विचारार्थ शेष नहीं रहता है । तथापि, **गुरिंदर पाल** बनाम **जगमित्तर सिंह**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए, इस प्रश्न का उत्तर प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दिया जाता है ।

40. **गुरिन्दर पाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के समक्ष किंचित समरूप तथ्यों के आधार पर यह प्रश्न उद्भूत हुआ, अर्थात्, यदि संहिता के आदेश 23, नियम 1(3) के अधीन वाद वापस लेने की अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश में वादी को नए सिरे से वाद फाइल करने की स्वतंत्रता प्रदाने करने संबंधी तथ्य का विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया

---

[1] (2015) 5 एस. सी. सी. 223.

[2] (2004) 11 एस. सी. सी. 219.

जाता है तो क्या नए सिरे से वाद फाइल करना संहिता के आदेश 2, नियम 2 के विरुद्ध होगा ?

41. इस न्यायालय (तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ) ने न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी (जैसे कि विद्वान् न्यायमूर्ति तब थे) की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि द्वितीय वाद फाइल करना संहिता के आदेश 2, नियम 2 के प्रतिकूल नहीं है और वह गुणागुण के आधार पर विचारण किए जाने के लिए पोषणीय है । इस न्यायालय ने पैरा 6 में यही अभिनिर्धारित किया :–

> "6. पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल को सुनने के पश्चात् हमारा यह समाधान हो गया है कि उच्च न्यायालय तथा प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय उस सीमा तक कायम नहीं रखा जा सकता है जिस सीमा तक सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 के अधीन अधिनियमित वर्जन लागू किया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 2, नियम 2 वादी-अपीलार्थी के उपचार को वर्जित करता है और इसलिए उसका अर्थान्वयन कठोरतापूर्वक किया जाना चाहिए । पूर्ववर्ती वाद में पारित विचारण न्यायालय के तारीख 15 जून, 1994 के आदेश को, जिसे इसमें इसके ऊपर उद्धृत किया गया है, न्यायालय द्वारा उसी तारीख को अभिलिखित वादी-अपीलार्थी के कथन के प्रकाश में पढ़ा जाना चाहिए । वादी-अपीलार्थी ने स्पष्ट रूप से यह कहा था कि वह नए सिरे से वाद फाइल करने की स्वतंत्रता सहित वाद को वापस लेने की इजाजत की ईप्सा कर रहा था । विचारण न्यायालय ने यह लेखबद्ध किया कि वाद को 'वादी के कथन को ध्यान में रखते हुए' वापस लिए जाने के कारण खारिज किया जा रहा है । न्यायालय के आदेश और वादी के कथन का संयुक्त रूप से पठन करने पर यह संकेत मिलता है कि वाद को वापस लिए जाने के कारण खारिज कर दिया गया था क्योंकि वादी नए सिरे से वाद फाइल करना चाहता था, जिसमें स्पष्ट रूप से वादी विनिर्दिष्ट पालन की डिक्री की न कि मात्र व्यादेश की ईप्सा करेगा, जैसी कि उस वाद में, जिसे वापस लेने की ईप्सा की गई थी, प्रार्थना की गई थी । पश्चात्वर्ती वाद में, प्रथम अपील न्यायालय का यह राय बनाना ठीक नहीं था कि वादी को तारीख 15 जून, 1994 के आदेश में नए सिरे से वाद फाइल करने की स्वतंत्रता प्रदान नहीं की गई थी । उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील न्यायालय के उस निष्कर्ष को कायम

नहीं रखा जाना चाहिए था ।"

42. वर्तमान मामले को ऊपर उल्लिखित विधि का सिद्धांत लागू करने पर हम यह पाते हैं कि मूल वादी (सुच्चा सिंह) ने पूर्ववर्ती वाद में स्पष्ट रूप से यह कथन किया था कि वह वाद को इसलिए वापस लेना चाहता है क्योंकि वह वाद की विषयवस्तु के संबंध में सक्षम न्यायालय के समक्ष समुचित कार्यवाहियां फाइल करना चाहता है । विचारण न्यायालय ने उसका कथन तारीख 27 नवम्बर, 1998 को अभिलिखित किया और वाद को वापस लेने की अनुज्ञा प्रदान की ।

43. हमारी सुविचारित राय में, मूल वादी (सुच्चा सिंह) के कथन को न्यायालय द्वारा वाद को वापस लेने के लिए प्रदान की गई अनुज्ञा के साथ पढ़ने से संहिता के आदेश 23, नियम 1(3) की अपेक्षा पूरी हो जाती है । इससे वादी निश्चित रूप से नए सिरे से वाद, अर्थात्, प्रतिवादियों के विरुद्ध करार के विनिर्दिष्ट पालन का दावा करने के लिए सिविल वाद, फाइल करने के लिए समर्थ हो जाता है । हमारी राय में, न्यायालय मूल वादी (सुच्चा सिंह) द्वारा वाद को वापस लेने और उसे नए सिरे से फाइल करने के संबंध में किए गए कथन को विचार में लेने का हकदार था और उसके कथन को सिविल वाद वापस लेने और नए सिरे से वाद फाइल करने की अनुज्ञा प्रदान करने वाले आदेश का भाग बनाया जा सकता था, जैसा कि **गुरिन्दर पाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था ।

44. अतः, हमारी राय में, प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा दी गई इस दलील में कोई सार नहीं है ।

45. इसके बाद, प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रतिवादी सं. 2) की ओर से विद्वान् काउन्सेल ने वाद के गुणागुण के संबंध में न्यायालय का ध्यान दिलाया । हमें खेद है कि हम वाद में अंतर्वलित संविवाद के गुणागुण से संबंधित किसी प्रश्न की परीक्षा नहीं कर सकते हैं । अब विचारण न्यायालय को वाद का गुणागुण के आधार पर विचारण करने और वाद को विधि के अनुसार विनिश्चित करने की कार्यवाही करनी है ।

46. पूर्वगामी विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए, हम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्काधार और निकाले गए निष्कर्ष से सहमत नहीं हो सकते हैं, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रतिवादी

सं. 2) द्वारा संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को मंजूर करके और परिणामस्वरूप अपीलार्थियों (वादियों) के वाद को संहिता के आदेश 2, नियम 2 के उपबंधों द्वारा वर्जित मानकर खारिज करके गलती की गई है ।

47. परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और तद्नुसार मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी सं. 2 (प्रतिवादी सं. 2) द्वारा संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किया गया आवेदन खारिज किया जाता है ।

48. अपीलार्थियों द्वारा प्रत्यर्थियों के विरुद्ध फाइल किया गया सिविल वाद (1999 का वाद सं. 54, जिसे 2008 के वाद सं. 135 के रूप में पुनर्संख्यांकित किया गया है) चलाने योग्य अभिनिर्धारित किया जाता है । इसे तद्नुसार गुणागुण के आधार पर विधि के अनुसार विचारण किए जाने के लिए उसकी मूल फाइल पर प्रत्यावर्तित किया जाता है ।

49. विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह सिविल वाद का विनिश्चय शीघ्रतापूर्वक और अधिमानतः एक वर्ष के भीतर, हमारी किसी भी मताभिव्यक्ति से प्रभावित हुए बिना गुणागुण के आधार पर करे ।

अपील मंजूर की गई ।

ग्रो.

[2018] 3 उम. नि. प. 430

नवनीत कृष्णन्

बनाम

राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक

16 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सिकरी और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 3 – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्तों को अंतिम बार मृतकों के साथ देखा जाना – अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत परिस्थितियों की शृंखला में एक महत्वपूर्ण घटना होती है जिससे अभियुक्त की दोषिता पूर्णतः सिद्ध तो हो जाती है या कुछ निश्चितता के साथ उसकी दोषिता को इंगित कर सकती है, तथापि, केवल इस साक्ष्य से अभियुक्तों की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने वाले भार का निर्वहन नहीं हो सकता है और इसकी संपुष्टि होना आवश्यक है तथा केवल इस आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 364 और 379 [सपठित भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 25, 26 और 27] – हत्या, अपहरण और लूट – संस्वीकृति कथन – दोषसिद्धि – जहां अभियुक्तों ने मृतकों का अपहरण करने और उनकी हत्या करने का संस्वीकृति कथन पुलिस अभिरक्षा में किया हो और उनके कथन के आधार पर कुछ तात्विक वस्तुओं की बरामदगी हुई हो, वहां ऐसे कथन का केवल उतना ही भाग ग्रहण किए जाने योग्य होगा जिसके परिणामस्वरूप वस्तुओं की बरामदगी हुई थी तथा किसी अन्य तात्विक साक्ष्य के अभाव में केवल संस्वीकृति कथन और अभियुक्तों को अंतिम बार मृतकों के साथ देखे जाने के साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तों को दोषसिद्ध करना न्यायोचित नहीं होगा ।

इस अपील के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी-अभियुक्तों ने शीघ्र धन कमाने के लिए एक कार को लूटने और उसे बेचने की योजना बनाई और उस प्रयोजन के लिए वे तारीख 14 फरवरी, 2008 को येरकौड गए तथा दर्शनीय स्थल देखने का बहाना करके जॉन बोस्को (मृतक) की टैक्सी ली । जॉन बोस्को (मृतक) ने रास्ते में मदन नामक व्यक्ति (मृतक) को भी लिया । जॉन बोस्को महिमादास (अभि. सा. 8) नामक व्यक्ति की

ट्रेवल एंजेसी में ड्राइवर के रूप में नियोजित था । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने ड्राइवर-जॉन बोस्को से कहा कि उन्हें अभियुक्तों में से एक अभियुक्त के पितामह के पेरियार नगर, सालेम स्थित मकान पर उतार दिया जाए । वहां पहुंचने के पश्चात्, अपीलार्थी-अभियुक्त ने पाया कि पितामह वहां नहीं था । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने जॉन बोस्को को शराब पीने के लिए मकान के अंदर आने के लिए आमंत्रित किया और उन्होंने उन दोनों की एक रस्सी से गला घोंटकर हत्या कर दी । अभियुक्त सं. 1 ने जॉन बोस्को का मोबाइल फोन लिया और अभियुक्त सं. 3 ने याशिका कैमरा लिया । अभियुक्त सं. 2 ने उक्त वैन को अपने पितामह के मकान में छिपा दिया । वैन की नम्बर प्लेट को एक स्टीकर से बदल दिया । उसके पश्चात्, उन्होंने शवों को अलग-अलग बोरियों में लपेटा और जॉन बोस्को के शव वाली बोरी को अभि. सा. 1 के कुंए में फेंक दिया तथा मदन के शव को किसी अन्य स्थान पर फेंक दिया । महिमादास नामक व्यक्ति (अभि. सा. 8) द्वारा पुलिस थाना, येरकौड, जिला सालेम में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कराई गई । अन्वेषण के दौरान, शिवशंकर (अभियुक्त सं. 1) को गिरफ्तार किया गया और उसने इस अपील में अपीलार्थियों (अभि. 2 और अभि. 3) के साथ मिलकर अपराध कारित करने के बारे में यह उल्लेख करते हुए संस्वीकृति की कि उन्होंने जॉन बोस्को और उसके मित्र मदन का अपहरण किया था और उन्हें मारुति वैन में, जो जॉन बोस्को द्वारा चलाई जा रही थी, अभियुक्त सं. 2 के एक नातेदार के यहां ले गए और वहां उन्होंने जॉन बोस्को और मदन की एक रस्सी का उपयोग करके गला घोंटकर एक-एक करके मृत्यु कारित की गई और उनके शवों को बोरी में डालकर जलधारा में डुबो दिया गया । सम्यक् प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात्, न्यायिक मजिस्ट्रेट, सालेम के न्यायालय में एक आरोप पत्र फाइल किया गया और मामला अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सालेम के न्यायालय को सुपुर्द किया गया । विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने तारीख 18 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश द्वारा सभी अभियुक्तों को आरोपित धाराओं के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने तारीख 18 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 23 नवम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज कर दिया गया । अपीलार्थियों द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश से व्यथित

होकर उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह एक स्थिर विधिक स्थिति है कि विधि में यह उपधारणा की जाती है कि उस व्यक्ति ने ही मृतक की हत्या की होगी, जिसे अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया था और यह साबित करके कि वे मृतक से अलग हो गए थे, इस उपधारणा का खंडन करने का भार अभियुक्त पर होता है । निस्संदेह, परिस्थितियों की शृंखला में अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण घटना होती है जिससे अभियुक्त की दोषिता पूर्णतः सिद्ध हो जाती है और/या कुछ निश्चितता के साथ उसकी दोषिता को इंगित कर सकती है । तथापि, केवल इस साक्ष्य से अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने वाले भार का निर्वहन नहीं हो सकता है और इसकी संपुष्टि होना आवश्यक है । (पैरा 18)

साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 केवल तब लागू होती है यदि संस्वीकृति कथन के परिणामस्वरूप किसी नए तथ्य का पता चला है । इसकी सुसंगतता जितनी एतद्द्वारा पता चले तथ्य में स्पष्टतया संबंधित है तक सीमित है । प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त सं. 3 के बताने पर जो याशिका कैमरा बरामद किया गया था, मृतक के पिता तथा माता द्वारा उसकी शनाख्त नहीं की गई थी । वस्तुतः, अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असमर्थ रहा है कि कैमरा वास्तव में मृतक जॉन बोस्को का ही था । यद्यपि मोबाइल फोन अभियुक्त सं. 1 से बरामद हुआ था, किंतु अभिलेख पर इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि सैल फोन मृतक जॉन बोस्को का था या अभि. सा. 8 का था, क्योंकि यह फोन उनके नाम से नहीं खरीदा गया था । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष उस व्यक्ति की परीक्षा करने में असफल रहा, जिसके नाम से सैल फोन खरीदा गया था, जिससे यह दर्शित हो सके कि यह मूल रूप से अभि. सा. 8 का था और अभि. सा. 8 का यह कथन साबित हो सके कि उसने फोन खरीदा था और इसे मृतक जॉन बोस्को को दिया था । इसके अतिरिक्त, तात्विक वस्तुएं, अर्थात् नोकिया फोन और मोटरसाइकिल का मामले से कोई सरोकार ही नहीं है । नोकिया फोन अभियुक्त सं. 1 से बरामद किया गया था और यह पक्षकथन नहीं है कि इसे अपराध कारित करने में प्रयुक्त किया गया था और इसी प्रकार जो मोटरसाइकिल बरामद की गई थी वह अभियुक्त सं. 3 के पिता की थी तथा अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य पेश या प्रस्तुत नहीं किया गया है कि इन वस्तुओं का मामले से कैसे सरोकार है ।

वास्तव में, साक्षियों में से किसी ने भी कैमरे की शनाख्त नहीं की थी या सामान जॉन बोस्को का होने की बात कही थी । धारा 27 में अंतर्विष्ट आदेश के बावजूद उक्त कथन अग्राह्य हैं और इसका एकमात्र कारण यह है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि इनके परिणामस्वरूप किसी नए तथ्य का पता चला था । पुलिस ने जिन तात्विक वस्तुओं को अभियुक्तों से बरामद किए जाने का दावा किया है, वे पुलिस द्वारा गढ़ी गई हो सकती हैं । अतः, अपराध और बरामद की गई वस्तुओं के बीच किसी संयोजक कड़ी के अभाव में, अभियुक्तों की प्रेरणा पर की गई बरामदगी का मामले के तथ्यों के आधार पर कोई तात्विक संबंध नहीं है । यह विधि सुस्थिर है कि अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति को विश्वसनीय और सटीक साक्ष्य द्वारा स्पष्ट रूप से अवश्य सिद्ध किया जाना चाहिए और इस प्रकार साबित की गई परिस्थितियों से घटनाओं की अवश्य एक ऐसी श्रृंखला बननी चाहिए जिससे अभियुक्त की दोषिता के बारे में एकमात्र अप्रतिरोध्य निष्कर्ष सुरक्षित रूप से निकाला जा सके और दोषिता के विरुद्ध कोई अन्य परिकल्पना संभव न हो । पारिस्थितिक साक्ष्य पर अत्यधिक रूप से निर्भर मामले में सदैव यह खतरा रहता है कि अटकलबाजी या संदेह विधिक सबूत का स्थान ले सकते हैं । न्यायालय को अवश्य अपना यह समाधान कर लेना चाहिए कि घटनाओं की श्रृंखला में की विभिन्न परिस्थितियां अवश्य ऐसी होनी चाहिएं कि अभियुक्त की निर्दोषिता की युक्तियुक्त संभावना को नकारा जा सके । जब महत्वपूर्ण कड़ी गायब होती है, तो परिस्थितियों की श्रृंखला चटाख से टूट जाती है और अन्य परिस्थितियां, किसी रीति में, अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं कर सकती हैं । न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए और संदेह को विधिक सबूत का स्थान लेने के खतरे से बचना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी यह अनजाने में नैतिक निश्चितता और विधिक सबूत के बीच जल्दबाजी में उठाया गया कदम हो सकता है । "सत्य हो सकता है" और "अवश्य सत्य होना चाहिए" के बीच बहुत लंबी मानसिक दूरी है और ये बातें अटकलबाजियों को निश्चित निष्कर्षों से पृथक् करती हैं । यह न्यायालय विधि के स्थिर सिद्धांतों और इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयों द्वारा दी गई इस चेतावनी से पूरी तरह सचेत है कि इस मामले जैसे किसी मामले में, जहां अभियोजन पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर है, वहां अभियोजन पक्ष को सभी आवश्यक परिस्थितियों को अवश्य प्रस्तुत और साबित करना चाहिए जिससे एक अटूट पूर्ण श्रृंखला बनती हो और इस परिकल्पना को इंगित करती हो कि अभियुक्त के सिवाए किसी अन्य व्यक्ति ने अपराध कारित नहीं किया

था और इस मामले में अभियोजन पक्ष यह बात साबित करने में असफल रहा है । पूर्वगामी चर्चा को देखते हुए, इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि दोनों निचले न्यायालयों ने कथन के उस भाग का अवलंब लेकर गलती की है जिसे ऐसी संस्वीकृति का नाम दिया जा सकता है, जो पुलिस अधिकारी को उस समय किया गया था जब वे अभिरक्षा में थे और इससे साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 26 का अतिक्रमण होगा और कथन का केवल वह भाग अनुज्ञेय होगा जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न सामग्री की बरामदगी हुई थी । अतः, अपीलार्थी-अभियुक्तों के विरुद्ध किसी अन्य तात्विक साक्ष्य के अभाव में, उन्हें मृतकों के साथ अंतिम बार देखे जाने के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । (पैरा 22, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 399 : **मधु** बनाम **केरल राज्य** ;	21
[2010]	(2010) 7 एस. सी. सी. 263 : **सेल्वी और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	19
[2008]	2008 क्रिमिनल ला जर्नल 2005 : **रफीकुल आलम और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	17
[1989]	(1989) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 706 : **पदाला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ।	14

अपील (दांडिक) अधिकारिता : 2013 की दांडिक अपील सं. 1134 और इसके साथ 2013 की दांडिक अपील सं. 1135-1136 तथा 1137.

2009 की दांडिक अपील सं. 688 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 23 नवम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री के. के. मणि, (सुश्री) अर्चना मयूर, आर. साह, वेंकटेश्वर राव

अनुमोलू, के. के. एस. कृष्णराज, प्रभाकर प्रणम, पी. मधुसुधन रेड्डी, एन. राजारमन, जयंत मुतराज, (सुश्री) वाई. अरुणागिरी और एस. गौतमन

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एम. योगेश कन्ना, (सुश्री) नित्या और आर. वी. कामेश्वरन्

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – उपरोक्त अपीलें 2009 की दांडिक अपील सं. 639 और 688 में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 23 नवम्बर, 2009 को पारित उस सामान्य निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 2009 के सेशन मामला सं. 21 में त्वरित न्यायालय सं. 2, सालेम द्वारा तारीख 18 सितम्बर, 2009 को पारित आदेश के विरुद्ध इस अपील में अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज कर दिया था, जिसमें विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों को भारतीय दंड सहिता, 1860 (जिसे इसे आगे संक्षेप में "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 34 के साथ पठित धारा 302, 364 और 379 के अधीन दोषसिद्ध किया था और भारतीय दंड संहिता के अधीन मूल दंडादेशों सहित आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया था ।

2. **संक्षिप्त तथ्य**

(क) महिमादास (अभि. सा. 8) द्वारा तारीख 16 फरवरी, 2008 को पुलिस थाना, येरकौड, जिला सालेम में यह उल्लेख करते हुए 2008 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 41 रजिस्ट्रीकृत कराई गई कि तारीख 14 फरवरी, 2008 को जॉन बोस्को (मृतक) ने, जो उसकी ट्रेवल एजेंसी में ड्राइवर के रूप में नियोजित था, मदन नामक एक व्यक्ति (मृतक) के साथ उससे एक मारुति वैन ली थी किंतु वे दो दिन तक वापस नहीं आए ।

(ख) अगले ही दिन अर्थात् तारीख 17 फरवरी, 2008 को अशोकन् नामक व्यक्ति ने 2008 की एक और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 88 यह उल्लेख करते हुए रजिस्ट्रीकृत कराई कि जब वह अपने खेतों की सिंचाई करने के लिए गया था, तब उसने कुंए में एक सफेद रंग की बोरी तैरते हुए पाई । उसने तुरंत इसके बारे में स्थानीय पुलिस को सूचित किया और

जब बोरी खोली गई तो उसमें कमर पर हाथ बंधे हुए एक पुरुष का शव पाया गया ।

(ग) तारीख 16 फरवरी, 2008 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के आधार पर येरकौड पुलिस थाने में 2008 का अपराध सं. 41 रजिस्ट्रीकृत किया गया और अन्वेषण के लंबित रहने के दौरान 2008 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 88 रजिस्ट्रीकृत की गई तथा एक शव पाया गया जिसकी शनाख्त जॉन बोस्को के रूप में की गई ।

(घ) अन्वेषण के दौरान, शिवशंकर (अभियुक्त सं. 1) को गिरफ्तार किया गया और उसने इस अपील में अपीलार्थियों अभि. 2 और अभि. 3) के साथ मिलकर अपराध कारित करने के बारे में यह उल्लेख करते हुए संस्वीकृति की कि उन्होंने जॉन बोस्को और उसके मित्र मदन का अपहरण किया और उन्हें मारुति वैन में, जो जॉन बोस्को द्वारा चलाई जा रही थी, अभियुक्त सं. 2 के एक नातेदार के यहां ले गए और वहां उन्होंने जॉन बोस्को और मदन की एक रस्सी का उपयोग करके गला घोंटकर एक-एक करके मृत्यु कारित की गई और उनके शवों को बोरी में डालकर जलधारा में डुबो दिया गया । अभियुक्त सं 1 अन्वेषक अधिकारी को उस स्थान पर भी लेकर गया था जहां एक बोरी में मदन का शव पाया गया था ।

(ङ) सम्यक् प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात्, न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. 5, सालेम के न्यायालय में एक आरोप पत्र फाइल किया गया और मामला अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं. 2, सालेम के न्यायालय को सुपुर्द किया गया और इसे 2009 के सेशन मामला सं. 21 के रूप में संख्यांकित किया गया । न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 364, 302 और धारा 302 तथा 379 के साथ पठित धारा 201 के अधीन आरोप विरचित किए गए ।

(च) विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश ने तारीख 18 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश द्वारा सभी अभियुक्तों को आरोपित धाराओं के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया ।

(छ) अपीलार्थी-अभियुक्तों ने तारीख 18 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2009 की दांडिक अपील सं. 639 और 688 फाइल कीं । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 23 नवम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज कर दिया ।

(ज) अपीलार्थियों ने तारीख 23 सितम्बर, 2009 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर ये अपीलें फाइल की हैं ।

3. अपीलार्थी-अभियुक्तों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री के. के. मणि और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एम. योगेश कन्ना को सुना तथा अभिलेख का परिशीलन किया ।

विचारणीय मुद्दा (मुद्दे)

4. इस मामले के प्रस्तुत तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय के समक्ष विचारणीय एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी-अभियुक्तों द्वारा फाइल की गई अपीलों को खारिज करके ठीक किया है ?

परस्पर विरोधी दलीलें

5. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालय यह मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं कि मुकरी हुई संस्वीकृति के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है और इसका प्रयोग केवल अन्य साक्ष्य के समर्थन में किया जा सकता है । उन्होंने यह भी दलील दी कि जहां मृत्यु का कारण तक ज्ञात नहीं है वहां निचले न्यायालयों ने अपीलार्थियों की दोषसिद्धि करके गलती की है ।

6. विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अभियोजन के वृत्तांत में कई खामियां हैं । इसके समर्थन में उन्होंने यह दलील दी कि निचले न्यायालय यह मूल्यांकन करने में असफल रहे हैं कि अभियुक्त सं. 1 से बरामद फोन का स्वामी अभि. सा. 8 न होकर कोई अन्य व्यक्ति है और अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त व्यक्ति की कभी-भी परीक्षा नहीं की गई । इसके अतिरिक्त, अभि. सा. 11 ने अभियुक्तों को मृतकों के साथ तारीख 14 फरवरी, 2008 को लगभग 10.30 बजे पूर्वाह्न में देखा था, ज़बकि शव कई दिनों के अंतराल के पश्चात् पाए गए थे और किसी अन्य व्यक्ति के मध्यक्षेप की संभाव्यता को अनदेखा नहीं किया जा सकता है ।

7. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने अंतिमतः यह दलील दी कि उच्च न्यायालय को इस तथ्य का मूल्यांकन करना चाहिए था कि अभियोजन के पक्षकथन में पारिस्थितिक साक्ष्य की श्रृंखला पूर्ण नहीं है और इसमें विभिन्न अंतर्निहित कमियां हैं, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को अपास्त करते हुए संदेह का

फायदा अपीलार्थियों के पक्ष में दिया जाना चाहिए ।

8. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा सेशन न्यायालय के विनिश्चय को कायम रखते हुए पारित किया गया निर्णय और आदेश विधि के निबंधनों और सिद्धांतों के अनुसार है तथा इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और अपीलार्थी-अभियुक्तों के विरुद्ध दोषिता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं ।

चर्चा

9. अभियोजन का पक्षकथन यह है कि अपीलार्थी-अभियुक्तों ने शीघ्र धन कमाने के लिए एक कार को लूटने और उसे बेचने की योजना बनाई और उस प्रयोजन के लिए वे तारीख 14 फरवरी, 2008 को येरकौड गए तथा दर्शनीय स्थल देखने का बहाना करके जॉन बोस्को (मृतक) की टैक्सी ली । जॉन बोस्को (मृतक) ने रास्ते में मदन नामक व्यक्ति (मृतक) को भी लिया । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने ड्राइवर-जॉन बोस्को से कहा कि उन्हें अभियुक्तों में से एक अभियुक्त के पितामह के पेरियार नगर, सालेम स्थित मकान पर उतार दिया जाए । वहां पहुंचने के पश्चात्, अपीलार्थी-अभियुक्त ने पाया कि पितामह वहां नहीं था । अपीलार्थी-अभियुक्तों ने जॉन बोस्को को शराब पीने के लिए मकान के अंदर आने के लिए आमंत्रित किया और उन्होंने उन दोनों की एक रस्सी से गला घोंटकर हत्या कर दी । अभियुक्त सं. 1 ने जॉन बोस्को का मोबाइल फोन लिया और अभियुक्त सं. 3 ने याशिका कैमरा लिया । अभियुक्त सं. 2 ने उक्त वैन को अपने पितामह के मकान में छिपा दिया । वैन की नम्बर प्लेट को एक स्टीकर से बदल दिया । उसके पश्चात्, उन्होंने शवों को अलग-अलग बोरियों में लपेटा और जॉन बोस्को के शव वाली बोरी को अभि. सा. 1 के कुंए में फेंक दिया तथा मदन के शव को किसी अन्य स्थान पर फेंक दिया ।

10. अपीलार्थी-अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और धारा 379 के साथ पठित धारा 364 और 201 के अधीन आरोपित और अभियोजित किया गया । चूंकि, प्रस्तुत मामले में घटना का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध नहीं है, इसलिए अभियोजन पक्ष ने पारिस्थितिक साक्ष्य का जोरदार रूप से अवलंब लिया । अभियोजन पक्ष ने मामले को साबित करने के लिए कुल 27 साक्षियों की परीक्षा की और विभिन्न सुसंगत दस्तावेज प्रस्तुत किए ।

11. अभि. सा. 8 द्वारा पुलिस थाना, येरकौड में दर्ज की गई 2008 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 41 में उसने विनिर्दिष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि उसने किसी अन्य व्यक्ति के नाम में एक मोबाइल फोन खरीदा था और इसे जॉन बोस्को को सौंपा था । अभि. सा. 8 उस यान का स्वामी है, जो घटना के समय जॉन बोस्को द्वारा चलाया जा रहा था और यह साक्षी उसका मामा है । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि जॉन बोस्को उस समय उक्त यान के ड्राइवर के रूप में कार्य कर रहा था और दुर्भाग्यपूर्ण दिन अर्थात् 14 फरवरी, 2008 को उसने उसे कहा कि वह अपने एक मित्र को सालेम छोड़ने के लिए जा रहा है और वह वहां से 11.30 बजे गया था तथा जब वह दो दिनों तक वापस नहीं आया, तो उसने तारीख 16 फरवरी, 2008 को एक गुमशुदा शिकायत फाइल की । अभि. सा. 8 ने मोबाइल फोन पर जॉन बोस्को से संपर्क करने की भी कोशिश की किंतु फोन बंद था । अन्वेषक अधिकारी, श्री असाईथांबी (अभि. सा. 26) ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कहा कि अभि. सा. 8 ने तारीख 25 फरवरी, 2008 को उसे उक्त मोबाइल फोन का बिल सौंपा था । अन्वेषण के दौरान और मोबाइल फोन के आईएमइआई संख्यांक का पता लगाते समय यह प्रकट हुआ कि उक्त फोन का उपयोग अभियुक्त सं. 1-शिवशंकरन् द्वारा किया जा रहा था । अभि. सा. 26 द्वारा तारीख 1 मार्च, 2008 को अभियुक्त सं. 1 को गिरफ्तार किया गया और उसने स्वेच्छया एक संस्वीकृति कथन किया, जिसे अभि. सा. 13 द्वारा देखा गया था । उसके संस्वीकृति कथन के आधार पर अभि. सा. 26 ने मदन का शव तथा जॉन बोस्को का मोबाइल फोन पाया और एक रस्सी भी बरामद की गई जिससे उन्होंने अभिकथित रूप से मृतकों की हत्या की थी । शव की शनाख्त उसकी माता द्वारा की गई और इसे स्कल इम्पोजिशन टेस्ट द्वारा भी साबित किया गया । अभियुक्त सं. 1 ने अन्य अभियुक्तों का पता-ठिकाना भी बताया, जिसके आधार पर उन्हें येरकौड जंक्शन से गिरफ्तार किया गया । तथापि, यह अभियुक्त अपने किए गए कथन से न्यायालय में मुकर गया ।

12. अभियुक्त सं. 1 द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अभि. सा. 20 द्वारा अभियुक्त सं. 2 सुरेश को सालेम रेलवे स्टेशन से गिरफ्तार किया गया और उसके द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अभि. सा. 26 द्वारा अभिकथित ओमनी वैन की बरामदगी की गई । इसके अतिरिक्त, अनबालगन (अभि. सा. 11) ने, जो येरकौड टैक्सी स्टैंड पर एक टैक्सी ड्राइवर था, यह अभिसाक्ष्य दिया कि अपीलार्थी-अभियुक्तों ने दर्शनीय स्थल

देखने के लिए टैक्सी भाड़े पर लेने हेतु तारीख 14 फरवरी, 2008 को जॉन बोस्को से बात की थी । उसके पश्चात्, इस साक्षी ने देखा कि अपीलार्थी-अभियुक्त जॉन बोस्को के यान में सवार हुए और थोड़ी दूर से मदन भी उसी यान में सवार हुआ । वास्तव में, अभि. सा. 11 ने न्यायालय में अपीलार्थी-अभियुक्तों की उन व्यक्तियों के रूप में शनाख्त की थी, जो तारीख 14 फरवरी, 2008 को जॉन बोस्को और मदन के साथ गए थे ।

13. अभि. सा. 20 द्वारा अभियुक्त सं. 1 द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर अभियुक्त सं. 3 नवनीत कृष्णन् को सालेम रेलवे स्टेशन से गिरफ्तार किया गया था । अभि. सा. 26 ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि अभियुक्त सं. 3 के संस्वीकृति कथन के आधार पर याशिका कैमरा बरामद किया गया था । उसके द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर तारीख 17 फरवरी, 2008 को अभि. सा. 1 के खेत से जॉन बोस्को का शव बरामद किया गया था और मृतक के माता-पिता द्वारा शव की शनाख्त की गई थी और इसे स्कल इम्पोजिशन टेस्ट द्वारा भी साबित किया गया था । किंतु यहां यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष के पास ऐसा कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है जो वह प्रस्तुत कर सके । संपूर्ण मामला पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से घटना के बारे में बताने के लिए कोई साक्षी नहीं है ।

14. प्रस्तुत मामले में, घटना का कोई साक्षी नहीं है और यह मामला केवल पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है । आगे अग्रसर होने से पूर्व, किसी अभियुक्त को दोषमुक्त या दोषसिद्ध करने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य की विश्वसनीयता से संबंधित विधि को निर्दिष्ट करना प्रासंगिक होगा । **पदाला वीरा रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पारिस्थितिक साक्ष्य से संबंधित विधि पर उचित रूप से विचार किया गया था, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

"10. * * * * *

(1) जिन परिस्थितियां से दोषिता का निष्कर्ष निकाला जाना ईप्सित है, वे सटीक और सुदृढ़ रूप से सिद्ध की जानी चाहिएं ;

(2) वे परिस्थितियां एक निश्चायक प्रवृत्ति की होनी चाहिएं, जो अचूक अभियुक्त की दोषिता को इंगित करती हों ;

---

[1] (1989) (सप्ली.) 2 एस. सी. सी. 706.

(3) इन परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने पर इतनी पूर्ण श्रृंखला बननी चाहिए कि यह निष्कर्ष निकले कि सभी मानवीय अभिसंभाव्यताओं में अपराध अभियुक्त द्वारा ही कारित किया गया था और किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नहीं ; और

(4) दोषसिद्धि को सिद्ध करने के लिए पारिस्थितिक साक्ष्य पूर्ण होना चाहिए और अभियुक्त की दोषिता के सिवाय किसी अन्य परिकल्पना का स्पष्टीकरण देने में असमर्थ होना चाहिए तथा ऐसा साक्ष्य न केवल अभियुक्त की दोषिता के संगत अपितु उसकी निर्दोषिता के असंगत भी होना चाहिए ।"

15. अभियोजन पक्ष ने न्यायालय के समक्ष मुख्य रूप से तीन परिस्थितियों का अवलंब लिया था । प्रथम, अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत, द्वितीय, अपीलार्थी-अभियुक्तों से उन तात्विक वस्तुओं की बरामदगी, जो दोनों मृतकों की थीं और तृतीय, प्रथम अभियुक्त द्वारा बताए अनुसार नदी की सतह से बरामद मदन के शव की शनाख्त, तथापि, इस अपील में अपीलार्थी ने इसके संबंध में कई सारे संदेह व्यक्त किए ।

16. प्रस्तुत मामले में मुख्य साक्ष्य अभि. सा. 11 का परिसाक्ष्य है, जिसने विश्वस्त रूप से अपीलार्थी-अभियुक्तों को अंतिम बार मृतकों के साथ देखा था । अपीलार्थी-अभियुक्तों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभि. सा. 11 के लिए सभी अभियुक्त अपरिचित थे, किंतु कोई शनाख्त परेड आयोजित नहीं की गई थी और उक्त साक्षी ने उक्त अभियुक्तों की शनाख्त लगभग 50 दिन बीत जाने के पश्चात् सीधे ही न्यायालय में की थी और इसलिए उसके साक्ष्य का अवलंब नहीं लिया जाना चाहिए ।

17. विधि की यह एक स्थिर प्रतिपादना है कि न्यायालय के समक्ष हुई अभियुक्त की शनाख्त परेड एकमात्र मुख्य और सारभूत साक्ष्य नहीं है, अपितु यह केवल एक संपुष्टिकारी साक्ष्य है । इस संबंध में, **रफीकुल आलम और अन्य** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले का सुरक्षित रूप से अवलंब लिया जा सकता है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"10. ....तद्नुसार, यह एक सुरक्षित प्रज्ञा का नियम समझा

---

[1] 2008 क्रिमिनल लॉ जर्नल 2005.

जाता है कि उन साक्षियों द्वारा, जिनके लिए अभियुक्त अजनबी हैं, उनकी शनाख्त के बारे में न्यायालय में शपथपूर्वक दिए गए परिसाक्ष्य की संपुष्टि करने की सामान्यतया पूर्ववर्ती शनाख्त कार्यवाहियों के रूप में प्रत्याशा की जानी चाहिए । तथापि, प्रज्ञा का यह नियम तब अपवादों के अध्यधीन है जब, उदाहरण के लिए, न्यायालय किसी ऐसे विशिष्ट साक्षी से प्रभावित हो जाता है, जिसके परिसाक्ष्य के आधार पर वह, ऐसी या अन्य संपुष्टि के बिना, सुरक्षित रूप से अवलंब ले सकता है । शनाख्त परेडों से सारभूत साक्ष्य का गठन नहीं होता है । शनाख्त परीक्षण परेड आयोजित करने में असफल रहने से न्यायालय में की गई शनाख्त का साक्ष्य अग्राह्य नहीं हो जाता है । ऐसी शनाख्त को दिए जाने वाला महत्व तथ्य अवधारण करने वाले न्यायालयों का विषय होना चाहिए । समुचित मामलों में ऐसे न्यायालय संपुष्टि के बिना भी शनाख्त के साक्ष्य को स्वीकार कर सकते हैं ।"

18. अभि. सा. 11 ने अपनी याद को ताजा करके स्वयं न्यायालय में सभी तीनों अभियुक्तों की उन व्यक्तियों के रूप में शनाख्त की थी, जो उस समय आए थे जब यह साक्षी जॉन बोस्को के साथ अपनी कार की धुलाई कर रहा था और यह भी कि उसने उस दिन उन सभी को ओमनी वैन में बैठते हुए देखा था तथा इस आशय का उसका परिसाक्ष्य, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उक्त साक्षी की अपीलार्थियों के प्रति कोई दुश्मनी नहीं थी और वह एक स्वतंत्र साक्षी है, प्रतिपरीक्षा के दौरान भी अविकल रहा । जब एक बार अभि. सा. 11 का परिसाक्ष्य सिद्ध हो गया है और पूरी तरह विश्वासोत्पादक है, तो यह बात पूरी तरह सिद्ध हो जाती है कि अभियुक्त ही वे व्यक्ति थे जिन्हें अंतिम बार मृतकों के साथ देखा गया था, विशिष्ट रूप से ऐसी परिस्थितियों में जब अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि वे अभियुक्तों से अलग हो गए थे और तब से लेकर मृतकों की गतिविधि का पता नहीं चल सका था और बाद में उनके शव बरामद हुए थे । यह एक स्थिर विधिक स्थिति है कि विधि में यह उपधारणा की जाती है कि उस व्यक्ति ने ही मृतक की हत्या की होगी, जिसे अंतिम बार मृतक के साथ देखा गया था और यह साबित करके कि वे मृतक से अलग हो गए थे, इस उपधारणा का खंडन करने का भार अभियुक्त पर होता है । निस्संदेह, परिस्थितियों की श्रृंखला में अंतिम बार देखे जाने का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण घटना होती है जिससे अभियुक्त की दोषिता पूर्णतः सिद्ध हो जाती है और/या कुछ निश्चितता के साथ उसकी दोषिता को इंगित कर सकती है । तथापि, केवल इस साक्ष्य से अभियुक्त

की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करने वाले भार का निर्वहन नहीं हो सकता है और इसकी संपुष्टि होना आवश्यक है ।

19. अपीलार्थी-अभियुक्तों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी-अभियुक्तों द्वारा किए गए कथन पूर्ववर्ती कथन हैं जो पुलिस के समक्ष किए गए थे और इसलिए अपीलार्थी-अभियुक्त तथा अभियोजन पक्ष दोनों ही उनका अवलंब नहीं ले सकते हैं । ऐसी वस्तुस्थिति में, **सेल्वी और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का यहां उल्लेख करना प्रासंगिक है, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "133. हमने पहले ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 की भाषा को निर्दिष्ट किया है, जिसमें ऐसे अभियुक्त तथा संदिग्ध व्यक्तियों और साक्षियों की संरक्षा की गई है, जिनकी किसी दांडिक मामले में अन्वेषण के दौरान परीक्षा की जाती है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162, 163 और 164 को भी निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा, जिनमें व्यक्तियों द्वारा अन्वेषण के दौरान किए गए कथनों के संबंध में प्रक्रियात्मक रक्षोपाय अधिकथित किए गए हैं । तथापि, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में 'पश्चात्वर्ती तथ्यों द्वारा पुष्टि के सिद्धांत' को सम्मिलित किया गया है, अर्थात् अभिरक्षा में किए गए कथन इस सीमा तक ग्राह्य हैं कि उन्हें बाद में पता चले तथ्यों द्वारा साबित किया जा सकता है । यह पूरी तरह संभव है कि स्वतंत्र साधनों द्वारा सुसंगत तथ्यों का प्रकटीकरण होने के बजाय अभिरक्षा में किए गए कथनों की अंतर्वस्तु से सीधे तौर पर उनका पश्चात्वर्ती प्रकटीकरण हो सकता है । अतः, ऐसे कथनों को उन कथनों के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है जो एक सफल अभियोजन के लिए आवश्यक 'साक्ष्य की श्रृंखला' में एक कड़ी प्रस्तुत करते हैं । यह उपबंध निम्न प्रकार से है –
>
>> '27. अभियुक्त से प्राप्त जानकारी में से कितनी साबित की जा सकेगी– परंतु जब किसी तथ्य के बारे में यह अभिसाक्ष्य दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति से, जो पुलिस आफिसर की अभिरक्षा में हो, प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप उसका पता चला है, तब ऐसी जानकारी में से उतनी, चाहे वह संस्वीकृति की कोटि में आती हो या नहीं,

---

[1] (2010) 7 एस. सी. सी. 263.

जितनी एतद्द्वारा पता चले तथ्य में स्पष्टतया संबंधित है, साबित की जा सकेगी ।'

134. यह उपबंध अभिरक्षा में किए गए कथनों का घटनाओं के मामूली अनुक्रम में व्युत्पन्नी उपयोग करने की अनुज्ञा देता है । भारतीय विधि में, ऐसी कोई स्वयमेव उपधारणा नहीं है कि अभिरक्षा में जो कथन किए गए हों वे मजबूर करके ही करवाए गए हों । संक्षेप में, यहां मिरांडा वार्निंग एडमिनिस्ट्रेशन के सदृश्य अतिरिक्त तत्परता बरतने की आवश्यकता नहीं है । तथापि, परिस्थितियों को देखते हुए जहां यह दर्शित किया जाता है कि किसी व्यक्ति को वास्तव में अभिरक्षा में रहते हुए कथन करने के लिए बाध्य किया गया था, वहां ऐसे परिसाक्ष्य का अवलंब लेने तथा इसके व्युत्पन्नी उपयोग से अनुच्छेद 20(3) का उल्लंघन होगा ।"

20. इस दृष्टि से, किसी अभियुक्त व्यक्ति द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को दी गई जानकारी के परिणामस्वरूप किसी ऐसे तथ्य का पता चलता है जिसे अपराध में फंसाने वाला साबित किया जा सकता है या नहीं, उसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन ग्राह्य बनाया गया है । इसके अतिरिक्त, **सेल्वी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :-

"264. इन निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि किसी भी व्यक्ति को, चाहे दांडिक मामले में अन्वेषण के संदर्भ में या अन्यथा, बलपूर्वक प्रश्नगत किसी भी तकनीक का शिकार नहीं बनाया जाना चाहिए । ऐसा करना दैहिक स्वतंत्रता में अनुचित हस्तक्षेप की कोटि में आएगा । तथापि, हम आक्षेपित तकनीकियों को दांडिक न्याय के संदर्भ में स्वेच्छा से लागू करने के लिए जगह छोड़ते हैं, बशर्ते कतिपय रक्षोपाय किए गए हों । यहां तक कि जब व्यक्ति ने इन परीक्षणों में से किसी परीक्षण से गुजरने की सम्मति दी है, तब भी परीक्षण के परिणामों को स्वयमेव साक्ष्य के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता है क्योंकि परीक्षण लागू करने के दौरान व्यक्ति उत्तरों पर संज्ञापूर्ण नियंत्रण का प्रयोग नहीं करता है । तथापि, ऐसी कोई जानकारी या सामग्री, जिसका स्वेच्छा से लागू किए गए परीक्षण की सहायता से पश्चात्‌वर्ती पता चला है, तो उसके परिणामों को साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अनुसार ग्रहण किया जा सकता है ।"

21. **मधु बनाम केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के आदेश पर चर्चा करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "49. अपवाद के रूप में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 में यह उपबंधित है कि अभियुक्त द्वारा पुलिस अधिकारी को या जब अभियुक्त पुलिस अभिरक्षा में है तब किए गए किसी संस्वीकृति कथन को, यदि उस कथन के परिणामस्वरूप किसी अज्ञात तथ्य का पता चलता है, उसके विरुद्ध साबित किया जा सकता है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 का तर्क-आधार यह है कि पुलिस प्रपीड़न या डराकर कोई संस्वीकृति उपाप्त कर सकती है । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन परिकल्पित अपवाद केवल तब लागू होता है यदि संस्वीकृति कथन के परिणामस्वरूप किसी नए तथ्य का पता चला है । पूर्वोक्त धारा 27 द्वारा परिकल्पित अपवाद के अधीन सुसंगतता सीमित है '... जितनी एतद्द्वारा पता चले तथ्य में स्पष्टतया संबंधित है.....' । साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के पीछे का तर्क-आधार यह है कि प्रश्नगत तथ्य अज्ञात रहे होते यदि अभियुक्त द्वारा उनका प्रकटन न किया गया होता । अतः, तथ्यों का पता चलना ही संस्वीकृति कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है । और चूंकि सत्य ही तो है जिसकी खोज करने का न्यायालय को अवश्य प्रयास करना चाहिए, इसीलिए पूर्वोक्त धारा 27 साक्ष्य अधिनियम की धारा 25 और 26 में अंतर्विष्ट आदेश के अपवाद के रूप में सम्मिलित की गई है ।"

22. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 केवल तब लागू होती है यदि संस्वीकृति कथन के परिणामस्वरूप किसी नए तथ्य का पता चला है । इसकी सुसंगतता जितनी एतद्द्वारा पता चले तथ्य में स्पष्टतया संबंधित है तक सीमित है । प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त सं. 3 के बताने पर जो याशिका कैमरा बरामद किया गया था, मृतक के पिता तथा माता द्वारा उसकी शनाख्त नहीं की गई थी । वस्तुतः, अभियोजन पक्ष यह साबित करने में असमर्थ रहा है कि कैमरा वास्तव में मृतक-जॉन बोस्को का ही था । यद्यपि मोबाइल फोन अभियुक्त सं. 1 से बरामद हुआ था, किंतु अभिलेख पर इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि सैल फोन मृतक-जॉन बोस्को का था या अभि. सा. 8 का था, क्योंकि यह फोन

---

[1] (2012) 2 एस. सी. सी. 399.

उनके नाम से नहीं खरीदा गया था । इसके अतिरिक्त, अभियोजन पक्ष उस व्यक्ति की परीक्षा करने में असफल रहा, जिसके नाम से सैल फोन खरीदा गया था, जिससे यह दर्शित हो सके कि यह मूल रूप से अभि. सा. 8 का था और अभि. सा. 8 का यह मत साबित हो सके कि उसने फोन खरीदा था और इसे मृतक-जॉन बोस्को को दिया था । इसके अतिरिक्त, तात्विक वस्तुएं, अर्थात् नोकिया फोन और मोटरसाइकिल का मामले से कोई सरोकार ही नहीं है । नोकिया फोन अभियुक्त सं. 1 से बरामद किया गया था और यह पक्षकथन नहीं है कि इसे अपराध कारित करने में प्रयुक्त किया गया था और इसी प्रकार जो मोटरसाइकिल बरामद की गई थी वह अभियुक्त सं. 3 के पिता की थी तथा अभियोजन पक्ष द्वारा ऐसा कोई साक्ष्य पेश या प्रस्तुत नहीं किया गया है कि इन वस्तुओं का मामले से कैसे सरोकार है । वास्तव में, साक्षियों में से किसी ने भी कैमरे की शनाख्त नहीं की थी या सामान जॉन बोस्को का होने की बात कही थी । धारा 27 में अंतर्विष्ट आदेश के बावजूद उक्त कथन अग्राह्य हैं और इसका एकमात्र कारण यह है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि इनके परिणामस्वरूप किसी नए तथ्य का पता चला था । पुलिस ने जिन तात्विक वस्तुओं को अभियुक्तों से बरामद किए जाने का दावा किया है, वे पुलिस द्वारा गढ़ी गई हो सकती हैं । अतः, अपराध और बरामद की गई वस्तुओं के बीच किसी संयोजक कड़ी के अभाव में, अभियुक्तों की प्रेरणा पर की गई बरामदगी का मामले के तथ्यों के आधार पर कोई तात्विक संबंध नहीं है ।

23. यह विधि सुस्थिर है कि अपराध में फंसाने वाली प्रत्येक परिस्थिति को विश्वसनीय और सटीक साक्ष्य द्वारा स्पष्ट रूप से अवश्य सिद्ध किया जाना चाहिए और इस प्रकार साबित की गई परिस्थितियों से घटनाओं की अवश्य एक ऐसी श्रृंखला बननी चाहिए जिससे अभियुक्त की दोषिता के बारे में एकमात्र अप्रतिरोध्य निष्कर्ष सुरक्षित रूप से निकाला जा सके और दोषिता के विरुद्ध कोई अन्य परिकल्पना संभव न हो । पारिस्थितिक साक्ष्य पर अत्यधिक रूप से निर्भर मामले में सदैव यह खतरा रहता है कि अटकलबाजी या संदेह विधिक सबूत का स्थान ले सकते हैं । न्यायालय को अवश्य अपना यह समाधान कर लेना चाहिए कि घटनाओं की श्रृंखला में की विभिन्न परिस्थितियां अवश्य ऐसी होनी चाहिएं कि अभियुक्त की निर्दोषिता की युक्तियुक्त संभावना को नकारा जा सके । जब महत्वपूर्ण कड़ी गायब होती है, तो परिस्थितियों की श्रृंखला चटाख से टूट जाती है और अन्य परिस्थितियां, किसी रीति में, अभियुक्त की दोषिता को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध नहीं कर सकती हैं । न्यायालय को सतर्क

रहना चाहिए और संदेह को विधिक सबूत का स्थान लेने के खतरे से बचना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी यह अनजाने में नैतिक निश्चितता और विधिक सबूत के बीच जल्दबाजी में उठाया गया कदम हो सकता है । "सत्य हो सकता है" और "अवश्य सत्य होना चाहिए" के बीच बहुत लंबी मानसिक दूरी है और ये बातें अटकलबाजियों को निश्चित निष्कर्षों से पृथक् करती हैं । न्यायालय विधि के स्थिर सिद्धांतों और इस न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चयों द्वारा दी गई इस चेतावनी से पूरी तरह सचेत है कि इस मामले जैसे किसी मामले में, जहां अभियोजन पारिस्थितिक साक्ष्य पर निर्भर है, वहां अभियोजन पक्ष को सभी आवश्यक परिस्थितियों को अवश्य प्रस्तुत और साबित करना चाहिए जिससे एक अटूट पूर्ण शृंखला बनती हो और इस परिकल्पना को इंगित करती हो कि अभियुक्त के सिवाए किसी अन्य व्यक्ति ने अपराध कारित नहीं किया था और इस मामले में अभियोजन पक्ष यह बात साबित करने मे असफल रहा है ।

निष्कर्ष

24. पूर्वगामी चर्चा को देखते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि दोनों निचले न्यायालयों ने कथन के उस भाग का अवलंब लेकर गलती की है जिसे ऐसी संस्वीकृति का नाम दिया जा सकता है जो पुलिस अधिकारी को उस समय किया गया था जब वे अभिरक्षा में थे और इससे साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 26 का अतिक्रमण होगा और कथन का केवल वह भाग अनुज्ञेय होगा जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न सामग्री की बरामदगी हुई थी । अतः, अपीलार्थी-अभियुक्तों के विरुद्ध किसी अन्य तात्विक साक्ष्य के अभाव में, उन्हें मृतकों के साथ अंतिम बार देखे जाने के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

25. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 23 नवम्बर, 2009 को पारित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है । ये अपीलें मंजूर की जाती हैं । अपीलार्थी, जो अभिरक्षा में हैं, यदि उनकी किसी अन्य दांडिक मामले में आवश्यकता नहीं है तो उन्हें तुरंत रिहा कर दिया जाए ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

मोहम्मद अली

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

16 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अब्दुल नज़ीर

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14) – धारा 25ख और 25च – छंटनी के लिए पुरोभाव्य शर्तें – एक वर्ष की निरन्तर सेवा – यदि किसी कर्मकार ने अपनी सेवोन्मुक्ति से ठीक पूर्ववर्ती वर्ष में निरन्तर 240 दिनों से कम कार्य किया है तो वह धारा 25च का फायदा लेने का हकदार नहीं होगा भले ही उसने इससे पूर्व कतिपय वर्षों के दौरान एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिनों से अधिक कार्य किया हो ।

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी ने वर्ष 1980 के दौरान एग्रीकल्चर सीड मल्टीप्लाइकेशन फार्म भागनी, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश में मस्टर रोल पर आकस्मिक मजदूर के रूप में नियोजित था । उसने विभिन्न संकर्म स्कीमों, अर्थात् रबी और खरीफ के अधीन वर्ष 1991 तक इस रूप में कार्य किया और वर्ष 1980, 1981, 1982 और 1986 से 1989 के दौरान एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे किए थे । प्रत्यर्थियों का यह पक्षकथन है कि अपीलार्थी ने नियोजन की अवधि के दौरान निम्न प्रकार कार्य किया था :–

क्रम सं.	वर्ष	कार्य करने के दिन
1.	1980	299
2.	1981	297.5
3.	1982	289.5
4.	1983	126
5.	1984	4.5
6.	1985	227
7.	1986	292
8.	1987	284.5

9.	1988	282
10.	1989	258
11.	1990	195
12.	1991	19.5

प्रत्यर्थियों का यह पक्षकथन भी है कि इसके पश्चात् उसने सीड मल्टीप्लाइकेशन फार्म भागनी के भारसाधक को सूचित किए बिना कार्य छोड़ दिया और काम पर कभी वापस नहीं आया । वर्ष 2005 में, इस अपीलार्थी ने राज्य सरकार को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 10 के अधीन निर्देश करने के लिए अभ्यावेदन किया । राज्य सरकार ने अपीलार्थी द्वारा किए गए अभ्यावेदन के अनुसरण में, औद्योगिक अधिकरण-सह-श्रम न्यायालय को निर्देश किया । विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश ने, अपीलार्थी के पक्ष में अधिनिर्णय दिया और अपीलार्थी को पिछली मजदूरी से इनकार करते हुए प्रत्यर्थी-राज्य को उसे ज्येष्ठता और निरन्तरता सहित सेवा में बहाल करने का निदेश दिया । प्रत्यर्थी-राज्य ने इससे व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका मंजूर कर ली और अधिकरण के अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया । अपीलार्थी ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष लैटर्स पेटेंट अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के विनिश्चय को कायम रखते हुए, लैटर्स पेटेंट अपील खारिज कर दी । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सुज्ञात तथ्य है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम एक कल्याणकारी विधान है । इस अधिनियम के अधिनियमन के पीछे आशय कर्मचारियों को मनमानी छंटनी से संरक्षित करना था । मात्र इस कारणवश, ऐसे किसी कर्मचारी की छंटनी की दशा में, जिसने एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए कार्य किया है, धारा 25च में कर्मचारी को छंटनी के कारण उपदर्शित करते हुए एक मास की पूर्व सूचना दिए जाने के रूप में एक सुरक्षोपाय का उपबंध किया गया है और उसमें सूचना की अवधि के लिए मजदूरी का भी उपबंध किया गया है । अधिनियम की धारा 25ख में

यह उपबंधित है कि किसी व्यक्ति के बारे में कब यह कहा जा सकता है कि उसने एक वर्ष के लिए कार्य किया है और उक्त उपबंधों के पठन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसी व्यक्ति ने पिछले पूर्व वर्ष में 240 दिन की अवधि के लिए कार्य किया है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने एक वर्ष के लिए कार्य किया है । निरन्तर सेवा के लिए 240 दिन का सिद्धांत यह है कि किसी कर्मकार को एक वर्ष की अवधि के लिए निरन्तर सेवा में समझा जाता है यदि उसने छंटनी की तारीख से पूर्व के बारह कैलेंडर मास की कालावधि के दौरान 240 से अन्यून दिन नियोजन के लिए वास्तव में काम किया है । (पैरा 9)

यह एक स्वीकृत स्थिति है कि यद्यपि अपीलार्थी ने भिन्न-भिन्न संकर्मों/स्कीमों, अर्थात् रबी और खरीफ के अधीन वर्ष 1991 तक इस रूप में कार्य किया था और उसने केवल 1980, 1981, 1982 और 1986 से 1989 तक के वर्षों के दौरान एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे किए थे किन्तु उसने वर्ष 1990 में केवल 195 दिनों और अपनी सेवोन्मुक्ति के ठीक पूर्ववर्ती वर्ष में 19.5 दिनों के लिए कार्य किया जो कि सेवोन्मुक्ति की तारीख से पूर्व के 12 कैलेंडर मासों की अवधि में 240 दिनों तक कार्य करने की अपेक्षा से कम है, इसलिए वह अधिनियम की धारा 25च के उपबंधों का फायदा लेने के लिए हकदार नहीं है तथा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने प्रस्तुत अपीलार्थी की अपील खारिज करके सही किया था । (पैरा 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1982]	[1982] 2 उम. नि. प. 8 = (1981) 3 एस. सी. सी. 225 : **मोहन लाल** बनाम **मैसर्स भारत इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड का प्रबंधतंत्र ;**	11
[1981]	[1981] 3 उम. नि. प. 996 = (1980) 4 एस. सी. सी. 443 : **सुरेन्द्र कुमार वर्मा और अन्य** बनाम **केन्द्रीय सरकार, औद्योगिक अधिकरण एवं श्रम न्यायालय, नई दिल्ली और एक अन्य ।**	10

सिविल अपीली अधिकारिता : 2018 की सिविल अपील सं. 3803.

2011 की लैटर्स पेटेंट अपील सं. 209 में हिमाचल प्रदेश उच्च

न्यायालय की शिमला न्यायपीठ के तारीख 18 नवम्बर, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री एम. सी. ढींगरा, अश्विन कुमार गुप्ता, गौरव ढींगरा और पीयुष कांत राय

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री डी. के. ठाकुर, अपर महाधिवक्ता और वीरेन्द्र कुमार शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – इजाजत दी जाती है ।

2. प्रस्तुत अपील 2011 की लैटर्स पेटेंट अपील सं. 209 में हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय की शिमला न्यायपीठ की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित तारीख 18 नवम्बर, 2014 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने इस मामले में के अपीलार्थी द्वारा 2009 की सिविल रिट याचिका सं. 3761 में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 7 जुलाई, 2010 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील खारिज कर दी थी ।

3. **संक्षिप्त तथ्य** :–

(क) मोहम्मद अली, जो कि इस मामले में अपीलार्थी है, वर्ष 1980 के दौरान एग्रीकल्चर सीड मल्टीप्लाइकेशन फार्म भागनी, जिला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश में मस्टर रोल पर आकस्मिक मजदूर के रूप में नियोजित था । उसने विभिन्न संकर्म स्कीमों, अर्थात् रबी और खरीफ के अधीन वर्ष 1991 तक इस रूप में कार्य किया और वर्ष 1980, 1981, 1982 और 1986 से 1989 के दौरान एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे किए थे ।

(ख) प्रत्यर्थियों का यह पक्षकथन है कि अपीलार्थी ने नियोजन की अवधि के दौरान निम्न प्रकार कार्य किया था :–

क्रम सं.	वर्ष	कार्य करने के दिन
1.	1980	299
2.	1981	297.5
3.	1982	289.5
4.	1983	126

5.	1984	4.5
6.	1985	227
7.	1986	292
8.	1987	284.5
9.	1988	282
10.	1989	258
11.	1990	195
12.	1991	19.5

प्रत्यर्थियों का यह पक्षकथन भी है कि इसके पश्चात् उसने सीड मल्टीप्लाइकेशन फार्म भागनी के भारसाधक को सूचित किए बिना कार्य छोड़ दिया और काम पर कभी वापस नहीं आया ।

(ग) वर्ष 2005 में, इस मामले में के अपीलार्थी ने राज्य सरकार को औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 10 के अधीन निर्देश करने के लिए अभ्यावेदन किया । राज्य सरकार ने, प्रस्तुत मामले में के अपीलार्थी द्वारा किए गए अभ्यावेदन के अनुसरण में, औद्योगिक अधिकरण-सह-श्रम न्यायालय शिमला को 2005 का निर्देश सं. 9 किया ।

(घ) विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश ने, इस मामले में के अपीलार्थी के पक्ष में तारीख 23 अप्रैल, 2009 का अधिनिर्णय दिया और अपीलार्थी को पिछली मजदूरी से इनकार करते हुए प्रत्यर्थी-राज्य को उसे ज्येष्ठता और निरन्तरता सहित सेवा में बहाल करने का निदेश दिया ।

(ङ) प्रत्यर्थी-राज्य ने इससे व्यथित होकर उच्च न्यायालय की शिमला न्यायपीठ के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की, जो कि 2009 की सिविल रिट याचिका सं. 3761 है । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 7 जुलाई, 2010 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका मंजूर कर ली और तारीख 23 अप्रैल, 2009 के अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया ।

(च) अपीलार्थी ने विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष लैटर्स पेटेंट अपील फाइल की ।

उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 18 नवम्बर, 2014 के निर्णय और आदेश द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के विनिश्चय को कायम रखते हुए, लैटर्स पेटेंट अपील खारिज कर दी ।

(छ) उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है ।

4. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री एम. सी. ढींगरा और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री डी. के. ठाकुर को सुना गया और अभिलेख का परिशीलन किया गया ।

विचारार्थ मुद्दे

5. प्रस्तुत मामले में जो संक्षिप्त प्रश्न विचारार्थ उद्‌भूत होता है वह यह है कि क्या वर्तमान मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप करने की अपेक्षा है ।

परस्पर-विरोधी दलीलों

6. प्रारंभ में, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि अपीलार्थी की सेवोन्मुक्ति से अधिनियम की धारा 25ख के साथ पठित धारा 25च के उपबंधों का अतिक्रमण होता है । विद्वान् काउन्सेल ने इसके अलावा यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 25च के साथ धारा 25ख का गलत निर्वचन किया । इसके अलावा, यह दलील दी गई थी कि यह आवश्यक नहीं है किसी कर्मकार ने अपने हटाए जाने से ठीक पूर्व वाली 12 मास की अवधि के दौरान 240 दिन पूरे किए हों । इसके विपरीत, उसने यह तर्क दिया कि चूंकि अपीलार्थी ने अपने नियोजन के किसी कैलेंडर वर्ष में 240 दिन की सेवा पूरी कर ली है इसलिए वह अधिनियम की धारा 25च के उपबंधों के फायदे के लिए हकदार बन जाता है ।

7. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि इस मामले में के अपीलार्थी की सेवा से छंटनी नहीं की गई थी बल्कि अपीलार्थी ने स्वयं कार्य करना छोड़ दिया था । इसके अलावा, यह दलील दी गई थी कि इस मामले में के अपीलार्थी ने 12 (बारह) वर्ष से अधिक के विलंब के पश्चात् राज्य सरकार के समक्ष समावेदन किया जिसे प्रस्तुत अपीलार्थी द्वारा समुचित रूप से स्पष्ट नहीं

किया गया था । अतः, प्रस्तुत अपीलार्थी ने अपने कृत्य के प्रति उपेक्षा बरती थी और इस न्यायालय द्वारा इस मामले में किसी हस्तक्षेप की ईप्सा नहीं की गई थी ।

विचार-विमर्श

8. इस प्रक्रम पर, विवादगत विषय का मूल्यांकन करने की दृष्टि से अधिनियम की धारा 25च और धारा 25ख के सुसंगत प्रभाग को उद्धृत करना आवश्यक है, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

"25च. कर्मकारों की छंटनी के लिए पुरोभाव्य शर्तें – **किसी उद्योग में नियोजित किसी भी कर्मकार की, जो नियोजक के अधीन कम से कम एक वर्ष के लिए निरन्तर सेवा में रह चुका है, छंटनी उस नियोजक द्वारा तब के सिवाय नहीं की जाएगी, जबकि** –

(क) कर्मकार को एक महीने की ऐसी लिखित सूचना दे दी गई हो जिसमें छंटनी के कारण उपदर्शित किए गए हों और सूचना की कालावधि का अवसान हो गया हो, या ऐसी सूचना के बदले में कर्मकार को सूचना की कालावधि के लिए मजदूरी दे दी गई हो ;

(ख) कर्मकार को छंटनी के समय ऐसा प्रतिकर दे दिया गया हो जो निरन्तर सेवा के हर संपूरित वर्ष के लिए या छह मास से अधिक के उसके किसी भाग के लिए पन्द्रह दिन के औसत वेतन के बराबर हो, तथा

(ग) सूचना की तामील समुचित सरकार पर या ऐसे प्राधिकारी पर, जो शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा समुचित सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, विहित रीति से कर दी गई हो ।

25ख. निरन्तर सेवा सी परिभाषा – इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए, –

(1) यह बाद कि कर्मकार किसी कालावधि में निरन्तर सेवा में रह चुका है उस दशा में कही जाएगी जिसमें कि वह उस कालावधि अविच्छिन्न सेवा में रहे, जिसके अंतर्गत वह सेवा आती है जो रूग्णता या प्राधिकृत छुट्टी या दुर्घटना या ऐसी हड़ताल के कारण जो अवैध न हो या तालाबन्दी या काम के ऐसे बन्द हो जाने के कारण, जो कर्मकार के किसी कसूर की वजह से न हो, विच्छिन्न हो गई है ;

(2) जहां कि कर्मकार एक वर्ष या छह मास की कालावधि के

लिए खंड (1) के अर्थ के अन्दर निरन्तर सेवा में नहीं रहा है, वहां –

(क) यदि उसने, उस तारीख से, जिसके प्रति निर्देश से गणना की जानी है, पूर्व के बारह कैलेंडर मास की कालावधि के दौरान –

(i) ऐसे कर्मकार की दशा में, जो खान में भूमि के नीचे नियोजित है, एक सौ नब्बे से, तथा

(ii) किसी अन्य दशा में, दो सौ चालीस से,

अन्यून दिन, किसी नियोजक के अधीन वास्तव में काम किया है तो यह समझा जाएगा कि वह छह मास की कालावधि के लिए, उस नियोजन के अधीन निरन्तर सेवा में रह चुका है ;

(ख) यदि उसने उस तारीख से, जिसके प्रति निर्देश से गणना की जानी है, पूर्व के छह कैलेंडर मास की कालावधि के दौरान –

(i) ऐसे कर्मकार की दशा में, जो खान में भूमि के नीचे नियोजित है, पचानवे से, तथा

(ii) किसी अन्य दशा में, एक सौ बीस से,

अन्यून दिन, किसी नियोजक के अधीन वास्तव में काम किया है तो यह समझा जाएगा कि वह छह मास की कालावधि के लिए, उस नियोजन के अधीन निरन्तर सेवा में रह चुका है ।

स्पष्टीकरण – खंड (2) के प्रयोजनों के लिए, उन दिनों की, जिनको कर्मकार ने नियोजक के अधीन वास्तव में काम किया है, संख्या में वे दिन भी सम्मिलित होंगे, जिनको –

(i) उसकी किसी करार के अधीन या औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 (1946 का 20) के अधीन बनाए गए स्थायी आदेशों द्वारा या इस अधिनियम के अधीन या उस औद्योगिक स्थापन को लागू किसी अन्य विधि के अधीन यथा-अनुज्ञात कामबन्दी की गई है ;

(ii) वह पूर्व वर्षों उपार्जित पूरी मजदूरी वाली छुट्टी पर रहा है ;

(iii) वह अपने नियोजन से और उसके अनुक्रम में, उद्भूत दुर्घटना द्वारा कारित अस्थायी निःशक्तता के कारण अनुपस्थित रहा है ; तथा

(iv) नारी की दशा में, वह प्रसूति छुट्टी पर रही है, किन्तु ये

दिन ऐसे सम्मिलित होंगे कि ऐसी प्रसूति छुट्टी की कुल कालावधि बारह सप्ताह से अधिक न हो ।"

9. यह सुज्ञात तथ्य है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम एक कल्याणकारी विधान है । इस अधिनियम के अधिनियमन के पीछे आशय कर्मचारियों को मनमानी छंटनी से संरक्षित करना था । मात्र इस कारणवश, ऐसे किसी कर्मचारी की छंटनी की दशा में, जिसने एक वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए कार्य किया है, धारा 25च में कर्मचारी को छंटनी के कारण उपदर्शित करते हुए एक मास की पूर्व सूचना दिए जाने के रूप में एक सुरक्षोपाय का उपबंध किया गया है और उसमें सूचना की अवधि के लिए मजदूरी का भी उपबंध किया गया है । अधिनियम की धारा 25ख में यह उपबंधित है कि किसी व्यक्ति के बारे में कब यह कहा जा सकता है कि उसने एक वर्ष के लिए कार्य किया है और उक्त उपबंधों के पठन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि यदि किसी व्यक्ति ने पिछले पूर्व वर्ष में 240 दिन की अवधि के लिए कार्य किया है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने एक वर्ष के लिए कार्य किया है । निरन्तर सेवा के लिए 240 दिन का सिद्धांत यह है कि किसी कर्मकार को एक वर्ष की अवधि के लिए निरन्तर सेवा में समझा जाता है यदि उसने छंटनी की तारीख से पूर्व के बारह कैलेंडर मास की कालावधि के दौरान 240 से अन्यून दिन नियोजन के लिए वास्तव में काम किया है ।

10. **सुरेन्द्र कुमार वर्मा और अन्य** बनाम **केन्द्रीय सरकार, औद्योगिक अधिकरण एवं श्रम न्यायालय, नई दिल्ली और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अधिनियम की धारा 25ख के अधीन यथा-अनुध्यात 240 दिन के सिद्धांत पर अत्यंत सुस्पष्ट रूप से विचार किया । उक्त निर्णय के सुसंगत पैराओं को इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> 8. .... यह उपबंध काफी स्पष्ट प्रतीत होता है । धारा 25च में यह अपेक्षा की गई है कि उस उपबंध के लागू होने के पूर्व कर्मकार को नियोजक के अधीन एक वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए सेवा में होनी चाहिए । ऐसा होने पर भी धारा 25ख(2), जैसी कि वह अब है, लागू हो जाती है और उसमें यह कथित किया गया है कि यदि कोई कर्मकार एक वर्ष की कालावधि के लिए किसी नियोजक के अधीन निरन्तर सेवा में न भी हो, तो उसके बारे में यह

[1] [1981] 3 उम. नि. प. 996 = (1980) 4 एस. सी. सी. 443.

समझा जाएगा कि वह एक वर्ष की कालावधि के लिए उस नियोजक के अधीन सेवा में रह चुका है, यदि उसने वास्तव में पूर्ववर्ती बारह मासों के दौरान उस नियोजक के अधीन दो सौ चालीस दिनों के लिए काम किया हो । यह अनुबंधित नहीं है उसे बारह मास की संपूर्ण कालावधि के लिए नियोजक के अधीन नियोजन या सेवा में होना चाहिए । वस्तुतः, उपबंध का सार यह है कि यह जरूरी नहीं है कि वह बारह मास की संपूर्ण अवधि में ऐसी सेवा में हो । किसी अन्य स्रोत से कोई निर्वचन किए बिना यही स्पष्ट अर्थ प्रतीत होता है ।

9. अब, धारा 25ख सदैव ही इस प्रकार नहीं थी । 1964 के अधिनियम 36 के पूर्व वह इस प्रकार थी –

> "धारा 25च और 25चच के प्रयोजनों के लिए किसी ऐसे कर्मकार के बारे में जिसने कि बारह कैलेंडर मासों की अवधि के दौरान किसी उद्योग में दो सौ चालीस दिनों से अन्यून अवधि के लिए वास्तव में कार्य किया हो यह समझा जाएगा कि उसने उस उद्योग में एक वर्ष की निरन्तर सेवा पूरी कर ली है ।
>
> **स्पष्टीकरण** – ...."

पुरानी धारा 25ख और वर्तमान धारा 25ख के बीच का अंतर स्पष्ट है । जितनी महत्वपूर्ण यह बात है कि वर्तमान धारा 25ख(2) "जहां कि कर्मकार एक वर्ष.... की कालावधि के लिए निरन्तर सेवा में नहीं रहा है" पद से प्रारंभ होती है, उतनी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरानी धारा 25ख में यह पद प्रयुक्त नहीं किया गया था । इस परिस्थिति का भी इतना ही महत्व है कि 1964 के अधिनियम 36 से पूर्व "निरन्तर सेवा" पद धारा 2(डडड) द्वारा पृथक् रूप से परिभाषित किया गया था, जो कि इस प्रकार थी –

> "(डडड) निरन्तर सेवा से अविच्छिन्न सेवा अभिप्रेत है जिसके अंतर्गत वह सेवा आती है जो रूग्णता या प्राधिकृत छुट्टी या दुर्घटना या ऐसी हड़ताल के कारण जो अवैध न हो या तालाबन्दी या काम के ऐसे बन्द हो जाने के कारण, जो कर्मकार के किसी कसूर की वजह से न हो, विच्छिन्न हो गई है ।"

धारा 2(डडड) का 1964 के उसी अधिनियम द्वारा लोप कर दिया गया था जिसके द्वारा धारा 25ख संशोधित की गई थी । धारा 25ख

का, जैसी कि वह 1964 के अधिनियम 36 के पूर्व थी, तत्समय विद्यमान धारा 2(डडड) को ध्यान में रखते हुए निश्चित रूप से यह अर्थान्वयन किया जा सकता था कि किसी कर्मकार को एक वर्ष की अवधि के लिए नियोजक की सेवा में होना चाहिए था और धारा 25च के लागू होने के लिए यह आवश्यक था कि उसने एक वर्ष की संपूरित सेवा का दावा करने के पूर्व 240 दिनों से अन्यून अवधि तक कार्य कर लिया हो । इस न्यायालय ने सर इनेमल एंड स्टैपिंग वर्क्स लिमिटेड **बनाम** उनके कर्मकार [1964] 3 एस. सी. आर. 616 के मामले में ठीक यही विनिश्चय दिया था । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था –

> "इस धारा (धारा 25च) के स्पष्ट शब्दों को देखने से ही यह प्रतीत होता है कि केवल वही कर्मकार जिसने नियोजक के अधीन एक वर्ष से अन्यून निरन्तर सेवा की हो, उसके फायदे का हकदार हो सकता है । निरन्तर सेवा धारा 2(डडड) में इस रूप में परिभाषित की गई है कि इससे अविच्छिन्न सेवा अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत वह सेवा भी है जो केवल रूग्णता या प्राधिकृत छुट्टी या दुर्घटना या ऐसी हड़ताल के कारण जो अवैध न हो या तालाबन्दी या काम के ऐसे बन्द हो जाने के कारण जो कर्मकार के किसी कसूर की वजह से न हो, विच्छिन्न हो गई है । 'एक वर्ष' की निरन्तर सेवा से जो कुछ अभिप्रेत है वह धारा 25ख में परिभाषित किया गया है । इस धारा के अधीन जिस कर्मकार ने 12 कैलेंडर मासों की अवधि के दौरान किसी उद्योग में 240 दिनों से अन्यून की अवधि के लिए वास्तव में काम किया हो, उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने उस उद्योग में सेवा पूरी कर ली है । ... अतः यह स्थिति स्पष्ट है कि 11 कैलेंडर मासों से कम की अवधि के दौरान इन दो व्यक्तियों ने 240 दिनों से अधिक अवधि के लिए काम किया था । हमारे विचार में इस बात से धारा 25ख की अपेक्षा पूरी नहीं होती है । किसी व्यक्ति के बारे में यह समझे जाने के पूर्व कि उसने किसी उद्योग में एक वर्ष की निरन्तर सेवा पूरी कर ली है, सर्वप्रथम यह दर्शित किया जाना होगा कि वह 12 कैलेंडर मासों से अन्यून की अवधि के लिए नियोजित किया गया था और इसके पश्चात् यह कि उसने उन 12 कैलेंडर मासों के दौरान 240 दिन से अन्यून की अवधि के लिए

काम किया था । जहां पर, जैसा कि इस मामले में है, कर्मकार 12 कैलेंडर मासों की अवधि के लिए नियोजित ही न किए गए हों, वहां इस बात की जांच करना अनावश्यक बन जाता है कि क्या उनके वास्तविक काम के दिन 240 या उससे अधिक थे ।"

1964 के अधिनियम 36 द्वारा इस स्थिति में बहुत अधिक परिवर्तन कर दिया गया है । धारा 2(ङङङ) निरसित कर दी गई है और अब धारा 25ख(2) इस खंड से प्रारंभ होती है – "जहां कि कर्मकार एक वर्ष..... की कालावधि के लिए निरन्तर सेवा में नहीं रहा है ।" 1964 वाले अधिनियम 36 द्वारा किए गए ये परिवर्तन स्पष्ट रूप से यह उपबंध करने के लिए परिकल्पित प्रतीत होते हैं कि जिस कर्मकार ने किसी नियोजक के अधीन बारह मास की अवधि के दौरान दो से चासील दिनों से अन्यून अवधि के लिए वास्तव में काम किया हो, उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह एक वर्ष की कालावधि के लिए निरन्तर सेवा में था, चाहे वस्तुतः वह एक वर्ष की अवधि के लिए ऐसे निरन्तर सेवा में रहा हो या नहीं । यह बात पर्याप्त है कि उसने बारह मास की अवधि में दो सौ चालीस दिन काम किया है, यह जरूरी नहीं है कि वह नियोजक की सेवा में समूचे एक वर्ष के लिए रहा हो । अतः हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि उषा कुमारी और मधु बाला भी उसी स्थिति में हैं जिसमें कि अन्य अपीलार्थी हैं ।"

11. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय **मोहन लाल** बनाम **मैसर्स भारत इलैक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड का प्रबंधतंत्र**[1] वाले मामले में पैरा 10 और पैरा 12 में निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"10. बहरहाल, इस बात पर जोर दिया गया कि धारा 25च इस मामले में पूर्णतः भिन्न कारणों से लागू नहीं होती । श्री मार्कन्डेय की दलील थी कि धारा 25च का सहारा लेने से पहले अविधिमान्य छंटनी का परिवाद करने की किसी कर्मकार की पात्रता की शर्त अवश्य पूरी होनी चाहिए । उनके अनुसार जब तक कि कर्मकार ने कम से कम एक वर्ष लगातार सेवा न की हो तब तक उसके संबंध में धारा 25च लागू नहीं होगी ।......

12. उपधारा (2) में एक नितांत भिन्न स्थिति के लिए एक अन्य धारणात्मक कल्पितार्थ समाविष्ट है । इसमें ऐसी स्थिति की कल्पना

---

[1] [1982] 2 उम. नि. प. 8 = (1981) 3 एस. सी. सी. 225.

की गई है जिसमें कोई कर्मकार एक वर्ष या छह मास की अवधि के लिए उपधारा (1) के अर्थ में निरन्तर सेवा में नहीं रहा है, वहां उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह यथास्थिति एक वर्ष या छह मास की अवधि के लिए नियोजक के अधीन निरन्तर सेवा में रहा है यदि उस कर्मकार ने उस तारीख से जिसके निर्देश में गणना की जानी है, ठीक पूर्व के 12 कैलेंडर मास की अवधि के दौरान कम से कम 240 दिन उस नियोजक के अधीन वस्तुतः कार्य किया है । उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट तौर पर ऐसी स्थिति की कल्पना की गई है जहां कोई कर्मकार एक वर्ष या छह मास की अवधि के लिए उपधारा (1) में उपदर्शित धारणात्मक कल्पितार्थ के अनुसार निरन्तर सेवा में नहीं रहा है । ऐसी स्थिति में उसे एक वर्ष की अवधि के लिए निरन्तर सेवा में समझा जाता है यदि वह उपधारा (2) के खंड (क) में दी गई शर्तों को पूरा कर देता है । वे शर्तें हैं कि यदि उस तारीख से आरंभ करके जिसके निर्देश में संगणना की जानी है, जो कि छंटनी की दशा में छंटनी की तारीख है, ऐसी तारीख से ठीक पूर्व के 12 कैलेंडर मास की अवधि में कर्मकार 240 दिन की अवधि की सेवा कर चुका है तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि वह अध्याय 5क के प्रयोजनों के लिए एक वर्ष की अवधि के दौरान निरन्तर सेवा में रहा है । उपधारा (2)(क) के प्रयोजनों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि कर्मकार एक वर्ष की अवधि तक सेवा में रहा हो । यदि वह एक वर्ष की अवधि तक सेवा में रहा है और यदि वह सेवा उपधारा (1) के अर्थ में निरन्तर सेवा है तो उसकी स्थिति में उपधारा (1) लागू होगी और उसकी स्थिति का उपधारा (2) के अंतर्गत आना आवश्यक नहीं है । उपधारा (2) ऐसी स्थिति की परिकल्पना करती है जिसमें उपधारा (1) लागू नहीं होती । उपधारा (2) इस तथ्य के बावजूद कि किसी कर्मकार ने एक वर्ष की अवधि की अविच्छिन्न सेवा नहीं की है किन्तु उसने उससे पीछे की और तथा सुसंगत तारीख से जो कि छंटनी की तारीख है, ठीक पूर्व के 12 कैलेंडर मास के दौरान 240 दिन की सेवा की है, उसे एक वर्ष की अवधि तक निरन्तर सेवा में मानने के लिए एक कल्पितार्थ का उपबंध करती है । दूसरे शब्दों में, उपधारा (2)(क) में अधिनियमित धारणात्मक कल्पितार्थ का सहारा लेने के लिए सबसे पहले सुसंगत तारीख यानी सेवा के पर्यवसान की तारीख जिसके बारे में छंटनी के रूप में परिवाद किया गया है, अवधारित करना आवश्यक है । वह तारीख अभिनिश्चित करने के बाद पीछे की

और छंटनी की तारीख से ठीक पहले 12 मास की अवधि को देखिए और अभिनिश्चित कीजिए कि क्या 12 मास की अवधि के भीतर कर्मकार ने 240 दिन की सेवा की है । यदि उपधारा (2)(क) में अधिनियमित धारणात्मक कल्पितार्थ के अनुसरण में इन तीन तथ्यों का उत्तर कर्मकार के पक्ष में हां में मिल जाता है तो यह उपधारणा करनी होगी कि वह कर्मकार एक वर्ष की अवधि तक निरन्तर सेवा में रहा है और वह धारा 25च में अधिनियमित पात्रता की अर्हता पूरी करेगा । विशुद्ध रूप से व्याकरणिक अर्थान्वयन के आधार पर, यह दलील कि धारा 25ख की उपधारा (2) का सहारा लेने के लिए यह दिखाया जाए कि कर्मकार एक वर्ष की अवधि की निरन्तर सेवा में रहा है, उपधारा (2) को निरर्थक बना देगी और सामाजिक दृष्टि से लाभप्रद विधान को इस अननुज्ञेय उपधारणा से धक्का पहुंचेगा । यह धारणा पहले तो उपधारा (2) के विशुद्ध व्याकरणिक अर्थान्वयन के आधार पर अस्वीकार करनी होगी और यदि किसी दशा में ऐसा अर्थान्वयन किया जाए तो इसे इस आधार पर अस्वीकार करना होगा कि यह उपधारा (2) के निरर्थक बना देगी । उपधारा (2) की भाषा इतनी स्पष्ट और असंदिग्धार्थी है कि हमने जो निर्वचन इसका किया है, उसे न्यायोचित ठहराने के लिए कोई पूर्वोदाहरण आवश्यक नहीं है । .... ”

इस न्यायालय द्वारा अधिकथित पूर्वोक्त सिद्धांतों और उच्च न्यायालय के सुस्पष्ट निष्कर्षों को भी ध्यान में रखते हुए, इस मामले में के अपीलार्थी की दलील विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य नहीं है चूंकि अवधि के संगणना करने के संबंध में उपबंध बहुत स्पष्ट हैं ।

12. इसके अतिरिक्त, यह एक स्वीकृत स्थिति है कि यद्यपि अपीलार्थी ने भिन्न-भिन्न संकर्मों/स्कीमों, अर्थात् रबी और खरीफ के अधीन वर्ष 1991 तक इस रूप में कार्य किया था और उसने केवल 1980, 1981, 1982 और 1986 से 1989 तक के वर्षों के दौरान एक कैलेंडर वर्ष में 240 दिन पूरे किए थे किन्तु उसने वर्ष 1990 में केवल 195 दिनों और अपनी सेवोन्मुक्ति के ठीक पूर्ववर्ती वर्ष में 19.5 दिनों के लिए कार्य किया जो कि सेवोन्मुक्ति की तारीख से पूर्व के 12 कैलेंडर मासों की अवधि में 240 दिनों तक कार्य करने की अपेक्षा से कम है, इसलिए वह अधिनियम की धारा 25च के उपबंधों का फायदा लेने के लिए हकदार नहीं है तथा उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने प्रस्तुत अपीलार्थी की अपील खारिज करके सही किया था ।

13. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित विनिश्चय में हस्तक्षेप करने के लिए तत्पर नहीं हैं । अपील खारिज की जाती है और पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

ग्रो.

[2018] 3 उम. नि. प. 462

कविता चंद्रकांत लखानी

बनाम

महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य

24 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 366 – विवाह आदि करने को विवश करने के लिए स्त्री का अपहरण – अभियुक्त के विरुद्ध धारा 366 के अधीन अपराध को लागू करने के लिए स्त्री के मात्र अपहरण की बात को साबित करना ही पर्याप्त नहीं होगा, अपितु यह साबित करना भी आवश्यक है कि अभियुक्त द्वारा स्त्री का अपहरण उसके साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए विवश करने अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विवश या विलुब्ध करने के आशय से किया गया था ।

दंड संहिता, 1860 – धारा 366 – विवाह आदि करने को विवश करने के लिए स्त्री का अपहरण – अपहरण स्त्री की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक होना – जहां मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह दर्शित होता हो कि अपीलार्थी-अभियोक्त्री और प्रत्यर्थी-अभियुक्त के बीच प्रेम-संबंध थे और अभियुक्त उसे बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया तथा विवाह करने की बात को लेकर उसके साथ मारपीट की और अभियोक्त्री द्वारा दर्ज रिपोर्ट में मारपीट के अभिकथन करने के पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर उत्पीड़न और लज्जा भंग करने का अभिकथन सोच-विचार करने के पश्चात्‌ किया गया हो, वहां यह साबित न होने पर कि अभियुक्त-प्रत्यर्थी द्वारा अभियोक्त्री का अपहरण उसके साथ बलपूर्वक विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए विवश करने के आशय से किया

गया था, वहां धारा 366 के अधीन अपराध के लिए अभियुक्त को उन्मोचित करना उचित होगा ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, अपीलार्थी-अभियोक्त्री और प्रत्यर्थी सं. 2-अभियुक्त के बीच प्रेम-संबंध थे । वे तारीख 6 सितंबर, 2003 को रात्रि में अपने मित्रों के साथ एक जन्मदिन की पार्टी में थे । पार्टी समाप्त करने के पश्चात् प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने अपीलार्थी-अभियोक्त्री को रात्रि-भोजन (डिनर) के स्थल पर छोड़ देने के लिए कहा और वह उसे इस बहाने अपनी कार में अपने मकान पर ले गया । वहां पहुंचने के पश्चात् जब अपीलार्थी ने कार से बाहर आने के लिए मना किया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने बलपूर्वक उसे उठाया और अपने मकान में ले गया और बिस्तर पर पटक दिया और यह कहते हुए उसके साथ मारपीट करने लगा कि वह उसके साथ विवाह क्यों नहीं कर रही है । इस मारपीट के परिणामस्वरूप उसे क्षतियां पहुंचीं । अपीलार्थी-अभियोक्त्री द्वारा लगभग एक सप्ताह पश्चात् पुलिस थाने में प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । अपीलार्थी-अभियोक्त्री द्वारा पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर एक अनुपूरक कथन किया गया कि प्रत्यर्थी द्वारा उसका उत्पीड़न भी किया गया था और उसकी लज्जा भंग करने के लिए उसके गुप्तांगों पर अनुचित रूप से स्पर्श किया गया था । मामले में अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, मुंबई के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 342, 324, 354, 323 और 506 (भाग 2) के अधीन एक आरोप पत्र फाइल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह उल्लेख करते हुए उन्मोचन के लिए एक आवेदन फाइल किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 363/366 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है । विद्वान् अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 को उन्मोचन के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया और मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 के आदेश से व्यथित होकर सेशन न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । प्रत्यथी सं. 2 ने उक्त सेशन मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन उन्मोचन के लिए और मामला निचले न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने के लिए एक प्रकीर्ण आवेदन भी फाइल किया । विद्वान् सहायक सेशन न्यायाधीश, ग्रेटर मुंबई ने तारीख 10 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए प्रकीर्ण आवेदन को नामंजूर कर दिया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 और तारीख 10 अप्रैल, 2007 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष एक दांडिक

आवेदन फाइल किया । जब उक्त आवेदन उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने इस आवेदन को इस अनुरोध के साथ प्रत्याहृत कर लिया कि सेशन न्यायालय के समक्ष लंबित पुनरीक्षण आवदेन पर निपटारा होने तक मामले के विचारण को अग्रसर न किया जाए । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने कार्यवाहियों को उक्त पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा होने तक रोक दिया । विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 4 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करते हुए तारीख 3 अक्तूबर, 2006 के आदेश को अपास्त कर दिया । विद्वान् न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 2 को न केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपराध की बाबत अपितु भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 506(ii) के अधीन अपराधों के लिए भी उन्मोचित कर दिया । प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 342, 324, 323 और 354 के अधीन आरोप विरचित किए गए । अपीलार्थी-अभियोक्त्री ने तारीख 4 जुलाई, 2007 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष एक दांडिक रिट याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी-अभियोक्त्री द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को खारिज कर दिया । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 366 के अधीन अपराध का गठन करने हेतु अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि अभियुक्त ने शिकायत करने वाली स्त्री को किसी स्थान पर जाने के लिए उत्प्रेरित या बलपूर्वक विवश किया था, ऐसा उत्प्रेरण प्रवंचनापूर्ण उपायों द्वारा किया गया था, ऐसा अपहरण शिकायत करने वाली स्त्री को अयुक्त संभोग करने के लिए विलुब्ध करने के आशय से और/या अभियुक्त ने संभाव्य यह जानते हुए किया था कि शिकायत करने वाली स्त्री को उसके अपहरण के परिणामस्वरूप अयुक्त संभोग करने के लिए विलुब्ध किया जाएगा । मात्र अपहरण अभियुक्त को इस शास्तिक धारा की परिधि के अधीन नहीं लाता है । जहां तक धारा 366 के अधीन आरोप का संबंध है, केवल यह निष्कर्ष पर्याप्त नहीं है कि स्त्री का अपहरण किया गया था, बल्कि यह भी साबित करना आवश्यक है कि अभियुक्त ने स्त्री का अपहरण इस आशय से किया था कि उसे किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए विवश किया जा सकता है या यह संभाव्य जानते हुए किया

गया था कि वह विवश की जाएगी अथवा वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जा सकती है अथवा यह सम्भाव्य जानते हुए किया गया था वह अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी । अभियोजन पक्ष जब तक यह साबित नहीं कर देता कि अपहरण भारतीय दंड संहिता की धारा 366 में वर्णित प्रयोजनों के लिए किया गया है, तब तक न्यायालय अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन दोषी नहीं ठहरा सकता है । (पैरा 11)

इस अपील में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रेम-पूर्ण संबंध थे । तारीख 6 सितंबर, 2003 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 अपने एक मित्र की जन्म-दिन पार्टी में सम्मिलित हुए थे । शिकायत में किए गए अभिकथनों के अनुसार, तारीख 7 सितंबर, 2003 को रात्रि के बारह बजे के पश्चात् जब सभी मित्र रात्रि भोजन वाले स्थल की ओर जाने लगे तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थी को उस स्थल पर छोड़ने के लिए कहा और उसे कैफे परेड मुबंई स्थित अपने मकान पर ले गया तथा उसे कार से उतरने के लिए कहा । जब उसने कार से उतरने के लिए मना किया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने बलपूर्वक उसे कार से बाहर खींचा और उसे उठाया तथा अपने मकान में ले गया और उसे अपने पलंग पर पटक दिया । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 2 यह कहने लगा "मैं तुमसे प्यार करता हूं और तुम मुझसे विवाह क्यों नहीं कर रही हो" और अपने हाथों तथा कमर पर बांधने वाली पेटी से उसकी पिटाई करने लगा । उसने उसके सिर को दिवार के साथ भी टकराया । परिणामस्वरूप, उसके शरीर पर क्षतियां पहुंचीं । पूर्वाह्न में लगभग 2.00 बजे जब प्रत्यर्थी सं. 2 का पिता घर वापस आया तो वह अपीलार्थी को उसके घर ले गया । तारीख 12 सितंबर, 2003 को भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । इसके एक सप्ताह पश्चात् अर्थात् तारीख 19 सितंबर, 2003 को अपीलार्थी द्वारा, अपनी माता को सारी बात बताने के पश्चात्, एक और कथन किया गया जिसमें अपीलार्थी ने उत्पीड़न किए जाने का मामला भी बनाया । उसका यह स्पष्टीकरण कि उसने ऐसा कथन पहले उलझन में होने के कारण नहीं किया था, विश्वासोत्पादक नहीं है, क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट घटना के पांच दिन पश्चात् दर्ज की गई थी और इसलिए उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सम्यक् विचार-विमर्श करने के पश्चात् दर्ज की थी । इसके अतिरिक्त, उसने इसके एक सप्ताह पश्चात् उत्पीड़न के बारे में उल्लेख करने की सोची और तब उसे उलझन महसूस क्यों नहीं हुई ?

इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 2 की कार से बाहर खींचने के कृत्य को चौकीदार द्वारा देखा गया था । ऐसी वस्तुस्थिति में, प्रकट रूप से यह स्पष्ट है कि अभिकथन प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा अपीलार्थी को बलपूर्वक अपने मकान पर ले जाने की बात तक सीमित है । तथापि, उसके वस्त्र उतारने और उसे अनुचित रूप से स्पर्श करने या उत्पीड़न करने के अभिकथन बाद में जोड़े गए थे । इस न्यायालय ने अनेक बार यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र अपहरण की बात अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 की परिधि के अधीन नहीं लाती है । यह साबित करना चाहिए कि अभियुक्त ने स्त्री का अपहरण किसी व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए विवश करने के आशय से या उसे विवश किया जाएगा यह संभाव्य जानते हुए किया था अथवा उसका अपहरण उसे अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने या उसे अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध किया जाएगा यह संभाव्य जानते हुए किया गया था । अभिलेख से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और अपीलार्थी के प्रेम-संबंध थे और इस बात की जानकारी उनके परिवारों को भी थी । प्रारंभिक अभिकथन यह हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 उसे बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया था । किंतु ऐसा उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विलुब्ध करने के आशय से नहीं किया गया था । वास्तव में, अभियोक्त्री के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 2 ने पहले तो उसके प्रति प्रेम जाहिर किया और फिर अपनी कमर पर बांधने वाली पेटी से और अपने हाथों से उसकी पिटाई करने लगा और यह तथ्य अभिलेख से स्पष्ट होता है । प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उत्पीड़न किए जाने का कथन तुरंत न करके बाद में किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 2 के इन कृत्यों से यह दर्शित नहीं होता है कि उसने अपीलार्थी का अपहरण उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से किया था । भले ही यह साबित किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अपीलार्थी को बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया था, किंतु बाद में दिया गया यह बयान कि प्रत्यर्थी सं. 2 का आशय अपीलार्थी के साथ विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विवश या विलुब्ध करने का था, स्पष्ट रूप से सोच-विचार करके दिया गया बयान है । अधिक से अधिक, इस मामले को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि उन दोनों के प्रेम-संबंध थे और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उपरोक्त कृत्य अचानक भावनाओं के आवेग के कारण या शंका की अनुभूति की वजह से किया गया था । (पैरा 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2014]	(2014) 3 एस. सी. सी. 306 : **धर्म पाल और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य ;**	9
[2005]	(2005) 7 एस. सी. सी. 467 : **क्रेफ फाइनेंस लि.** बनाम **श्री शांति होम्स (प्रा.) लि. और एक अन्य ।**	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 459.

2012 की दांडिक रिट याचिका सं. 3766 में बम्बई उच्च न्यायालय के तारीख 6 मई, 2013 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 134 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री सिदार्थ लूथरा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, रोबिन जयसिघांनी, विकास मेहता, विजय गांधी, समीर चौधरी, (सुश्री) पुर्णिमा राज्य और (सुश्री) अनुश्री मेनन

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री महेश जेठमलानी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, निशांत आर. कटनेशवर कर, आनंद, राहुल एम, (सुश्री) आर. एन. रेड्डी और डा. सुशील बालवड

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – यह अपील 2012 की दांडिक रिट याचिका सं. 3766 में बम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा तारीख 6 मई, 2013 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, 40वां न्यायालय, गुरगाम, मुम्बई द्वारा आपराधिक मामला सं. 215/पीडब्ल्यू/2005 में तारीख 3 अक्तूबर, 2006 को पारित सुपुर्दगी आदेश, जिसमें विद्वान् अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् भारतीय दंड संहिता कहा गया

है) की धारा 363 के अधीन उन्मोचन के लिए फाइल किए गए आवेदन को नामंजूर कर दिया था, के विरुद्ध प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए 2007 के दांडिक पुनरीक्षण आवेदन सं. 1261 में विद्वान् न्यायाधीश, सेशन न्यायालय, ग्रेटर बम्बई द्वारा तारीख 4 जुलाई, 2007 को पारित आदेश के विरुद्ध इस अपील में अपीलार्थी-कविता चंद्रकांत लखानी द्वारा फाइल की गई याचिका को खारिज कर दिया था । यहां यह उल्लेखनीय है कि विद्वान् न्यायाधीश, सेशन न्यायालय ने तारीख 4 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 को न केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपराध के संबंध में अपितु भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 506(ii) के अधीन अपराधों के लिए भी उन्मोचित कर दिया था ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) इस अपील में अपीलार्थी द्वारा तारीख 12 सितम्बर, 2003 को पुलिस थाना गामदेवी, जिला मुम्बई में इस अपील में प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध 2003 की एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 247 यह उल्लेख करते हुए दर्ज की गई कि तारीख 6 सितंबर, 2003 की दुर्भाग्यपूर्ण रात्रि को प्रत्यर्थी सं. 2 और अपीलार्थी अपने मित्रों के साथ जन्मदिन की पार्टी में थे । पार्टी समाप्त करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 अपीलार्थी को, जिसके साथ उसके पहले से ही प्रेम-संबंध थे, रात्रि-भोजन के स्थल पर छोड़ देने के बहाने उसे अपनी कार में कैफे परेड, मुंबई स्थित अपने मकान पर ले गया । वहां पहुंचने के पश्चात् जब अपीलार्थी ने कार से बाहर आने के लिए मना किया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने बलपूर्वक उसे उठाया और अपने मकान में ले गया और बिस्तर पर पटक दिया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने उसके सारे वस्त्र उतारे और अपनी कमर पर बांधने वाली पेटी से उसकी पिटाई करने लगा तथा उसकी लज्जा भंग करने के लिए उसके गुप्तांगों पर अनुचित रूप से स्पर्श करने लगा ।

(ख) मामले में तारीख 30 मार्च, 2004 को अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, 40वां न्यायालय, मुंबई के समक्ष भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 342, 324, 354, 323 और 506 (भाग 2) के अधीन एक आरोप पत्र फाइल किया गया । प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह उल्लेख करते हुए उन्मोचन के लिए एक आवेदन फाइल किया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 363 के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है । विद्वान् अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 को उन्मोचन के लिए आवेदन को

नामंजूर कर दिया और मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया, जिसे 2006 के सेशन मामला सं. 858 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया ।

(ग) प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 के आदेश से व्यथित होकर सेशन न्यायालय के समक्ष 2006 का एक पुनरीक्षण आवेदन सं. 1261 फाइल किया । प्रत्यथी सं. 2 ने 2006 के सेशन मामला सं. 858 में भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन उन्मोचन के लिए और मामला निचले न्यायालय को प्रतिप्रेषित करने के लिए 2007 का एक प्रकीर्ण आवेदन सं. 244 भी फाइल किया । विद्वान् सहायक सेशन न्यायाधीश, ग्रेटर मुंबई ने तारीख 10 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए 2007 के प्रकीर्ण आवेदन सं. 244 को नामंजूर कर दिया ।

(घ) प्रत्यर्थी सं. 2 ने तारीख 3 अक्तूबर, 2006 और तारीख 10 अप्रैल, 2007 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2007 का एक दांडिक आवेदन सं. 1340 फाइल किया । तारीख 25 अप्रैल, 2007 को जब उक्त आवेदन उच्च न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष सुनवाई के लिए आया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने इस आवेदन को इस अनुरोध के साथ प्रत्याहृत कर लिया कि सेशन न्यायालय के समक्ष लंबित पुनरीक्षण आवदेन पर निपटारा होने तक मामले के विचारण को अग्रसर न किया जाए । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 25 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा कार्यवाहियों को उक्त पुनरीक्षण आवेदन का निपटारा होने तक रोक दिया ।

(ङ) विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश ने तारीख 4 जुलाई, 2007 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन को मंजूर करते हुए तारीख 3 अक्तूबर, 2006 के आदेश को अपास्त कर दिया । विद्वान् न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 2 को न केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपराध की बाबत अपितु भारतीय दंड संहिता की धारा 363 और 506(ii) के अधीन अपराधों के लिए भी उन्मोचित कर दिया । प्रत्यर्थी सं. 2 के विरुद्ध तारीख 13 जून, 2012 को भारतीय दंड संहिता की धारा 342, 324, 323 और 354 के अधीन आरोप विरचित किए गए । अपीलार्थी ने तारीख 4 जुलाई, 2007 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2012 की एक दांडिक रिट याचिका सं. 3766 फाइल की । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपीलार्थी द्वारा

फाइल की गई रिट याचिका को तारीख 6 मई, 2013 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया ।

(च) अपीलार्थी ने तारीख 6 मई, 2013 के निर्णय से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की है ।

3. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सिद्धार्थ लूथरा और प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री महेश जेठमलानी तथा प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री निशांत आर. कटनेश्वरकर को सुना ।

विचारणीय मुद्दा (मुद्दे)

4. इस न्यायालय के समक्ष एकमात्र विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या प्रस्तुत मामले के तथ्य और परिस्थितियों में अपीलार्थी के आरोपों में भारतीय दंड संहिता की धारा 366 को सम्मिलित करने के लिए मामला बनता है या नहीं ?

5. हमने दोनों पक्षों की ओर से दिए गए तर्कों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

परस्पर विरोधी दलीलें

6. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि घटना तारीख 6/7 जुलाई, 2003 को घटी थी और अपीलार्थी द्वारा की गई शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट तारीख 12 सितंबर, 2003 को रजिस्ट्रीकृत की गई थी । इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी ने तारीख 16 फरवरी, 2004 को एक अनुपूरक कथन किया था और यदि शिकायत तथा अनुपूरक कथन पर इनके सही परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए, तो प्रत्यर्थी सं. 2 को भारतीय दंड संहिता की धारा 366, 363 और 506 (ii) के अधीन अभिकथित अपराधों की बाबत उन्मोचन का कोई मामला नहीं बनता है ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **क्रेफ फाइनेंस लि.** बनाम **श्री शांति होम्स (प्रा.) लि. और एक अन्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । अतः, उन्होंने यह दलील दी कि आक्षेपित आदेश के साथ-साथ प्रत्यर्थी सं. 2 को उन्मोचित करने वाले

[1] (2005) 7 एस. सी. सी. 467.

सेशन न्यायालय के आदेश को भी इस न्यायालय द्वारा अपास्त किया जाए ।

8. तथापि, प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह दलील दी कि शिकायत में, जिसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी, भारतीय दंड संहिता की धारा 366, 363 और 506(ii) के अधीन अपराध कारित करने के संबंध में किंचित भी उल्लेख नहीं है और अपीलार्थी द्वारा लगभग पांच माह के पश्चात् किया गया अनुपूरक कथन केवल सोच-विचार करके केवल प्रत्यर्थी सं. 2 को अन्य धाराओं के अधीन भी फंसाए जाने के लिए किया गया है और इसलिए इसका अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

9. प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **धर्म पाल और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया और यह दलील दी कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेशों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

चर्चा

10. उपरोक्त पृष्ठभूमि में, यहां भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के संघटकों का उल्लेख करना प्रासंगिक है :–

> "366. **विवाह आदि के करने को विवश करने के लिए किसी स्त्री को व्यपहृत करना, अपहृत करना या उत्प्रेरित करना** – जो कोई किसी स्त्री का व्यपहरण या अपहरण उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए उस स्त्री को विवश करने के आशय से या यह सम्भाव्य जानते हुए कि वह विवश की जाएगी अथवा अयुक्त संभोग करने के लिए उस स्त्री को विवश या विलुब्ध करने के लिए या यह सम्भाव्य जानते हुए कि वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी, करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा; और जो कोई किसी स्त्री को किसी अन्य व्यक्ति से अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से या यह सम्भाव्य जानते

---

[1] (2014) 3 एस. सी. सी. 306.

हुए कि वह विवश या विलुब्ध की जाएगी, इस संहिता में यथापरिभाषित आपराधिक अभित्रास द्वारा अथवा प्राधिकार के दुरुपयोग या विवश करने के अन्य साधन द्वारा उस स्त्री को किसी स्थान से जाने को उत्प्रेरित करेगा, वह भी पूर्वोक्त प्रकार से दण्डित किया जाएगा ।"

'अपहरण' के अपराध का गठन करने के लिए किसी व्यक्ति को अवैध रूप से, बलपूर्वक या प्रवंचना करके ले जाना आवश्यक है, अर्थात् किसी व्यक्ति को बलपूर्वक या प्रवंचनापूर्ण उपायों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए उत्प्रेरित करने हेतु विवश करना । इस धारा के अधीन अपराध का आधार और सार अभियुक्त का आशय है । अपराध का अवधारण अभियुक्त की स्वेच्छा, आशय और आचरण से किया जाता है; इन बातों का संबंध केवल अभियुक्त के उस आशय से होता है जिस आशय के साथ अभियुक्त स्त्री को व्यपहृत या अपहृत करता है, और प्रत्येक मामले में अभियुक्त का आशय अवधारण का महत्वपूर्ण प्रश्न होता है । जब एक बार अभियुक्त का आवश्यक आशय सिद्ध हो जाता है, तो अपराध पूर्ण हो जाता है, चाहे अभियुक्त अपने प्रयोजन को पूरा करने में सफल रहा है या नहीं, और चाहे स्त्री ने विवाह के लिए या अयुक्त संभोग के लिए सम्मति दी है या नहीं ।

11. इसके अतिरिक्त, भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन अपराध का गठन करने हेतु अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आवश्यक है कि अभियुक्त ने शिकायत करने वाली स्त्री को किसी स्थान पर जाने के लिए उत्प्रेरित या बलपूर्वक विवश किया था, ऐसा उत्प्रेरण प्रवंचनापूर्ण उपायों द्वारा किया गया था, ऐसा अपहरण शिकायत करने वाली स्त्री को अयुक्त संभोग करने के लिए विलुब्ध करने के आशय से और/या अभियुक्त ने संभाव्य यह जानते हुए किया था कि शिकायत करने वाली स्त्री को उसके अपहरण के परिणामस्वरूप अयुक्त संभोग करने के लिए विलुब्ध किया जा सकेगा । मात्र अपहरण अभियुक्त को इस शास्तिक धारा की परिधि के अधीन नहीं लाता है । जहां तक धारा 366 के अधीन आरोप का संबंध है, केवल यह निष्कर्ष पर्याप्त नहीं है कि स्त्री का अपहरण किया गया था, बल्कि यह भी साबित करना आवश्यक है कि अभियुक्त ने स्त्री को इस आशय के साथ अपहृत किया था कि उसे किसी व्यक्ति से विवाह करने के लिए विवश किया जा सकता है या वह विवश की जाएगी यह सम्भाव्य यह जानते हुए किया गया था अथवा वह स्त्री अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध की जा सकती है या कि वह स्त्री अयुक्त संभोग

करने के लिए विवश या विलुब्ध की जाएगी यह सम्भाव्य जानते हुए किया गया था । अभियोजन पक्ष जब तक यह साबित नहीं कर देता कि अपहरण भारतीय दंड संहिता की धारा 366 में वर्णित प्रयोजनों के लिए किया गया है, तब तक न्यायालय अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन दोषी नहीं ठहरा सकता है ।

12. हमारी यह सुविचारित राय है कि निचले न्यायालयों के समक्ष फाइल किए गए सभी आवेदन और किए गए आदेशों का सार एक समान है । इस प्रक्रम पर इस न्यायालय के विचार करने के लिए ऐसा कोई मुद्दा नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा फाइल किए गए अन्य आवेदनों को सभी नीचे न्यायालयों के ध्यान में नहीं लाया गया था । मामले की इस दृष्टि से, समुचित होगा कि हम वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपनी चर्चा को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के लागू होने तक सीमित रखें ।

13. प्रस्तुत मामले में, इस अपील में अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रेम-संबंध थे । तारीख 6 सितंबर, 2003 को अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 2 अपने एक मित्र की जन्म-दिन पार्टी में सम्मिलित हुए थे । शिकायत में किए गए अभिकथनों के अनुसार, तारीख 7 सितंबर, 2003 को रात्रि के बारह बजे के पश्चात् जब सभी मित्र रात्रि भोजन वाले स्थल की ओर जाने लगे तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थी को उस स्थल पर छोड़ने के लिए कहा और उसे कैफे परेड मुंबई स्थित अपने मकान पर ले गया तथा उसे कार से उतरने के लिए कहा । जब उसने कार से उतरने के लिए मना किया तो प्रत्यर्थी सं. 2 ने बलपूर्वक उसे कार से बाहर खींचा और उसे उठाया तथा अपने मकान में ले गया और उसे अपने पलंग पर पटक दिया । इसके पश्चात्, प्रत्यर्थी सं. 2 यह कहने लगा "मैं तुमसे प्यार करता हूं और तुम मुझसे विवाह क्यों नहीं कर रही हो" और अपने हाथों तथा कमर पर बांधने वाली पेटी से उसकी पिटाई करने लगा । उसने उसके सिर को दिवार के साथ भी टकराया । परिणामस्वरूप, उसके शरीर पर क्षतियां पहुंचीं । पूर्वाह्न में लगभग 2.00 बजे जब प्रत्यर्थी सं. 2 का पिता घर वापस आया तो वह अपीलार्थी को उसके घर ले गया । तारीख 12 सितंबर, 2013 को भारतीय दंड संहिता की विभिन्न धाराओं के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई । इसके एक सप्ताह पश्चात् अर्थात् तारीख 19 सितंबर, 2003 को अपीलार्थी द्वारा, अपनी माता को सारी बात बताने के पश्चात्, एक और कथन किया गया जिसमें अपीलार्थी ने उत्पीड़न किए जाने का मामला भी

बनाया । उसका यह स्पष्टीकरण कि उसने ऐसा कथन पहले उलझन में होने के कारण नहीं किया था, विश्वासोत्पादक नहीं है, क्योंकि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट घटना के पांच दिन पश्चात् दर्ज की गई थी और इसलिए उसने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सम्यक् विचार-विमर्श करने के पश्चात् दर्ज की थी । इसके अतिरिक्त, उसने इसके एक सप्ताह पश्चात् उत्पीड़न के बारे में उल्लेख करने की सोची और तब उसे उलझन महसूस क्यों नहीं हुई ? इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 2 की कार से बाहर खींचने के कृत्य को चौकीदार द्वारा देखा गया था । ऐसी वस्तुस्थिति में, प्रकट रूप से यह स्पष्ट है कि अभिकथन प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा अपीलार्थी को बलपूर्वक अपने मकान पर ले जाने की बात तक सीमित है । तथापि, उसके वस्त्र उतारने और उसे अनुचित रूप से स्पर्श करने या उत्पीड़न करने के अभिकथन बाद में जोड़े गए थे । इस न्यायालय ने अनेक बार यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र अपहरण की बात अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 366 की परिधि के अधीन नहीं लाती है । यह साबित करना चाहिए कि अभियुक्त ने स्त्री का अपहरण किसी व्यक्ति के साथ विवाह करने के लिए विवश करने के आशय से या उसे विवश किया जाएगा यह संभाव्य जानते हुए किया था अथवा उसका अपहरण उसे अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने या उसे अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध किया जाएगा यह संभाव्य जानते हुए किया गया था । अभिलेख से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थी सं. 2 और अपीलार्थी के प्रेम-पूर्ण संबंध थे और इस बात की जानकारी उनके परिवारों को भी थी । प्रारंभिक अभिकथन यह हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 उसे बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया था । किंतु ऐसा उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विलुब्ध करने के आशय से नहीं किया गया था । वास्तव में, अभियोक्त्री के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 2 ने पहले तो उसके प्रति प्रेम जाहिर किया और फिर अपनी कमर पर बांधने वाली पेटी से और अपने हाथों से उसकी पिटाई करने लगा और यह तथ्य अभिलेख से स्पष्ट होता है । प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उत्पीड़न किए जाने का कथन तुरंत न करके बाद में किया गया था । प्रत्यर्थी सं. 2 के इन कृत्यों से यह दर्शित नहीं होता है कि उसने अपीलार्थी का अपहरण उसकी इच्छा के विरुद्ध उसके साथ विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए विवश या विलुब्ध करने के आशय से किया था ।

14. भले ही यह साबित किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अपीलार्थी

को बलपूर्वक अपने मकान पर ले गया था, किंतु बाद में दिया गया यह बयान कि प्रत्यर्थी सं. 2 का आशय अपीलार्थी के साथ विवाह करने या उसके साथ अयुक्त संभोग करने के लिए उसे विवश या विलुब्ध करने का था, स्पष्ट रूप से सोच-विचार करके दिया गया बयान है । अधिक से अधिक, इस मामले को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि उन दोनों के प्रेम-पूर्ण संबंध थे और प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उपरोक्त कृत्य अचानक भावनाओं के आवेग के कारण या शंका की अनुभूति की वजह से किया गया था । इसके अतिरिक्त, पक्षकारों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेलों द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते हैं ।

15. पूर्वागामी चर्चा को देखते हुए, हमारी यह राय है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के अधीन आरोप बनाए रखने योग्य नहीं है और उच्च न्यायालय ने ठीक ही ऐसा अभिनिर्धारित किया है । तथापि, चूंकि यह मामला वर्ष 2003 से लंबित है और अभी भी आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर है, इसलिए हम विचारण न्यायालय को यह निदेश देना उचित समझते हैं कि विचारण न्यायालय इस निर्णय के पारित होने की तारीख से 6 माह के भीतर विचारण को पूरा करें । यह भी स्पष्ट किया जाता है कि इस निर्णय में अभिलिखित की गई मताभिव्यक्तियां केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 366 के लागू होने के प्रयोजन के लिए हैं और विचारण न्यायालय गुणागुण के आधार पर मामले का विनिश्चय करेगा । यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

[2018] 3 उम. नि. प. 476

नरेश और अन्य

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य

25 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 307, 323, 324 और 34 – हत्या का प्रयत्न – दोषसिद्धि और दंडादेश – जब आहत व्यक्ति को पहुंची क्षतियों की प्रकृति गंभीर न हो और कोई स्थायी नि:शक्तता कारित न हुई हो तथा अभियुक्त एक वर्ष का कारावास भुगतने के पश्चात् जमानत पर रहते हुए किसी आपराधिक गतिविधि में संलिप्त न पाए गए हों, तब अभियुक्तों पर अधिरोपित कारावास को उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक कम करने और आहत व्यक्ति को देय जुर्माने की रकम को बढ़ाने मात्र से न्याय की पूर्ति हो सकती है ।

इस मामले के तथ्यों के अनुसार, चार अभियुक्त-अपीलार्थियों ने तारीख 26 मई, 1998 को तेज सिंह नामक व्यक्ति पर कुल्हाड़ी से हमला किया और उसके शरीर पर क्षतियां (खरोंच, नील और एक विदीर्ण घाव) कारित कीं । इस घटना को लेकर चारों अभियुक्तों के विरुद्ध प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई । तद्नुसार, चारों अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया गया और उनका विचारण किया गया । अपर सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार ने सभी चारों अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया । राज्य और शिकायतकर्ता ने व्यथित होकर अभियुक्तों की दोषमुक्ति के आदेश की वैधता और शुद्धता को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल कीं । उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता और राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर कीं और अपर सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त कर दिया तथा सभी चारों अभियुक्त व्यक्तियों को विभिन्न धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया । अभियुक्तों द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर अपीलें फाइल की गईं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों को भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् काउंसेलों को सुनने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह न्यायालय इन अपीलों को भागतः मंजूर करने और जहां तक सुरेश अभियुक्त सं. 2 (इस अपील में अपीलार्थी सं. 2) का संबंध है, अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को प्रत्यावर्तित करते हुए उसे आरोपों से दोषमुक्त करने के लिए तत्पर हैं । जहां तक शेष तीन अभियुक्त-अपीलार्थियों अर्थात् अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 का संबंध है, यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उनके अपने-अपने कारागार के दंडादेशों को उपांतरित करता है और उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक कम करता है तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्येक अपीलार्थी पर अधिनिर्णीत 7,000/- रुपए की जुर्माने की रकम को बढ़ाकर 75,000/- रुपए करता है । यह न्यायालय ऐसा निम्नलिखित कारणों की वजह से कर रहा है । प्रथम, घटना वर्ष 1998 की है और अब हम वर्ष 2018 में हैं । दूसरे शब्दों में, अब तक लगभग बीस वर्ष बीत गए हैं और यह मुकदमेबाजी विभिन्न न्यायालयों में लंबित है । द्वितीय, डाक्टर द्वारा क्षतिग्रस्त तेज सिंह के शरीर पर सात क्षतियां पाई गई थीं, किंतु जो क्षतियां पाई गई थीं वे बहुत गंभीर प्रकृति की नहीं थीं, ऐसा डाक्टर की रिपोर्ट से स्पष्ट होता है । तृतीय, तेज सिंह को उसके शरीर पर पहुंची क्षतियों की वजह से कोई स्थायी निःशक्तता तो दूर कोई निःशक्तता कारित ही नहीं हुई थी और वह अभिकथित घटना की तारीख के पश्चात् से 25 वर्ष तक जीवित रहा, और जैसा कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा बताया गया, उसकी अभी हाल ही में पिछले सप्ताह मृत्यु हुई है । चतुर्थ, अपीलार्थी सं. 2 सुरेश (अभि. 2), जो लगभग तीन माह कारावास में रहा है, को छोड़कर सभी अपीलार्थियों (अभियुक्तों) ने उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारागार के कुल दंडादेश में से परिहार सहित लगभग एक वर्ष का कारागार दंडादेश भुगत लिया है । पंचम, सभी अपीलार्थी पहली बार के अपराधी हैं और पिछले 20 वर्षों में किसी आपराधिक गतिविधि में अंतर्ग्रस्त नहीं पाए गए हैं, यद्यपि इस सारे समय वे जमानत पर रहे हैं और अंतिम बात यह कि अपीलार्थी सं. 2 और 3 के बारे में यह बताया गया है कि वे सरकारी सेवा में हैं । तथापि, जहां तक अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 की प्रश्नगत अपराध कारित करने में अंतर्ग्रस्तता का संबंध है, इस न्यायालय ने प्रत्येक के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों का परिशीलन किया है और यह पाया है कि इस न्यायालय द्वारा तथ्य के ऐसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने

का कोई मामला नहीं बनता है, भले ही यह निर्णय को उलटने का मामला है । इस न्यायालय के मत में, यह न्यायसंगत और उचित है और इसलिए अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 की दोषसिद्धि के निष्कर्ष को कायम रखा जाता है । इन सभी पूर्वोल्लिखित कारणों से, जो इस मामले के तथ्यों में सुसंगत हैं, यह न्यायालय केवल उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारागार के दंडादेश की मात्रा में हस्तक्षेप करने और उनके कारागार के दंडादेश को उनके द्वारा पहले ही भुगत लिए गए दंडादेश तक कम करने के लिए तत्पर है तथा साथ-ही-साथ अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने की रकम में बढ़ोतरी करना न्यायसंगत और उचित समझता है । जहां तक अपीलार्थी सं. 2 सुरेश (अभि. 2) का संबंध है, इस न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश के निष्कर्ष का परिशीलन किया है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी दोषमुक्ति हुई है, और साथ ही उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष का भी परिशीलन किया है जिसके परिणामस्वरूप उसकी दोषसिद्धि की गई है । प्रश्नगत घटना में अपीलार्थी सं. 2 सुरेश की भूमिका और अंतर्ग्रस्तता का विनिश्चय करने वाले दोनों निष्कर्षों का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि तेज सिंह को क्षतियां पहुंचाने में अपीलार्थी सं. 2 की भूमिका और अंतर्ग्रस्तता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं होती है और इसलिए अपीलार्थी सं. 2 सुरेश उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किए जाने का दायी है । अपीलार्थियों (सं. 1, 3 और 4) में से किसी के द्वारा जुर्माने की रकम जमा करने में असफल रहने पर आक्षेपित निर्णय पुनः प्रवर्तित हो जाएगा और ऐसी स्थिति में व्यतिक्रमी अपीलार्थी (अपीलार्थियों) को आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत शेष कारागार दंडादेश भुगतने के लिए अभिरक्षा में लिया जाएगा । (पैरा 13, 14, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21, 22, 23, 24 और 28)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 394-395 और इसके साथ 2018 की दांडिक अपील सं. 396.

2011 की दांडिक अपील सं. 91 और 2011 की सरकारी अपील सं. 42 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल के तारीख 10 जुलाई, 2017/17 जुलाई, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 134 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री सुशील कुमार जैन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अजय वीर सिंह जैन, (सुश्री) ममता जैन, उदयराम बोकाड़िया, अतुल अग्रवाल, (सुश्री) दिव्या गर्ग, राकेश कुमार खरे और सोनल जैन
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री आशुतोष कुमार शर्मा, जतिन्द्र कुमार भाटिया, पंकज कुमार सिंह, मुकेश वर्मा, पवन कुमार शुक्ला और यशपाल ढ़ीगड़ा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे -- 2018 की दांडिक अपील सं. 394-395.

1. ये अपीलें अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा 2011 की दांडिक अपील सं. 91 (शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई) और 2011 की सरकारी अपील सं. 42 में उत्तराखंड उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 10 जुलाई, 2017/17 जुलाई, 2017 को पारित उस सामान्य अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने राज्य और शिकायतकर्ता की अपीलें मंजूर कीं और 1999 के सेशन विचारण सं. 286 में अपर सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार द्वारा तारीख 16 मार्च, 2011 को पारित आदेश को अपास्त कर दिया और अभियुक्त व्यक्तियों नरेश, सुरेश, अशीष **उर्फ** शेषराज और राजेन्द्र को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "भारतीय दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए दोषी पाया और तद्नुसार उनमें से प्रत्येक को निम्नलिखित दंडादेश दिया :-

अभियुक्त	विचारण न्यायालय	उच्च न्यायालय
नरेश (अभि. 1)	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषमुक्त	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषसिद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन पांच वर्ष का

		कठोर कारावास और 5,000/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अधीन 6 माह का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन 2 वर्ष का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के अधीन 1 वर्ष का कठोर कारावास और 1,000/- रुपए का जुर्माना
सुरेश (अभि. 2)	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषमुक्त	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषसिद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन पांच वर्ष का कठोर कारावास और 5,000/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अधीन 6 माह का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन 2 वर्ष का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा

		504 के अधीन 1 वर्ष का कठोर कारावास और 1,000/- रुपए का जुर्माना (तथापि), फेफड़े का कैंसर अग्रिम प्रक्रम पर होने के कारण भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन 2 वर्ष का कठोर कारावास
अशीष **उर्फ** शेषराज (अभि. 3)	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषमुक्त	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषसिद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन पांच वर्ष का कठोर कारावास और 5,000/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अधीन 6 माह का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन 2 वर्ष का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के अधीन 1 वर्ष का कठोर कारावास और 1,000/- रुपए का जुर्माना
राजेंद्र (अभि. 4)	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34	भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/32, 324/34 और 504 के अधीन दोषसिद्ध

	और 504 के अधीन दोषसिद्ध	भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन पांच वर्ष का कठोर कारावास और 5,000/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 323/34 के अधीन 6 माह का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 324/34 के अधीन 2 वर्ष का कठोर कारावास और 500/- रुपए का जुर्माना भारतीय दंड संहिता की धारा 504 के अधीन 1 वर्ष का कठोर कारावास और 1,000/- रुपए का जुर्माना

2. इन अपीलों में अंतर्वलित विवाद्यक का मूल्यांकन करने के लिए कुछ सुसंगत तथ्यों का इसमें नीचे उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है ।

3. इस अपील में अपीलार्थी अभियुक्त हैं । वे नरेश (अभि. 1), सुरेश (अभि. 2), अशीष (अभि. 3) और राजेन्द्र ((अभि. 4) हैं ।

4. इन चारों अभियुक्तों ने भारतीय दंड संहिता की धारा 307/34, 323/34, 324/34 और 504 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए अभियोजन का सामना किया था ।

5. इन चारों अपीलार्थियों के विरुद्ध अभियोजन का पक्षकथन संक्षेप में यह था कि तारीख 26 मई, 1998 को उन्होंने तेज सिंह नामक व्यक्ति पर कुल्हाड़ी से हमला किया और उसके शरीर पर क्षतियां कारित कीं । क्षतियां खरोंच, नील और एक विदीर्ण घाव थीं (डाक्टर की राय-अपील की कागजात पुस्तिका का पृष्ठ 86-उपाबंध पी/2 देखें) ।

6. इस घटना को लेकर अभि. सा. 4, जसवीर सिंह द्वारा तारीख 27

मई, 1998 को चारों अभियुक्तों के विरुद्ध पुलिस थाना हरिद्वार-लक्सर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट (सं. 83/1998) फाइल की गई । तद्नुसार, चारों अपीलार्थियों को गिरफ्तार किया गया और उनका विचारण किया गया । अपर सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार ने तारीख 16 मार्च, 2011 के आदेश द्वारा सभी चारों अपीलार्थियों (अभियुक्तों) को दोषमुक्त कर दिया ।

7. राज्य और शिकायतकर्ता ने व्यथित होकर अपीलार्थियों की दोषमुक्ति के आदेश की वैधता और शुद्धता को प्रश्नगत करने के लिए अनुज्ञा देने की ईप्सा करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलें फाइल करने के लिए इजाजत याचिका फाइल की । इजाजत दी गई । नरेश कुमार (अभि. 1) ने भी उच्च न्यायालय के समक्ष 2011 की दांडिक अपील सं. 126 फाइल की ।

8. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा शिकायतकर्ता और राज्य द्वारा फाइल की गई अपीलें मंजूर कीं और अपर सेशन न्यायाधीश, हरिद्वार द्वारा पारित किया गया आदेश अपास्त कर दिया तथा सभी चारों अभियुक्त व्यक्तियों को ऊपर उल्लिखित विभिन्न धाराओं के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया ।

9. तथापि, सुरेश (अभि. 2) की बीमारी अर्थात् फेफड़े के अग्रिम स्तर के कैंसर, पर विचार करते हुए उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया । न्यायालय ने राज्य को निदेश दिया कि उसे चिकित्सीय उपचार के लिए सिविल अस्पताल, रुड़की में भर्ती कराया जाए ।

10. अपीलार्थी (अभियुक्त) उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित हुए और इस न्यायालय में विशेष इजाजत लेकर ये अपीलें फाइल कीं ।

11. इन अपीलों में विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने अपर सेशन न्यायाधीश द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश को उलट कर और अपीलार्थियों को दोषसिद्ध करके न्यायोचित किया है या नहीं ।

12. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री सुशील कुमार जैन और प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री आशुतोष कुमार शर्मा को सुना ।

13. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् हम इन अपीलों को भागतः मंजूर करने और जहां तक सुरेश-अभियुक्त सं. 2 (इस अपील में अपीलार्थी सं. 2) का संबंध है, अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को प्रत्यावर्तित करते हुए उसे आरोपों से दोषमुक्त करने के लिए तत्पर हैं ।

14. जहां तक शेष तीन अभियुक्त-अपीलार्थियों अर्थात् अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 का संबंध है, हम ऊपर उल्लिखित उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए उनके अपने-अपने कारागार के दंडादेशों को उपांतरित करते हैं और उनके द्वारा पहले ही भुगत ली गई अवधि तक कम करते हैं तथा उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्येक अपीलार्थी पर अधिनिर्णीत 7,000/- रुपए की जुर्माने की रकम को बढ़ाकर 75,000/- रुपए करते हैं ।

15. यह हम निम्नलिखित कारणों की वजह से कर रहे हैं ।

16. प्रथम, घटना वर्ष 1998 की है और अब हम वर्ष 2018 में हैं । दूसरे शब्दों में, अब तक लगभग बीस वर्ष बीत गए हैं और यह मुकदमेबाजी विभिन्न न्यायालयों में लंबित है ।

17. द्वितीय, डाक्टर द्वारा क्षतिग्रस्त तेज सिंह के शरीर पर सात क्षतियां पाई गई थीं, किंतु जो क्षतियां पाई गई थीं वे बहुत गंभीर प्रकृति की नहीं थीं, ऐसा ऊपर उल्लिखित डाक्टर की रिपोर्ट से स्पष्ट होता है ।

18. तृतीय, तेज सिंह को उसके शरीर पर पहुंची क्षतियों की वजह से कोई स्थायी निःशक्तता तो दूर कोई निःशक्तता कारित ही नहीं हुई थी और वह अभिकथित घटना की तारीख के पश्चात् से 25 वर्ष तक जीवित रहा, और जैसा कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा बताया गया, उसकी अभी हाल ही में पिछले सप्ताह मृत्यु हुई है ।

19. चतुर्थ, अपीलार्थी सं. 2 सुरेश (अभि. 2), जो लगभग तीन माह कारावास में रहा है, को छोड़कर सभी अपीलार्थियों (अभियुक्तों) ने उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारागार के कुल दंडादेश में से परिहार सहित लगभग एक वर्ष का कारागार दंडादेश भुगत लिया है ।

20. पंचम, सभी अपीलार्थी पहली बार के अपराधी हैं और पिछले 20 वर्षों में किसी आपराधिक गतिविधि में अंतर्ग्रस्त नहीं पाए गए हैं, यद्यपि इस सारे समय वे जमानत पर रहे हैं और अंतिम बात यह कि अपीलार्थी सं. 2

और 3 के बारे में यह बताया गया है कि वे सरकारी सेवा में हैं ।

21. तथापि, जहां तक अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 की प्रश्नगत अपराध कारित करने में अंतर्ग्रस्तता का संबंध है, हमने प्रत्येक के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों का परिशीलन किया है और यह पाया है कि इस न्यायालय द्वारा तथ्य के ऐसे निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई मामला नहीं बनता है, भले ही यह निर्णय को उलटने का मामला है । हमारे मत में, यह न्यायसंगत और उचित है और इसलिए हम अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 की दोषसिद्धि के निष्कर्ष को कायम रखते हैं ।

22. इन सभी पूर्वोल्लिखित कारणों से, जो इस मामले के तथ्यों में सुसंगत हैं, हम केवल उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत कारागार के दंडादेश की मात्रा में हस्तक्षेप करने और उनके कारागार के दंडादेश को उनके द्वारा पहले ही भुगत लिए गए दंडादेश तक कम करने के लिए तत्पर हैं तथा साथ-ही-साथ अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 पर उच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने की रकम में बढ़ोतरी करना न्यायसंगत और उचित समझते हैं ।

23. जहां तक अपीलार्थी सं. 2 सुरेश (अभि. 2) का संबंध है, हमने अपर सेशन न्यायाधीश के निष्कर्ष का परिशीलन किया है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी दोषमुक्ति हुई है, और साथ ही उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष का भी परिशीलन किया है जिसके परिणामस्वरूप उसकी दोषसिद्धि की गई है ।

24. प्रश्नगत घटना में अपीलार्थी सं. 2 सुरेश की भूमिका और अंतर्ग्रस्तता का विनिश्चय करने वाले दोनों निष्कर्षों का परिशीलन करने के पश्चात् हम उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को प्रत्यावर्तित करने के बजाय सेशन न्यायाधीश के निष्कर्ष को प्रत्यावर्तित करने के लिए तत्पर हैं । दूसरे शब्दों में, हमारा यह निष्कर्ष है कि तेज सिंह को क्षतियां पहुंचाने में अपीलार्थी सं. 2 की भूमिका और अंतर्ग्रस्तता युक्तियुक्त संदेह के परे साबित नहीं होती है और इसलिए, हमारे मत में, अपीलार्थी सं. 2 सुरेश उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किए जाने का दायी है । वह जमानत पर है क्योंकि यह बताया गया है कि वह कैंसर से पीड़ित है ।

25. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, ये अपीलें सफल होती हैं और भागतः मंजूर की जाती हैं तथा आक्षेपित निर्णय निम्नानुसार उपांतरित

किया जाता है ।

26. अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 को दिए गए कारागार के दंडादेश को उपांतरित किया जाता है और तद्नुसार पहले ही भुगत लिए गए दंडादेश तक कम करते हैं । दूसरे शब्दों में, अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 को प्रश्नगत अपराधों के संबंध में और कारागार का दंडादेश भुगतने की आवश्यकता नहीं है ।

27. तथापि, जैसा की ऊपर अभिनिर्धारित किया गया है, अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 में से प्रत्येक तेज सिंह (विपदग्रस्त) के विधिक प्रतिनिधियों को 75,000/- रुपए की राशि (कुल 2,25,000/- रुपए) का संदाय करेंगे या उक्त रकम (2,25,000/- रुपए) स्वर्गीय तेज सिंह के विधिक प्रतिनिधियों को संदत्त करने के लिए न्यायालय में जमा करेंगे । अपीलार्थी सं. 1, 3 और 4 द्वारा 2,25,000/- रुपए की रकम इस आदेश की तारीख से तीन माह के भीतर जमा की जाए ।

28. अपीलार्थियों (सं. 1, 3 और 4) में से किसी के द्वारा रकम जमा करने में असफल रहने पर आक्षेपित निर्णय पुनः प्रवर्तित हो जाएगा और ऐसी स्थिति में व्यतिक्रमी अपीलार्थी (अपीलार्थियों) को आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत शेष कारागार दंडादेश भुगतने के लिए अभिरक्षा में लिया जाएगा ।

29. जहां तक अपीलार्थी सं. 2 सुरेश की अपील का संबंध है, यह मंजूर की जाती है और अपीलार्थी सं. 2 की दोषसिद्धि अपास्त की जाती है । तद्नुसार, उसे मुक्त किया जाता है । उसके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं ।

2018 की दांडिक अपील सं. 396

2018 की दांडिक अपील सं. 394-395 में पारित निर्णय को दृष्टिगत करते हुए इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील भागतः मंजूर की गई ।

जस.

[2018] 3 उम. नि. प. 487

आरिफ खान उर्फ आगा खान

बनाम

उत्तराखंड राज्य

27 अप्रैल, 2018

न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) – धारा 20 और 50 – विनिषिद्ध वस्तु (चरस) कब्जे में रखना – तलाशी और अभिग्रहण – प्रक्रिया – **जहां छापामार पुलिस दल द्वारा अभियुक्त की तलाशी, धारा 50 की आज्ञापक अपेक्षाओं के अनुसार, किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में न की गई हो और स्वयं तलाशी लेकर अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु (चरस) अभिगृहीत की गई हो, वहां अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों का अनुपालन न होने के कारण अभियुक्त दोषमुक्त किए जाने का हकदार होगा ।**

इस अपील के तथ्य संक्षेप में, इस प्रकार हैं कि पुलिस को एक अज्ञात इत्तिलाकर्ता से एक गुप्त इत्तिला प्राप्त हुई कि एक व्यक्ति अपने साथ कुछ विनिषिद्ध वस्तुएं लिए हुए रोडवेज की बस में यात्रा कर रहा है और उसने वह स्थान भी बताया जहां वह बस से उतरेगा । तद्नुसार, थाना अधिकारी के नेतृत्व में छापामार दल इत्तिलाकर्ता द्वारा सूचित किए गए स्थान की ओर रवाना हुआ । सूचित किए गए स्थान पर पहुंचने के पश्चात् छापामार दल ने कुछ समय प्रतीक्षा की और उसके पश्चात् संबंधित व्यक्ति को चिह्नित किया और उसे रोका । इसके पश्चात्, छापमार दल के पुलिस कार्मिकों द्वारा अभियुक्त से पूछा गया कि क्या उसके कब्जे में विनिषिद्ध वस्तु "चरस" है । अभियुक्त ने अभिकथित रूप से इस बात को स्वीकार किया । अभियुक्त को गिरफ्तार करने के पश्चात् पुलिस कार्मिकों द्वारा उसे यह सूचित किया गया कि उसे किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में तलाशी दिए जाने का विधिक अधिकार है, इस पर अभियुक्त ने यह उत्तर दिया कि उसे छापामार पुलिस दल पर भरोसा है और उनके द्वारा तलाशी लिए जाने की सम्मति दी । तद्नुसार, छापामार पुलिस दल ने तलाशी लिए जाने की लिखित में सम्मति अभिप्राप्त करके

अभियुक्त की तलाशी ली, जिसके परिणामस्वरूप उसके शरीर से लगभग 2.5 कि. ग्रा. "चरस" अभिगृहीत की । अपीलार्थी-अभियुक्त का स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 20 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए अभियोजन चलाया गया । अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं. 2, उधम सिंह नगर द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में समर्थ रहा है और तद्नुसार उसे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 20 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने तथा 1,00,000/- रुपए के जुर्माने से दंडादिष्ट किया । अभियुक्त ने व्यथित होकर नैनीताल स्थित उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को कायम रखा । इससे व्यथित होकर अभियुक्त द्वारा विशेष इजाजत लेकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से न तो यह सुझाव मिलता है और न ही यह साबित होता है कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे बरामदगी या तो किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी । अभियोजन का जो पक्षकथन है और जिसे दोनों निचले न्यायालय द्वारा स्वीकार किया हुआ पाया गया है, यह है कि चूंकि अपीलार्थी (अभियुक्त) को या तो किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में तलाशी दिए जाने के उसके अधिकार के बारे में जानकारी दी गई थी, किंतु तलाशी देने के संबंध में धारा 50 के अधीन अपीलार्थी को उपलब्ध उसके विधिक अधिकार के बारे में उसको बताने के बावजूद उसने पुलिस पदधारियों (छापामार दल) द्वारा ही तलाशी लिए जाने की लिखित में अपनी सम्मति दी थी, इसलिए दोनों निचले न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धारा 50 की अपेक्षाओं का पूरी तरह से पालन किया गया था और इसलिए अपीलार्थी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किए जाने का दायी है । यह न्यायालय दोनों निचले न्यायालयों के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं क्योंकि इस न्यायालय की राय में, अपीलार्थी की तलाशी और उससे की गई अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी से धारा 50 की

आज्ञापक अपेक्षाओं का समाधान नहीं होता है । यह न्यायालय ऐसा निम्नलिखित कारणों से कह रहा है । प्रथम, मामले के अभिलेख से प्रकट यह स्वीकृत तथ्य है कि अपीलार्थी को किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष पेश नहीं किया गया था; द्वितीय, यह भी स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वोल्लिखित प्रथम कारण की वजह से अपीलार्थी की तलाशी और विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में नहीं की गई थी; तृतीय, यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि जिस छापामार दल ने उससे विनिषिद्धि वस्तु चरस की बरामदगी की थी, उसका कोई भी पुलिस पदधारी राजपत्रित अधिकारी नहीं था और न ही वे तलाशी ले सकते थे और इसलिए वे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन उपबंधित अनुसार किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजदूगी के सिवाय अपीलार्थी की तलाशी लेने और विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी करने के लिए सशक्त नहीं थे; चतुर्थ, संदिग्ध व्यक्ति के शरीर की तलाशी लेने और विनिषिद्ध वस्तुओं की बरामदगी करने के लिए यह तलाशी और बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 की अपेक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिए । अतः, अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आज्ञापक है कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी । यद्यपि, अभियोजन पक्ष ने छापामार दल के कुल पांच पुलिस पदधारियों (अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5) की परीक्षा की थी, किंतु उनमें से किसी ने भी यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया कि तलाशी/बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी । पूर्वोल्लिखित कारणों से इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर सका कि अपीलार्थी की तलाशी और विनिषिद्ध वस्तु (चरस) की उससे बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी । चूंकि, स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित आज्ञापक प्रक्रिया का अननुपालन अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक है और इस मामले में न्यायालय ने यह पाया है कि अभियोजन पक्ष विधि में यथा अपेक्षित अनुपालना को साबित करने में असफल रहा है, इसलिए अपीलार्थी अपनी दोषमुक्ति की ईप्सा करते हुए इसके फायदे का दावा करने का हकदार है । (पैरा 25, 26, 27, 28, 29 और 30)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 2 एस. सी. सी. 67 : **अशोक कुमार शर्मा** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	23
[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 609 : **विजय सिंह चंदूभा जडेजा** बनाम **गुजरात राज्य** ;	14, 22, 23, 27
[2011]	(2011) 6 एस. सी. सी. 392 : **स्वापक ओषधि नियंत्रण ब्यूरो** बनाम **सुखदेव राज सोढ़ी** ;	21
[1999]	(1999) 6 एस. सी. सी. 172 : **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह** ।	21

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 273.

2004 की दांडिक अपील स. 368 में उत्तरांचल उच्च न्यायालय, नैनीताल के तारीख 26 जून, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जे. सी. गुप्ता ज्येष्ठ काउंसेल, अनुराग तोमर, विक्रांत सिंह ब्यास और रामेश्वर प्रसाद गोयल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री आशुतोष कुमार शर्मा और जतिन्द्र कुमार भाटिया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे ने दिया ।

न्या. सप्रे – यह अपील अभियुक्त द्वारा 2004 की दांडिक अपील सं. 368 में उत्तरांचल उच्च न्यायालय, नैनीताल द्वारा तारीख 26 जून, 2006 को पारित उस अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने 2003 के विशेष सेशन विचारण सं. 20 अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं. 2, उधम सिंह नगर द्वारा तारीख 9 नवंबर, 2004 को पारित उस निर्णय और आदेश की पुष्टि की जिसके द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त को स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ

अधिनियम, 1985 (जिसे इसमें इसके पश्चात् स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम कहा गया है) की धारा 20 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे 10 वर्ष का कठोर कारावास भुगतने तथा 1,00,000/- रुपए के जुर्माने से दंडादिष्ट किया ।

2. इस अपील में अंतर्वलित विवाद्यक का मूल्यांकन करने के लिए इसमें नीचे कुछ तथ्यों का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है ।

3. संक्षेप में, अभियोजन का पक्षकथन निम्नलिखित है ।

4. तारीख 23 नवंबर, 2002 को पुलिस थाना, किच्छा में एक अज्ञात इत्तिलाकर्ता से एक गुप्त इत्तिला प्राप्त हुई कि एक व्यक्ति अपने साथ कुछ विनिषिद्ध वस्तुएं लिए हुए रोडवेज की बस में यात्रा कर रहा है । गुप्त इत्तिलाकर्ता ने यह भी इत्तिला दी कि संबंधित व्यक्ति बस से रेलवे क्रासिंग के निकट उतरेगा और विनिषिद्ध वस्तु के साथ "चौकी पुल भट्टा" नामक स्थान की ओर प्रस्थान करेगा ।

5. थाना अधिकारी-हरीश मेहरा, जो पुलिस थाना, किच्छा में ड्यूटी पर था, के नेतृत्व में छापामार दल ड्यूटी पर तैनात अन्य पदधारियों के साथ तद्नुसार इत्तिलाकर्ता द्वारा सूचित किए गए स्थान की ओर रवाना हुआ ।

6. सूचित किए गए स्थान पर पहुंचने के पश्चात् छापामार दल ने कुछ समय प्रतीक्षा की और उसके पश्चात् संबंधित व्यक्ति को चिह्नित किया, जो उन्हें सूचित किए गए स्थान की ओर जा रहा था । छापामार दल ने संबंधित व्यक्ति को रोका ।

7. इसके पश्चात्, छापमार दल के पुलिस कार्मिकों द्वारा अभियुक्त से पूछा गया कि क्या उसके कब्जे में विनिषिद्ध वस्तु "चरस" है । अभियुक्त को गिरफ्तार करने के पश्चात् पुलिस कार्मिकों द्वारा उसे यह सूचित किया गया कि उसे किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में तलाशी दिए जाने का विधिक अधिकार है, इस पर अभियुक्त ने यह उत्तर दिया कि उसे छापामार पुलिस दल पर भरोसा है और उनके द्वारा तलाशी लिए जाने की सम्मति दी ।

8. तद्नुसार, छापामार पुलिस दल ने उसकी तलाशी उनके द्वारा लिए जाने के बारे में लिखित में सम्मति अभिप्राप्त की । छापामार पुलिस दल ने फिर अभियुक्त की तलाशी ली, जिसके परिणामस्वरूप उसके शरीर से

लगभग 2.5 कि. ग्रा. की मात्र में "चरस" अभिगृहीत की ।

9. यही वह घटना है, जिसके लिए अपीलार्थी (अभियुक्त) का 2003 के विशेष सेशन विचारण सं. 20 में स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 20 के अधीन दंडनीय अपराध कारित करने के लिए अभियोजन चलाया गया था । अभियोजन पक्ष ने अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र (प्रदर्श 11) फाइल किया और अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए आरोप को सिद्ध करने के लिए पांच साक्षियों की परीक्षा की ।

10. अपर सेशन न्यायाधीश, त्वरित न्यायालय सं. 2, उधम सिंह नगर ने तारीख 9 नवंबर, 2004 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष अपीलार्थी के विरुद्ध मामले को युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करने में समर्थ रहा है और तद्नुसार उसे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 20 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और उसे दस वर्ष का कठोर कारावास भुगतने तथा 1,00,000/- रुपए के जुर्माने से दंडादिष्ट किया ।

11. अभियुक्त ने व्यथित होकर नैनीताल स्थित न्यायालय में अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अपील खारिज कर दी और अपर सेशन न्यायाधीश के आदेश को कायम रखा, जिससे व्यथित होकर अभियुक्त द्वारा विशेष इजाजत लेकर यह अपील फाइल की गई है ।

12. अपीलार्थी (अभियुक्त) की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री जे. सी. गुप्ता और प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री आशुतोष कुमार शर्मा को सुना ।

13. अपीलार्थी (अभियुक्त) की ओर से विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय की वैधता और शुद्धता को चुनौती देते हुए यह दलील दी कि दोनों निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी को प्रश्नगत अपराध कारित करने के लिए दोषी ठहरा कर और उसे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन अभिकथित अपराध के लिए दोषसिद्ध करके गलती की है ।

14. विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियोजन पक्ष स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के आज्ञापक अनुपालन को सुनिश्चित करने में असफल रहा है, क्योंकि छापामार पुलिस

दल द्वारा ली गई अभियुक्त के शरीर की अभिकथित तलाशी/उससे की गई विनिषिद्ध वस्तु (चरस) की बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार नहीं की गई थी, विद्वान् काउंसेल के अनुसार यह प्रक्रिया अपनाना **विजय सिंह चंदूभा जडेजा** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किए गए अनुसार आज्ञापक है ।

15. विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि अपीलार्थी से अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु के लिए तलाशी/बरामदगी केवल या तो किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की जानी चाहिए थी ।

16. विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि चूंकि अभियोजन पक्ष ने, स्वीकृततः, अपीलार्थी की तलाशी/उससे बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में नहीं की गई थी और इसलिए अपीलार्थी से की गई विनिषिद्ध पदार्थ "चरस" की बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 की अपेक्षाओं के उल्लंघन में होने के कारण अवैध हो जाती है और तद्द्वारा अपीलार्थी आरोपों से दोषमुक्त किए जाने का हकदार है ।

17. उत्तर में, प्रत्यर्थी (राज्य) की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय के तर्काधार और निकाले गए निष्कर्ष का समर्थन किया और इसलिए आक्षेपित निर्णय को कायम रखने की प्रार्थना की ।

18. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुनने और मामले के अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, हम आक्षेपित निर्णय को अपास्त और अपीलार्थी को दोषमुक्त करते हुए इस अपील को मंजूर करने के लिए आनत हैं ।

19. इस अपील में विचार करने के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि पुलिस पदधारियों द्वारा अपीलार्थी (अभियुक्त) से की गई अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु (चरस) की बरामदगी/ली गई तलाशी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार थी या नहीं ।

---

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 609.

20. दूसरे शब्दों में, इस अपील में विचार करने के लिए उद्भूत प्रश्न यह है कि क्या अभियोजन पक्ष यह साबित करने में समर्थ रहा है कि पुलिस पदधारियों द्वारा अपीलार्थी (अभियुक्त) की तलाशी लेने और उससे विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी करते समय स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित प्रक्रिया का भाषा और भाव की दृष्टि से पालन किया गया था या नहीं ।

21. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 की सही व्याप्ति और उद्देश्य, धारा 50 के अधीन प्राधिकारियों के कर्तव्य, बाध्यता और उन्हें प्रदत्त शक्तियां क्या हैं और धारा 50 की अपेक्षाओं का अनुपालन आज्ञापक है या निदेशात्मक, यह अब अनिर्णीत विषय नहीं है तथा **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह**[1] और विजय सिंह चंदूभा जडेजा (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के दो विनिश्चयों द्वारा अब ये विषय स्थिर किए गए हैं ।

22. वास्तव में, विजय सिंह चंदूभा जडेजा (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा किए गए विनिश्चय में पूर्वोलिखित प्रश्नों को इस विषय पर सभी पूर्ववर्ती निर्णयज विधि पर विचार करने के पश्चात् स्थिर किया गया था ।

23. विजय सिंह चंदूभा जडेजा (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय न्यायमूर्तियों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 की अपेक्षाएं आज्ञापक हैं और इसलिए धारा 50 के उपबंधों का कड़ाईपूर्वक पालन किया जाना चाहिए । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पुलिस अधिकारी द्वारा तलाशी लिए जाने के लिए आशयित व्यक्ति को उसकी तलाशी केवल किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट द्वारा लिए जाने के धारा 50 के अधीन उसके अधिकार के बारे में जानकारी देना आवश्यक है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राधिकृत अधिकारी के लिए भी समान रूप से यह आज्ञापक है कि वह संदिग्ध व्यक्ति को, यदि उसके द्वारा ऐसी अपेक्षा की जाए, किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी दिए जाने के उसके अधिकार की विद्यमानता के बारे में जानकारी दे और इस अपेक्षा का कड़ाईपूर्वक अनुपालन किया जाना आवश्यक है । यह विनिर्णय किया गया है कि हो सकता है संदिग्ध व्यक्ति स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 172.

अधिनियम की धारा 50 के अधीन उसे प्रदान किए गए अधिकार का प्रयोग करने का चयन करे या न करे, किंतु जहां तक अधिकारी का संबंध है, स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन उस पर यह बाध्यता अधिरोपित की गई है कि वह संदिग्ध व्यक्ति को किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष तलाशी दिए जाने के उसके अधिकार के बारे में जानकारी दे (**अशोक कुमार शर्मा** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] और **स्वापक ओषधि नियंत्रण ब्यूरो** बनाम **सुखदेव राज सोढ़ी**[2] वाले मामले भी देखें) ।

24. इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के पूर्वोलिखित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए हमें इस मामले में उद्भूत इस प्रश्न की परीक्षा करनी है कि क्या अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी की तलाशी लेते समय और विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी करते समय स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित आज्ञापक प्रक्रिया का पालन किया था या नहीं और यदि इसका पालन किया गया था, तो क्या यह तलाशी और बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी, जिससे कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी धारा 50 की अपेक्षाओं के अनुरूप हो सके ।

25. हमारे सुविचारित मत में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य से न तो यह सुझाव मिलता है और न ही यह साबित होता है कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे बरामदगी या तो किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी ।

26. अभियोजन का जो पक्षकथन है और जिसे दोनों निचले न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया पाया गया है, यह है कि चूंकि अपीलार्थी (अभियुक्त) को या तो किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में तलाशी दिए जाने के उसके अधिकार के बारे में जानकारी दी गई थी, किंतु तलाशी देने के संबंध में धारा 50 के अधीन अपीलार्थी को उपलब्ध उसके विधिक अधिकार के बारे में उसको बताने के बावजूद उसने पुलिस पदधारियों (छापामार दल) द्वारा ही तलाशी लिए जाने की लिखित में अपनी सम्मति दी थी, इसलिए दोनों निचले न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे

---

[1] (2013) 2 एस. सी. सी. 67.

[2] (2011) 6 एस. सी. सी. 392.

कि धारा 50 की अपेक्षाओं का पूरी तरह से पालन किया गया था और इसलिए अपीलार्थी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन दंडनीय अपराध के लिए दोषसिद्ध किए जाने का दायी है ।

27. हम दोनों निचले न्यायालयों के इस निष्कर्ष से सहमत नहीं हैं क्योंकि, हमारी राय में, अपीलार्थी की तलाशी और उससे की गई अभिकथित विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी से धारा 50 की आज्ञापक अपेक्षाओं का विजय सिंह चंदूभा जडेजा (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित अनुसार समाधान नहीं होता है । हम यह बात निम्नलिखित कारणों से कह रहे हैं ।

28. प्रथम, मामले के अभिलेख से प्रकट होने वाला यह स्वीकृत तथ्य है कि अपीलार्थी को किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी के समक्ष पेश नहीं किया गया था; द्वितीय, यह भी स्वीकृत तथ्य है कि पूर्वोल्लिखित प्रथम कारण की वजह से अपीलार्थी की तलाशी और विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में नहीं की गई थी; तृतीय, यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि जिस छापामार दल ने उससे विनिषिद्धि वस्तु चरस की बरामदगी की थी, उसका कोई भी पुलिस पदधारी राजपत्रित अधिकारी नहीं था और न ही वे तलाशी ले सकते थे और इसलिए वे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन उपबंधित अनुसार किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजदूगी के सिवाय अपीलार्थी की तलाशी लेने और विनिषिद्ध वस्तु "चरस" की बरामदगी करने के लिए सशक्त नहीं थे; चतुर्थ, संदिग्ध व्यक्ति के शरीर की तलाशी लेने और विनिषिद्ध वस्तुओं की बरामदगी करने के लिए यह तलाशी और बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 की अपेक्षाओं के अनुरूप होनी चाहिए । अतः, अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना आज्ञापक है कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी ।

29. यद्यपि, अभियोजन पक्ष ने छापामार दल के कुल पांच पुलिस पदधारियों (अभि. सा. 1 से अभि. सा. 5) की परीक्षा की थी, किंतु उनमें से किसी ने भी यह अभिसाक्ष्य नहीं दिया कि तलाशी/बरामदगी किसी मजिस्ट्रेट या किसी राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में की गई थी ।

30. पूर्वोल्लिखित कारणों से हमारी यह सुविचारित राय है कि

अभियोजन पक्ष यह साबित नहीं कर सका है कि अपीलार्थी की तलाशी और उससे विनिषिद्ध वस्तु (चरस) की बरामदगी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई थी । चूंकि, स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 के अधीन विहित आज्ञापक प्रक्रिया का अननुपालन अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक है और इस मामले में हमने यह पाया है कि अभियोजन पक्ष विधि में यथा अपेक्षित अनुपालना को साबित करने में असफल रहा है, इसलिए अपीलार्थी अपनी दोषमुक्ति की ईप्सा करने के लिए इसके फायदे का दावा करने का हकदार है ।

31. पूर्वगामी चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह अपील सफल होती है और मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । इसके परिणामस्वरूप अपीलार्थी की दोषसिद्धि अपास्त की जाती है और उसे प्रश्नगत आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

गतांक से आगे ....

दूसरी अनुसूची

(धारा 27 देखिए)

विश्वविद्यालय के परिनियम

1. **कुलाधिपति** – (1) कुलाधिपति की नियुक्ति, देश के शैक्षणिक या सार्वजनिक जीवन के विख्यात व्यक्तियों में से कार्य परिषद् द्वारा सिफारिश किए गए तीन से अन्यून व्यक्तियों के पैनल में से कुलाध्यक्ष द्वारा की जाएगी :

परन्तु यदि कुलाध्यक्ष इस प्रकार सिफारिश किए गए व्यक्तियों में से किसी का अनुमोदन न करे तो वह कार्य परिषद् से नई सिफारिशें मांग सकेगा ।

(2) कुलाधिपति पांच वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा और पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु कुलाधिपति अपनी पदावधि के अवसान होने पर भी तब तक पद पर बना रहेगा जब तक उसका उत्तरवर्ती अपना पद ग्रहण न कर ले ।

2. **कुलपति** – (1) कुलपति की नियुक्ति, खंड (2) के अधीन समिति द्वारा सिफारिश किए गए पैनल में से कुलाध्यक्ष द्वारा की जाएगी :

परन्तु यदि कुलाध्यक्ष पैनल में सम्मिलित व्यक्तियों में से किसी का अनुमोदन न करे तो वह विस्तारित नया पैनल मंगा सकेगा ।

(2) खंड (1) में निर्दिष्ट समिति में पांच व्यक्ति होंगे, जिनमें से तीन कार्य परिषद् द्वारा और दो कुलाध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे तथा कुलाध्यक्ष का एक नामनिर्देशिती समिति का संयोजक होगा :

परन्तु समिति का कोई भी सदस्य, उस विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे किसी महाविद्यालय या संस्था का कर्मचारी या उस विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी का सदस्य नहीं होगा ।

(3) कुलपति विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होगा ।

(4) कुलपति अपना पद ग्रहण करने की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक या सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, जो भी पहले हो, पद धारण करेगा और, यथास्थिति, वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होगा :

परन्तु पांच वर्ष की उक्त अवधि की समाप्ति पर भी वह अपने पद पर तब तक बना रहेगा जब तक उसका उत्तरवर्ती नियुक्त नहीं किया जाता है और वह अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता है :

परन्तु यह और कि कुलाध्यक्ष यह निदेश दे सकेगा कि ऐसा कोई कुलपति, जिसकी पदावधि समाप्त हो गई है, कुल मिलाकर एक वर्ष से अनधिक की ऐसी अवधि तक, जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट की जाए, पद पर बना रहेगा ।

(5) खंड (4) में किसी बात के होते हुए भी, कुलाध्यक्ष, कुलपति द्वारा अपना पद ग्रहण करने के पश्चात् किसी समय लिखित आदेश द्वारा कुलपति को अक्षमता, कदाचार या कानूनी उपबंधों के अतिक्रमण के आधारों पर पद से हटा सकेगा :

परन्तु कुलाध्यक्ष द्वारा ऐसा कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कुलपति को उसके विरुद्ध किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के विरोध में हेतुक दर्शित करने का युक्तियुक्त अवसर न दे दिया गया हो :

परन्तु यह और कि कुलाध्यक्ष ऐसा आदेश करने से पूर्व कुलपति से भी परामर्श करेगा :

परन्तु यह भी कि कुलाध्यक्ष ऐसा आदेश करने से पूर्व किसी समय जांच के लंबित रहने के दौरान उक्त कुलपति को निलंबनाधीन रख सकेगा ।

(6) कुलपति की परिलब्धियां और सेवा की अन्य शर्तें निम्नलिखित होंगी –

(i) कुलपति को केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर नियत दर से मासिक वेतन और मकान किराया भत्ता से भिन्न भत्ते दिए जाएंगे और यह अपनी पदावधि के दौरान बिना किराया दिए सुसज्जित निवास-स्थान का उपयोग करने का हकदार होगा तथा ऐसे निवास-स्थान के रखरखाव की बाबत कुलपति को कोई प्रभार नहीं देना होगा ;

(ii) कुलपति ऐसे सेवांत फायदों और भत्तों का हकदार होगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा, समय-समय पर, नियत किए जाएं :

परन्तु जहां विश्वविद्यालय या उसके द्वारा चलाए जा रहे किसी महाविद्यालय या संस्था का अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय या ऐसे अन्य विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे या विशेषाधिकार दिए गए

किसी महाविद्यालय संस्था का कर्मचारी कुलपति नियुक्त किया जाता है, वहां उसे ऐसी भविष्य निधि में, जिसका वह सदस्य है, अभिदाय करते रहने के लिए अनुज्ञात किया जा सकेगा और विश्वविद्यालय उस भविष्य निधि में उस व्यक्ति के खाते में उसी दर से अभिदाय करेगा, जिससे वह व्यक्ति कुलपति के रूप में अपनी नियुक्ति के ठीक पहले अभिदाय कर रहा था :

परन्तु यह और कि जहां ऐसा कर्मचारी किसी पेंशन स्कीम का सदस्य रहा था, वहां विश्वविद्यालय ऐसी स्कीम में आवश्यक अभिदाय करेगा ;

(iii) कुलपति ऐसी दरों से, जो कार्य परिषद् द्वारा नियत की जाएं, यात्रा भत्ते के लिए हकदार होगा ;

(iv) कुलपति किसी कलैंडर वर्ष में तीस दिन की दर से पूर्ण वेतन पर छुट्टी का हकदार होगा और छुट्टी, पन्द्रह दिन की दो अर्धवार्षिक किस्तों में प्रत्येक वर्ष जनवरी तथा जुलाई के प्रथम दिन को अग्रिम रूप से उसके खाते में जमा कर दी जाएंगी :

परन्तु यदि कुलपति किसी आधे वर्ष के चालू रहने के दौरान कुलपति का पदभार ग्रहण करता है या पदत्याग करता है तो अनुपाततः सेवा के प्रत्येक संपूरित मास के लिए अढ़ाई दिन की दर से छुट्टी को जमा किया जाएगा ।

(v) कुलपति, उपखंड (iv) में निर्दिष्ट छुट्टी के अतिरिक्त, सेवा के प्रत्येक संपूरित वर्ष के लिए बीस दिन की दर से अर्ध-वेतन छुट्टी का भी हकदार होगा और इस अर्ध-वेतन छुट्टी का उपभोग चिकित्सीय प्रमाणपत्र के आधार पर पूर्ण वेतन पर परिवर्तित छुट्टी के रूप में भी किया जा सकेगा :

परन्तु जब ऐसी परिवर्तित छुट्टी का उपभोग किया जाता है तो अर्ध-वेतन छुट्टी की दुगुनी मात्रा बाकी अर्ध-वेतन छुट्टी से विकलित की जाएगी ।

(7) यदि कुलपति का पद मृत्यु, पदत्याग के कारण या अन्यथा रिक्त हो जाता है, अथवा यदि वह अस्वस्थता के कारण या किसी अन्य कारण से अपने कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है तो प्रतिकुलपति, कुलपति के कर्तव्यों का पालन करेगा :

परन्तु यदि प्रतिकुलपति उपलब्ध नहीं है, तो ज्येष्ठतम आचार्य कुलपति के कर्तव्यों का तब तक पालन करेगा जब तक, यथास्थिति, नया कुलपति पद ग्रहण नहीं कर लेता या विद्यमान कुलपति अपने पद के कर्तव्यों को फिर से संभाल नहीं लेता ।

3. **कुलपति की शक्तियां और कर्तव्य** – (1) कुलपति, कार्य परिषद्, विद्या परिषद् और वित्त समिति का पदेन अध्यक्ष होगा और कुलाधिपति की अनुपस्थिति में उपाधियां प्रदान करने के लिए आयोजित दीक्षांत समारोहों और सभा के अधिवेशनों की अध्यक्षता करेगा ।

(2) कुलपति, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या अन्य निकाय के किसी अधिवेशन में उपस्थित रहने और उसे संबोधित करने का हकदार होगा किन्तु वह उसमें मत देने का तब तक हकदार नहीं होगा जब तक वह ऐसे प्राधिकारी या निकाय का सदस्य न हो ।

(3) यह देखना कुलपति का कर्तव्य होगा कि इस अधिनियम, परिनियमों, अध्यादेशों और विनियमों का सम्यक् रूप से पालन किया जाता है और उसे ऐसा पालन सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सभी शक्तियां प्राप्त होंगी ।

(4) कुलपति को विश्वविद्यालय में समुचित अनुशासन बनाए रखने के लिए आवश्यक सभी शक्तियां होंगी और वह किन्हीं शक्तियों को किसी ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को, जिन्हें वह ठीक समझे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

(5) कुलपति को कार्य परिषद्, विद्या परिषद् और वित्त समिति के अधिवेशन बुलाने या बुलवाने की शक्ति होगी ।

4. **प्रतिकुलपति** – (1) प्रतिकुलपति की नियुक्ति कार्य परिषद् द्वारा कुलपति की सिफारिश पर की जाएगी :

परन्तु जहां कुलपति की सिफारिश कार्य परिषद् द्वारा स्वीकार नहीं की जाती है वहां उस मामले को कुलाध्यक्ष को निर्दिष्ट किया जाएगा जो कुलपति द्वारा सिफारिश किए गए व्यक्ति को या तो नियुक्त करेगा या कुलपति से कार्य परिषद् के लिए किसी अन्य व्यक्ति की सिफारिश करने के लिए कह सकेगा :

परन्तु यह और कि कार्य परिषद्, कुलपति की सिफारिश पर, किसी आचार्य को आचार्य के रूप में अपने कर्तव्यों के अतिरिक्त प्रतिकुलपति के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए नियुक्त कर सकेगी ।

(2) प्रतिकुलपति की पदावधि वह होगी जो कार्य परिषद् द्वारा विनिश्चित की जाए, किन्तु किसी भी दशा में वह पांच वर्ष से अधिक नहीं होगी या कुलपति की पदावधि की समाप्ति तक होगी, इनमें से जो भी पहले हो :

परन्तु ऐसा प्रतिकुलपति, जिसकी पदावधि समाप्त हो गई है, पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा :

परन्तु यह और कि प्रतिकुलपति हर दशा में सत्तर वर्ष की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो जाएगा :

परन्तु यह और भी कि प्रतिकुलपति, परिनियम 2 के खंड (7) के अधीन कुलपति के कर्तव्यों का निर्वहन करने के दौरान, प्रतिकुलपति के रूप में अपनी पदावधि की समाप्ति पर भी पद पर तब तक बना रहेगा जब तक, यथास्थिति, कुलपति अपना पद फिर से नहीं संभाल लेता या नया कुलपति अपना पद ग्रहण नहीं कर लेता ।

(3) प्रतिकुलपति की उपलब्धियां तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो अध्यादेशों द्वारा विहित की जाएं ।

(4) प्रतिकुलपति, कुलपति की ऐसे विषयों के संबंध में सहायता करेगा जो इस निमित्त कुलपति द्वारा समय-समय पर विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन भी करेगा जो कुलपति द्वारा उसे सौंपे या प्रत्यायोजित किए जाएं ।

5. **विद्यापीठों के संकायाध्यक्ष** – (1) प्रत्येक विद्यापीठ के संकायाध्यक्ष की नियुक्ति, कुलपति द्वारा उस विद्यापीठ के आचार्यों में से ज्येष्ठता के क्रम के चक्रानुक्रम से तीन वर्ष की अवधि के लिए की जाएगी :

परन्तु यदि विद्यापीठ में केवल एक आचार्य है या कोई आचार्य नहीं है तो तत्समय संकायाध्यक्ष की नियुक्ति विद्यापीठ के आचार्य, यदि कोई हो, और सह-आचार्यों में से ज्येष्ठता के क्रम में चक्रानुक्रम से की जाएगी :

परन्तु यह और कि संकायाध्यक्ष पैंसठ की आयु प्राप्त कर लेने पर उस रूप में पद पर नहीं रहेगा ।

(2) जब संकायाध्यक्ष का पद रिक्त है या जब संकायाध्यक्ष, रुग्णता, अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तो उसके पद के कर्तव्यों का पालन, यथास्थिति, विद्यापीठ के ज्येष्ठतम आचार्य या सह-आचार्य द्वारा किया जाएगा ।

(3) संकायाध्यक्ष विद्यापीठ का अध्यक्ष होगा और विद्यापीठ में अध्यापन और अनुसंधान के संचालन तथा उनका स्तर बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होगा और उसके ऐसे अन्य कृत्य भी होंगे जो अध्यादेशों द्वारा विहित किए जाएं ।

(4) संकायाध्यक्ष को, यथास्थिति, अध्ययन बोर्डों या विद्यापीठ की समितियों के किसी अधिवेशन में उपस्थित होने और बोलने का अधिकार होगा, किन्तु जब तक वह उसका सदस्य नहीं है तब तक उसे उसमें मत देने का अधिकार नहीं होगा ।

6. **कुलसचिव** – (1) कुलसचिव की नियुक्ति, इस प्रयोजन के लिए गठित चयन समिति की सिफारिश पर कार्य परिषद् द्वारा की जाएगी और वह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होगा ।

(2) उसकी नियुक्ति पांच वर्ष की अवधि के लिए की जाएगी और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा ।

(3) कुलसचिव की परिलब्धियां तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो, समय-समय पर, कार्य परिषद् द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु कुलसचिव बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर सेवानिवृत्त हो जाएगा ।

(4) जब कुलसचिव का पद रिक्त है या जब तक कुल सचिव रुग्णता, अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है तब उस पद के कर्तव्यों का पालन ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाएगा जिसे कुलपति उस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे ।

(5) (क) कुलसचिव को, अध्यापकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद को छोड़कर, ऐसे कर्मचारियों के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई करने की जो कार्य परिषद् के आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं तथा जांच होने तक उन्हें निलंबित करने, उन्हें चेतावनी देने या उन पर परिनिंदा की या वेतनवृद्धि रोकने की शास्ति अधिरोपित करने की शक्ति होगी :

परन्तु ऐसी कोई शास्ति तब तक अधिरोपित नहीं की जाएगी जब तक व्यक्ति को उसके संबंध में की जाने के लिए प्रस्थापित कार्रवाई के विरुद्ध कारण बताने का उचित अवसर नहीं दे दिया गया हो ।

(ख) उपखंड (क) में विनिर्दिष्ट कोई शास्ति अधिरोपित करने के कुलसचिव के आदेश के विरुद्ध अपील कुलपति को होगी ।

(ग) ऐसे मामले में, जहां जांच से यह प्रकट हो कि कुलसचिव की शक्ति के बाहर का कोई दंड अपेक्षित है वहां, कुलसचिव, जांच के पूरा होने पर कुलपति को अपनी सिफारिशों सहित एक रिपोर्ट देगा :

परन्तु शास्ति अधिरोपित करने के कुलपति के आदेश के विरुद्ध अपील कार्य परिषद् को होगी ।

(6) कुलसचिव, कार्य परिषद् और विद्या परिषद् का पदेन सचिव होगा, किन्तु यह इन प्राधिकारियों में से किसी भी प्राधिकारी का सदस्य नहीं समझा जाएगा और वह सभा का पदेन सदस्य-सचिव होगा ।

(7) कुलसचिव का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) विश्वविद्यालय के अभिलेख, सामान्य मुद्रा और ऐसी अन्य संपत्ति को, जो कार्य परिषद् उसके भारसाधन में सौंपे, अभिरक्षा में रखे ;

(ख) सभा, कार्य परिषद्, विद्या परिषद् और उन प्राधिकारियों द्वारा नियुक्त किन्हीं समितियों के अधिवेशन बुलाने की सभी सूचनाएं निकाले ;

(ग) सभा, कार्य परिषद्, विद्या परिषद् के तथा उन प्राधिकारियों द्वारा नियुक्त किन्हीं समितियों के सभी अधिवेशनों के कार्यवृत्त रखे ;

(घ) सभा, कार्य परिषद् और विद्या परिषद् के शासकीय पत्र-व्यवहार करे ;

(ङ) कुलाध्यक्ष को विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों के अधिवेशनों की कार्य सूची की प्रतियां, जैसे ही वे जारी की जाएं और इन अधिवेशनों के कार्यवृत्त दे ;

(च) विश्वविद्यालय द्वारा या उसके विरुद्ध वादों या कार्यवाहियों में विश्वविद्यालय का प्रतिनिधित्व करे, मुख्तारनामों पर हस्ताक्षर करे तथा अभिवचनों को सत्यापित करे या इस प्रयोजन के लिए अपना प्रतिनिधि प्रतिनियुक्त करे ; और

(छ) ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करे जो परिनियमों, अध्यादेशों या विनियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएं अथवा जिनकी कार्य परिषद् या कुलपति द्वारा, समय-समय पर, अपेक्षा की जाए ।

7. **वित्त अधिकारी** – (1) वित्त अधिकारी की नियुक्ति इस प्रयोजन के लिए गठित चयन समिति की सिफारिश पर कार्य परिषद् द्वारा की जाएगी और वह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होगा ।

(2) वित्त अधिकारी की नियुक्ति पांच वर्ष की अवधि के लिए की जाएगी और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा ।

(3) वित्त अधिकारी की परिलब्धियां तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ऐसी होंगी, जो समय-समय पर कार्य परिषद् द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु वित्त अधिकारी बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर सेवानिवृत्त हो जाएगा ।

(4) जब वित्त अधिकारी का पद रिक्त है या जब वित्त अधिकारी रुग्णता, अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है तब उस पद के कर्तव्यों का पालन उस व्यक्ति द्वारा किया जाएगा, जिसे कुलपति उस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे ।

(5) वित्त अधिकारी, वित्त समिति का पदेन सचिव होगा, किन्तु वह ऐसी समिति का सदस्य नहीं समझा जाएगा ।

(6) वित्त अधिकारी –

(क) विश्वविद्यालय की निधियों का साधारण पर्यवेक्षण करेगा और उसकी वित्तीय नीति के संबंध में उसे सलाह देगा ; और

(ख) ऐसे अन्य वित्तीय कृत्यों का पालन करेगा जो उसे कार्य परिषद् द्वारा सौंपे जाएं या जो परिनियमों या अध्यादेशों द्वारा विहित किए जाएं ।

(7) कार्य परिषद् के नियंत्रण के अधीन रहते हुए, वित्त अधिकारी –

(क) विश्वविद्यालय की संपत्ति और विनिधानों को, जिनके अंतर्गत न्यास और विन्यास की संपत्ति भी है, धारण करेगा और उनका प्रबंध करेगा ;

(ख) यह सुनिश्चित करेगा कि कार्य परिषद् द्वारा एक वर्ष के लिए नियत आवर्ती और अनावर्ती व्यय की सीमाओं से अधिक व्यय न किया जाए और सभी धन का व्यय उसी प्रयोजन के लिए किया जाए, जिसके लिए वह मंजूर या आबंटित किया गया है ;

(ग) विश्वविद्यालय के वार्षिक लेखा और बजट तैयार किए जाने और उनको कार्य परिषद् को प्रस्तुत करने के लिए उत्तरदायी होगा ;

(घ) नकद और बैंक अतिशेषों तथा विनिधानों की स्थिति पर बराबर नजर रखेगा ;

(ङ) राजस्व के संग्रहण की प्रगति पर नजर रखेगा और संग्रहण करने के लिए अपनाए जाने वाले तरीकों के विषय में सलाह देगा ;

(च) यह सुनिश्चित करेगा कि भवन, भूमि, फर्नीचर और उपस्कर के रजिस्टर अद्यतन रखे जाएं तथा सभी कार्यालयों, विभागों, केन्द्रों और विशेषित प्रयोगशालाओं के उपस्कर तथा अन्य उपयोज्य सामग्री के स्टाक की जांच की जाए ;

(छ) अप्राधिकृत व्यय और अन्य वित्तीय अनियमितताओं को कुलपति की जानकारी में लाएगा तथा व्यतिक्रमी व्यक्तियों के विरुद्ध समुचित कार्रवाई का सुझाव देगा ;

(ज) विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे किसी कार्यालय, विभाग, केन्द्र, प्रयोगशाला, महाविद्यालय या संस्था से कोई ऐसी जानकारी या विवरणियां मांगेगा जो वह अपने कर्तव्यों के पालन के लिए आवश्यक समझे ।

(8) वित्त अधिकारी की या कार्य परिषद् द्वारा इस निमित्त सम्यक् रूप से प्राधिकृत व्यक्ति या व्यक्तियों की विश्वविद्यालय को संदेय किसी धन के बारे में रसीद, उस धन के संदाय के लिए पर्याप्त उन्मोचन होगी ।

8. **परीक्षा नियंत्रक** – (1) परीक्षा नियंत्रक की नियुक्ति इस प्रयोजन के लिए गठित चयन समिति की सिफारिश पर कार्य परिषद् द्वारा की जाएगी और वह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होगा ।

(2) परीक्षा नियंत्रक की नियुक्ति पांच वर्ष की अवधि के लिए की जाएगी और वह पुनर्नियुक्ति के लिए पात्र होगा ।

(3) परीक्षा नियंत्रक की परिलब्धियां तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ऐसी होंगी जो, समय-समय पर, कार्य परिषद् द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु परीक्षा नियंत्रक बासठ वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने पर सेवानिवृत्त

हो जाएगा ।

(4) जब परीक्षा नियंत्रक का पद रिक्त है या जब परीक्षा नियंत्रक रुग्णता, अनुपस्थिति के कारण या किसी अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है तब उस पद के कर्तव्यों का पालन उस व्यक्ति द्वारा किया जाएगा जिसे कुलपति उस प्रयोजन के लिए नियुक्त करे ।

(5) परीक्षा नियंत्रक, विश्वविद्यालय की परीक्षाएं अध्यादेशों द्वारा विहित रीति में करवाएगा और उनका अधीक्षण करेगा ।

9. **पुस्तकालयाध्यक्ष** – (1) पुस्तकालयाध्यक्ष की नियुक्ति कार्य परिषद् द्वारा इस प्रयोजन के लिए गठित चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी और वह विश्वविद्यालय का पूर्णकालिक वैतनिक अधिकारी होगा ।

(2) पुस्तकालयाध्यक्ष, ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जो उसे कार्य परिषद् द्वारा सौंपे जाएं ।

10. **सभा के अधिवेशन** – (1) सभा का वार्षिक अधिवेशन, जब तक कि किसी वर्ष के संबंध में सभा द्वारा कोई अन्य तारीख नियत न की हो, कार्य परिषद् द्वारा नियत तारीख को होगा ।

(2) सभा के वार्षिक अधिवेशन में, पूर्व वर्ष के दौरान विश्वविद्यालय के कार्यकरण की रिपोर्ट, प्राप्तियों और व्यय के विवरण, यथा संपरीक्षित तुलनपत्र और अगले वर्ष के लिए वित्तीय प्राक्कलनों सहित, प्रस्तुत की जाएगी ।

(3) खंड (2) में निर्दिष्ट प्राप्तियां और व्यय का विवरण, तुलनपत्र और वित्तीय प्राक्कलनों की प्रति सभा के प्रत्येक सदस्य को वार्षिक अधिवेशन की तारीख से कम से कम सात दिन पूर्व भेजी जाएगी ।

(4) सभा के विशेष अधिवेशन, कार्य परिषद् या कुलपति द्वारा, या यदि कोई कुलपति नहीं है तो प्रतिकुलपति द्वारा या यदि कोई प्रतिकुलपति नहीं है तो कुलसचिव द्वारा बुलाए जा सकेंगे ।

(5) सभा के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति सभा के ग्यारह सदस्यों से होगी ।

11. **कार्य परिषद् के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति** – कार्य परिषद् के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति कार्य परिषद् के सात सदस्यों से होगी ।

12. **कार्य परिषद् की शक्तियां और कृत्य** – (1) कार्य परिषद् को विश्वविद्यालय के राजस्व और संपत्ति के प्रबंध और प्रशासन की तथा

विश्वविद्यालय के सभी ऐसे प्रशासनिक कार्यकलापों के, जिनके लिए अन्यथा उपबंध नहीं किया गया है, संचालन की शक्ति होगी ।

(2) इस अधिनियम, परिनियमों और अध्यादेशों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कार्य परिषद् को, उसमें निहित अन्य सभी शक्तियों के अतिरिक्त, निम्नलिखित शक्तियां होंगी, अर्थात् :–

(i) अध्यापन और शैक्षणिक पदों का, जिनके अंतर्गत विभागाध्यक्ष भी हैं, सृजन करना, ऐसे पदों की संख्या तथा उनकी परिलब्धियां अवधारित करना और आचार्यों, सह-आचार्यों, सहायक आचार्यों तथा अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के कर्तव्यों और सेवा की शर्तों को परिनिश्चित करना :

परंतु अध्यापकों और शैक्षणिक कर्मचारिवृंद की संख्या और अर्हताओं के संबंध में कोई कार्रवाई कार्य-परिषद् द्वारा विद्या परिषद् की सिफारिश पर विचार करने के पश्चात् ही की जाएगी ;

(ii) उतने आचार्यों, सह-आचार्यों, सहायक आचार्यों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद, जिनके अंतर्गत विभागाध्यक्ष भी है, जितने आवश्यक हों, इस प्रयोजन के लिए गठित चयन समिति की सिफारिश पर नियुक्त करना तथा उनमें अस्थायी रिक्तियों को भरना ;

(iii) विभिन्न विद्यापीठों, विभागों और केन्द्रों में अध्यापन कर्मचारिवृंद की संयुक्त नियुक्तियां करके अंतरापृष्ठीय अनुसंधान का संवर्धन करना ;

(iv) प्रशासनिक, अनुसचिवीय और अन्य आवश्यक पदों का सृजन करना तथा उनके कर्तव्य और उनकी सेवा की शर्तें परिनिश्चित करना और अध्यादेशों द्वारा विहित रीति में उन पर नियुक्तियां करना ;

(v) कुलाधिपति और कुलपति से भिन्न विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी को अनुपस्थिति छुट्टी देना तथा ऐसे अधिकारी की अनुपस्थिति में उसके कृत्यों के निर्वहन के लिए आवश्यक व्यवस्था करना ;

(vi) परिनियमों और अध्यादेशों के अनुसार कर्मचारियों में अनुशासन का विनियमन करना और उसका पालन कराना ;

(vii) विश्वविद्यालय के वित्त, लेखाओं, विनिधानों, संपत्ति,

कामकाज तथा सभी अन्य प्रशासनिक कार्यकलापों का प्रबंध तथा विनियमन करना और उस प्रयोजन के लिए उतने अभिकर्ताओं की नियुक्ति करना, जितने वह ठीक समझे ;

(viii) वित्त समिति की सिफारिश पर वर्ष भर के कुल आवर्ती और कुल अनावर्ती व्यय की सीमाएं नियत करना ;

(ix) विश्वविद्यालय के धन को, जिसके अंतर्गत कोई अनुपयोजित आय भी है, समय-समय पर ऐसे स्टाकों, निधियों, शेयर या प्रतिभूतियों में जो वह ठीक समझे या भारत में स्थावर संपत्ति के क्रय में विनिहित करना, जिसके अंतर्गत ऐसे विनिधान में समय-समय पर परिवर्तन करने की शक्ति भी है ;

(x) विश्वविद्यालय की ओर से किसी जंगम या स्थावर संपत्ति का अंतरण करना या अंतरण स्वीकार करना ;

(xi) विश्वविद्यालय के कार्य को चलाने के लिए आवश्यक भवनों, परिसरों, साधित्रों और अन्य साधनों की व्यवस्था करना ;

(xii) विश्वविद्यालय की ओर से संविदाएं करना, उनमें परिवर्तन करना, उन्हें कार्यान्वित और रद्द करना ;

(xiii) विश्वविद्यालय के ऐसे कर्मचारियों और छात्रों की, जो किसी कारण से, व्यथित अनुभव करें, किन्हीं शिकायतों को ग्रहण करना, उनका न्यायनिर्णयन करना और यदि ठीक समझा जाता है तो उन शिकायतों को दूर करना ;

(xiv) परीक्षकों और अनुसीमकों को नियुक्त करना और यदि आवश्यक हो तो उन्हें हटाना तथा उनकी फीस, परिलब्धियां और यात्रा भत्ते तथा अन्य भत्ते, विद्या परिषद् से परामर्श करने के पश्चात्, नियत करना ;

(xv) विश्वविद्यालय के लिए सामान्य मुद्रा का चयन करना और ऐसी मुद्रा के उपयोग की व्यवस्था करना ;

(xvi) छात्राओं के निवास के लिए ऐसे विशेष इंतजाम करना, जो आवश्यक हो ;

(xvii) अध्येतावृत्तियां, छात्रवृत्तियां, अध्ययनवृत्तियां, पदक और पुरस्कार संस्थित करना ;

(xviii) अभ्यागत आचार्यों, प्रतिष्ठित आचार्यों, परामर्शदाताओं तथा विद्वानों की नियुक्ति का उपबंध करना और ऐसी नियुक्तियों के निबंधनों और शर्तों का अवधारण करना ;

(xix) ज्ञान की वृद्धि के लिए उद्योग और गैर-सरकारी अभिकरणों के साथ भागीदारी करना और ऐसी भागीदारी के लाभों से एक समग्र निधि स्थापित करना ; और

(xx) ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग करना और ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करना जो इस अधिनियम या परिनियमों द्वारा उसे प्रदत्त किए जाएं या उस पर अधिरोपित किए जाएं ।

13. **विद्या परिषद् के अधिवेशनों के लिए गणपूर्ति** – विद्या परिषद् के अधिवेशनों के लिए गणपूर्ति विद्या परिषद् के नौ सदस्यों से होगी ।

14. **विद्या परिषद् की शक्तियां और कृत्य** – इस अधिनियम, परिनियमों और अध्यादेशों के अधीन रहते हुए, विद्या परिषद् को, उसमें निहित अन्य सभी शक्तियों के अतिरिक्त, निम्नलिखित शक्तियां होंगी, अर्थात् :–

(क) विश्वविद्यालय की शैक्षणिक नीतियों का साधारण पर्यवेक्षण करना और शिक्षण के तरीकों, महाविद्यालयों और संस्थाओं में अध्यापन का समन्वय करने, अनुसंधान के मूल्यांकन या शैक्षणिक स्तरों में सुधार के बारे में निदेश देना ;

(ख) विद्यापीठों के बीच समन्वय स्थापित करना और बढ़ाना तथा ऐसी समितियों या बोर्डों की स्थापना या नियुक्ति करना जो इस प्रयोजन के लिए आवश्यक समझी जाएं ;

(ग) साधारण शैक्षणिक अभिरुचि के विषयों पर स्वप्रेरणा से या किसी विद्यापीठ या कार्य परिषद् द्वारा निर्देश किए जाने पर विचार करना और उन पर समुचित कार्रवाई करना ; और

(घ) विश्वविद्यालय के शैक्षणिक कार्यकरण, अनुशासन, निवास, प्रवेश, अध्येतावृत्तियों और छात्रवृत्तियों के दिए जाने और फीस, रियायतों, सामूहिक जीवन और हाजिरी के संबंध में परिनियमों और अध्यादेशों से संगत विनियम और नियम बनाना ।

15. **विद्यापीठ और विभाग** – (1) विश्वविद्यालय में उतनी विद्यापीठें होंगी, जितनी परिनियमों में विनिर्दिष्ट की जाएं ।

(2) प्रत्येक विद्यापीठ का एक विद्यापीठ बोर्ड होगा और प्रथम विद्यापीठ बोर्ड के सदस्य, कार्य परिषद् द्वारा तीन वर्ष की अवधि के लिए नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे ।

(3) विद्यापीठ बोर्ड की संरचना, शक्तियां और उसके कृत्य अध्यादेशों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

(4) विद्यापीठ बोर्ड के अधिवेशनों का संचालन और ऐसे अधिवेशनों के लिए अपेक्षित गणपूर्ति अध्यादेशों द्वारा विहित की जाएगी ।

(5) (क) प्रत्येक विद्यापीठ में उतने विभाग होंगे जितने अध्यादेशों द्वारा उनमें रखे जाएं :

परन्तु कार्य परिषद्, विद्या परिषद् की सिफारिश पर, ऐसे अध्ययन केन्द्र स्थापित कर सकेगी, जिनमें विश्वविद्यालय के उतने शिक्षक लगाए जाएंगे, जितने कार्य परिषद् आवश्यक समझे ।

(ख) प्रत्येक विभाग में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :—

(i) विभाग के अध्यापक ;

(ii) विभाग में अनुसंधान करने वाले व्यक्ति ;

(iii) विद्यापीठ का संकायाध्यक्ष ;

(iv) विभाग से संलग्न मानद आचार्य, यदि कोई हों ; और

(v) ऐसे अन्य व्यक्ति, जो अध्यादेशों के उपबंधों के अनुसार विभाग के सदस्य हों ।

16. **अध्ययन बोर्ड** – (1) प्रत्येक विभाग में एक अध्ययन बोर्ड होगा ।

(2) अध्ययन बोर्ड का गठन और उसके सदस्यों की पदावधि अध्यादेशों द्वारा विहित की जाएगी ।

(3) विद्या परिषद् के पूर्ण नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन रहते हुए, अध्ययन बोर्ड के कृत्य विभिन्न उपाधियों के लिए अनुसंधानार्थ विषयों और अनुसंधान उपाधियों की अन्य अपेक्षाओं का अनुमोदन करना तथा संबद्ध विद्यापीठ बोर्ड को ऐसी रीति से, जो अध्यादेशों द्वारा विहित की जाए, निम्नलिखित के बारे में सिफारिश करना –

(क) अध्ययन पाठ्यक्रम और ऐसे पाठ्यक्रमों के लिए, जिनमें

अनुसंधान उपाधि नहीं है, परीक्षकों की नियुक्ति ;

(ख) अनुसंधान पर्यवेक्षकों की नियुक्ति ; और

(ग) अध्यापन और अनुसंधान के स्तर में सुधार के लिए उपाय :

परन्तु अध्ययन बोर्ड के उपर्युक्त कृत्यों का पालन, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् ठीक तीन वर्ष की अवधि के दौरान विभाग द्वारा किया जाएगा ।

17. **वित्त समिति** – (1) वित्त समिति में निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् :–

(i) कुलपति ;

(ii) प्रतिकुलपति ;

(iii) सभा द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाने वाला एक व्यक्ति ;

(iv) कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट तीन व्यक्ति जिनमें से कम से कम एक कार्य परिषद् का सदस्य होगा ; और

(v) कुलाध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट किए जाने वाले तीन व्यक्ति ।

(2) वित्त समिति के अधिवेशन के लिए गणपूर्ति वित्त समिति के पांच सदस्यों से होगी ।

(3) वित्त समिति के पदेन सदस्यों से भिन्न सभी सदस्य तीन वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे ।

(4) यदि वित्त समिति का कोई सदस्य उसके किसी विनिश्चय से सहमत नहीं है तो उसे विसम्मति का कार्यवृत्त अभिलिखित करने का अधिकार होगा ।

(5) लेखाओं की परीक्षा और व्यय की प्रस्थापनाओं की संवीक्षा करने के लिए वित्त समिति का अधिवेशन प्रत्येक वर्ष में कम से कम तीन बार होगा ।

(6) पदों के सृजन से संबंधित सभी प्रस्थापनाओं की ओर उन मदों की, जो बजट में सम्मिलित नहीं की गई हैं, कार्य परिषद् द्वारा उन पर विचार किए जाने से पूर्व, वित्त समिति द्वारा परीक्षा की जाएगी ।

(7) वित्त अधिकारी द्वारा तैयार किए गए विश्वविद्यालय के वार्षिक लेखे और वित्तीय प्राक्कलन, वित्त समिति के समक्ष विचार तथा टीका-टिप्पणी के

लिए रखे जाएंगे और तत्पश्चात् कार्य परिषद् को अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किए जाएंगे ।

(8) वित्त समिति वर्ष के लिए कुल आवर्ती व्यय और कुल अनावर्ती व्यय के लिए सीमाओं की सिफारिश करेगी जो उस विश्वविद्यालय की आय और उसके संसाधनों पर आधारित होगी (जिसके अंतर्गत, उत्पादक कार्यों की दशा में, उधारों के आगम भी हो सकेंगे) ।

18. **चयन समिति** – (1) आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, कुलसचिव, वित्त अधिकारी, परीक्षा नियंत्रक, पुस्तकालयाध्यक्ष तथा विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जाने वाले महाविद्यालयों और संस्थाओं के प्राचार्यों के पदों पर नियुक्ति के लिए कार्य परिषद् को सिफारिश करने के लिए चयन समितियां होंगी ।

(2) नीचे की सारणी के स्तंभ 1 में विनिर्दिष्ट पदों पर नियुक्ति के लिए चयन समिति में कुलपति, कुलाध्यक्ष का एक नामनिर्देशिती और उक्त सारणी के स्तंभ 2 की तत्संबंधी प्रविष्टि में विनिर्दिष्ट व्यक्ति होंगे ।

सारणी

1	2
आचार्य	(i) विद्यापीठ का संकायाध्यक्ष ।
	(ii) विभागाध्यक्ष, यदि वह आचार्य है ।
	(iii) तीन व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हों, कार्य परिषद् द्वारा उन नामों के पैनल में से नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे, जिनकी सिफारिश विद्या परिषद् द्वारा उस विषय में, जिससे आचार्य का संबंध होगा, उनके विशेष ज्ञान या रुचि के कारण की गई हो ।
सह-आचार्य/सहायक आचार्य	(i) विभागाध्यक्ष ।
	(ii) कुलपति द्वारा नामनिर्दिष्ट एक आचार्य ।

1	2
	(iii) दो व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हों, कार्य परिषद् द्वारा उन नामों के पैनल में से नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे, जिनकी सिफारिश विद्या परिषद् द्वारा उस विषय में जिससे सह-आचार्य या सहायक-आचार्य का संबंध होगा, उनके विशेष ज्ञान या रुचि के कारण की गई हो ।
कुलसचिव/वित्त अधिकारी/ परीक्षा नियंत्रक	(i) कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट उसके दो सदस्य ।
	(ii) कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट ऐसा एक व्यक्ति जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हो ।
पुस्तकालयाध्यक्ष	(i) कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट दो व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हों, जिन्हें पुस्तकालय विज्ञान या पुस्तकालय प्रशासन के विषय का विशेष ज्ञान हो ।
	(ii) कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट एक व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हो ।
विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जाने वाले महाविद्यालय या संस्था का प्राचार्य	तीन व्यक्ति, जो विश्वविद्यालय की सेवा में न हों, जिनमें से दो कार्य परिषद् द्वारा और एक विद्या परिषद् द्वारा उनके ऐसे किसी विषय में विशेष ज्ञान या रुचि के कारण नामनिर्दिष्ट किए जाएंगे, जिसमें उस महाविद्यालय या संस्था द्वारा शिक्षा दी जा रही हो ।

टिप्पण 1 – जहां नियुक्ति अंतर अनुशासनिक परियोजना के लिए की जा रही हो, वहां परियोजना का प्रधान संबंधित विभाग का अध्यक्ष समझा जाएगा ।

टिप्पण 2 – कुलपति द्वारा नामनिर्दिष्ट किया जाने वाला आचार्य उस विशिष्ट विषय से संबद्ध आचार्य होगा, जिसके लिए चयन किया जा रहा है

और कुलपति, आचार्य को नामनिर्दिष्ट करने से पूर्व विभागाध्यक्ष और विद्यापीठ के संकायाध्यक्ष से परामर्श करेगा ।

(3) कुलपति, या उसकी अनुपस्थिति में, प्रतिकुलपति, चयन समिति के अधिवेशन का आयोजन करेगा और उसकी अध्यक्षता करेगा :

परन्तु चयन समिति का अधिवेशन कुलाध्यक्ष के नामनिर्देशिती और कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट विशेषज्ञों से पूर्व परामर्श के पश्चात् और उनकी सुविधा के अनुसार नियत किया जाएगा :

परन्तु यह और कि चयन समिति की कार्यवाहियां तभी विधिमान्य होंगी, जब –

(क) जहां कुलाध्यक्ष के नामनिर्देशिती और कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों की कुल संख्या चार है, वहां उनमें से कम से कम तीन अधिवेशन में भाग लें ; और

(ख) जहां कुलाध्यक्ष के नामनिर्देशिती और कार्य परिषद् द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों की कुल संख्या तीन है, वहां उनमें से कम से कम दो अधिवेशन में भाग लें ।

(4) चयन समिति द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया अध्यादेशों में अधिकथित की जाएगी ।

(5) यदि कार्य परिषद् चयन समिति द्वारा की गई सिफारिशें स्वीकार करने में असमर्थ हो तो वह अपने कारण अभिलिखित करेगी और मामले को अंतिम आदेश के लिए कुलाध्यक्ष को भेजेगी ।

(6) अस्थायी पदों पर नियुक्तियां नीचे उपदर्शित रीति में की जाएंगी –

(i) यदि अस्थायी रिक्ति एक शैक्षणिक सत्र से अधिक की अवधि के लिए हो तो वह पूर्वगामी खंडों में उपदर्शित प्रक्रिया के अनुसार चयन समिति की सलाह से भरी जाएगी :

परन्तु यदि कुलपति का यह समाधान हो जाता है कि काम के हित में रिक्ति का भरा जाना आवश्यक है तो नियुक्ति उपखंड (ii) में निर्दिष्ट स्थानीय चयन समिति की सलाह से केवल अस्थायी आधार पर छह मास से अनधिक की अवधि के लिए की जा सकेगी ।

(ii) यदि अस्थायी रिक्ति एक वर्ष से कम की अवधि के लिए है तो ऐसी रिक्ति पर नियुक्ति स्थानीय चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी जिसमें संबद्ध विद्यापीठ का संकायाध्यक्ष, विभागाध्यक्ष और कुलपति का एक नामनिर्देशिती होगा :

परन्तु यदि एक ही व्यक्ति संकायाध्यक्ष और विभागाध्यक्ष का पद धारण कर रहा है तो चयन समिति के कुलपति के दो नामनिर्देशिती हो सकेंगे :

परन्तु यह और कि मृत्यु के कारण या अन्य किसी कारण से अध्यापन पदों में हुई अचानक आकस्मिक रिक्ति की दशा में, संकायाध्यक्ष संबंधित विभागाध्यक्ष के परामर्श से एक मास के लिए अस्थायी नियुक्ति कर सकेगा और ऐसी नियुक्ति की रिपोर्ट कुलपति और कुलसचिव को देगा ।

(iii) यदि परिनियमों के अधीन अस्थायी तौर पर नियुक्त किए गए किसी अध्यापक की नियुक्ति की सिफारिश नियमित चयन समिति द्वारा नहीं की जाती है तो वह तब तक ऐसे अस्थायी नियोजन पर सेवा में बना रहेगा जब तक, यथास्थिति, अस्थायी या स्थायी नियुक्ति के लिए स्थानीय चयन समिति या नियमित चयन समिति द्वारा बाद में उसका चयन नहीं कर लिया जाता ।

19. **नियुक्ति का विशेष ढंग** – (1) परिनियम 18 में किसी बात के होते हुए भी, कार्य परिषद् विद्या संबंधी उच्च विशेष उपाधियां और वृत्तिक योग्यता वाले व्यक्ति को ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, विश्वविद्यालय में, यथास्थिति, आचार्य या सह-आचार्य का पद अथवा कोई अन्य समतुल्य शैक्षणिक पद स्वीकार करने के लिए आमंत्रित कर सकेगी और उस व्यक्ति के ऐसा करने के लिए सहमत होने पर वह उसे उस पद पर नियुक्त कर सकेगी :

परन्तु कार्य परिषद् ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति के संबंध में किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए अतिरिक्त पदों का सृजन भी कर सकेगी :

परन्तु यह और कि इस प्रकार सृजित अतिरिक्त पदों की संख्या विश्वविद्यालय में कुल पदों के पांच प्रतिशत से अधिक नहीं होगी ।

(2) कार्य परिषद्, अध्यादेशों में अधिकथित रीति के अनुसार किसी संयुक्त परियोजना का जिम्मा लेने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या

संगठन में कार्य करने वाले किसी शिक्षक या अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द को नियुक्त कर सकेगी ।

20. **नियत अवधि के लिए नियुक्ति** – कार्य परिषद् परिनियम 18 में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार चयन किए गए किसी व्यक्ति को एक नियत अवधि के लिए ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, नियुक्त कर सकेगी ।

21. **समितियां** – (1) विश्वविद्यालय का कोई प्राधिकारी, उतनी स्थायी या विशेष समितियां नियुक्त कर सकेगा जितनी वह ठीक समझे और ऐसी समितियों में उन व्यक्तियों को नियुक्त कर सकेगा, जो उस प्राधिकारी के सदस्य नहीं हैं ।

(2) उपखंड (1) के अधीन नियुक्त समिति किसी ऐसे विषय में कार्यवाही कर सकेगी जो उसे प्रत्यायोजित किया जाए, किन्तु वह नियुक्त करने वाले प्राधिकारी द्वारा बाद में पुष्टि किए जाने के अधीन होगी ।

22. **अध्यापकों की सेवा के निबंधन और शर्तें तथा आचार संहिता, आदि** – (1) विश्वविद्यालय के सभी अध्यापक और अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद, तत्प्रतिकूल किसी करार के अभाव में, परिनियमों, अध्यादेशों और विनियमों में विनिर्दिष्ट सेवा के निबंधनों और शर्तों तथा आचार संहिता द्वारा शासित होंगे ।

(2) शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्यों की परिलब्धियां वे होंगी जो अध्यादेशों द्वारा विहित की जाएं ।

(3) विश्वविद्यालय का प्रत्येक अध्यापक और शैक्षणिक कर्मचारिवृंद का सदस्य लिखित संविदा के आधार पर नियुक्त किया जाएगा, जिसका प्रारूप अध्यादेशों द्वारा विहित किया जाएगा ।

(4) खंड (3) में निर्दिष्ट प्रत्येक संविदा की एक प्रति कुलसचिव के पास रखी जाएगी ।

23. **अन्य कर्मचारियों की सेवा के निबंधन और शर्तें तथा आचार संहिता** – (1) अध्यापकों तथा अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद से भिन्न विश्वविद्यालय के सभी कर्मचारी, तत्प्रतिकूल किसी संविदा के अभाव में, परिनियमों, अध्यादेशों और विनियमों में यथाविनिर्दिष्ट सेवा के निबंधनों और शर्तों तथा आचार संहिता द्वारा शासित होंगे ।

(2) अध्यापकों तथा अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद से भिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति की रीति और परिलब्धियां वे होंगी, जो अध्यादेशों द्वारा विहित की जाएं ।

24. **ज्येष्ठता सूची** – (1) जब कभी, इन परिनियमों के अनुसार, किसी व्यक्ति को ज्येष्ठता के अनुसार चक्रानुक्रम से विश्वविद्यालय का कोई पद धारण करना है या उसके किसी प्राधिकारी का सदस्य होना है, तो उस ज्येष्ठता का अवधारण उस व्यक्ति के, उसके ग्रेड में लगातार सेवाकाल और ऐसे अन्य सिद्धांतों के अनुसार होगा, जो कार्य परिषद् समय-समय पर, विहित करे ।

(2) कुलसचिव का यह कर्तव्य होगा कि जिन व्यक्तियों को इन परिनियमों के उपबंध लागू होते हैं उनके प्रत्येक वर्ग की बाबत एक पूरी और अद्यतन ज्येष्ठता सूची खंड (1) के उपबंधों के अनुसार तैयार करे और बनाए रखे ।

(3) यदि दो या अधिक व्यक्तियों का किसी विशिष्ट ग्रेड में लगातार सेवाकाल बराबर हो अथवा किसी व्यक्ति या किन्हीं व्यक्तियों की सापेक्ष ज्येष्ठता के विषय में अन्यथा संदेह हो तो कुलसचिव स्वप्रेरणा से और यदि वह व्यक्ति ऐसा अनुरोध करता है तो वह मामला कार्य परिषद् को प्रस्तुत करेगा, जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगा ।

25. **विश्वविद्यालय के कर्मचारियों का हटाया जाना** – (1) जहां विश्वविद्यालय के किसी शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के किसी सदस्य या किसी अन्य कर्मचारी के विरुद्ध किसी अवचार का अभिकथन हो वहां अध्यापक या शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य के मामले में कुलपति और अन्य कर्मचारी के मामले में नियुक्ति करने के लिए सक्षम प्राधिकारी (जिसे इसमें इसके पश्चात् नियुक्ति प्राधिकारी कहा गया है) लिखित आदेश द्वारा, यथास्थिति, ऐसे अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य या अन्य कर्मचारी को निलंबित कर सकेगा और कार्य परिषद् को उन परिस्थितियों की तुरन्त रिपोर्ट देगा, जिनमें वह आदेश किया गया था :

परन्तु यदि कार्य परिषद् की यह राय है कि मामले की परिस्थितियां ऐसी नहीं हैं कि अध्यापक या शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य का निलंबन होना चाहिए तो वह उस आदेश को प्रतिसंहृत कर सकेगी ।

(2) कर्मचारियों की नियुक्ति की संविदा के निबंधनों में या सेवा के अन्य

निबंधनों और शर्तों में किसी बात के होते हुए भी, अध्यापकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के संबंध में कार्य परिषद् और अन्य कर्मचारियों के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी को, यथास्थिति, अध्यापक या शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य अथवा अन्य कर्मचारी को अवचार के आधार पर हटाने की शक्ति होगी ।

(3) यथापूर्वोक्त के सिवाय, यथास्थिति, कार्य परिषद् या नियुक्ति प्राधिकारी किसी अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य या अन्य कर्मचारी को हटाने के लिए तभी हकदार होगा, जब उसके लिए उचित कारण हो, और उसे तीन मास की सूचना दे दी गई हो या सूचना के बदले में तीन मास के वेतन का संदाय किया गया हो ।

(4) किसी अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य या अन्य कर्मचारी को खंड (2) या खंड (3) के अधीन तभी हटाया जाएगा, जब उसे उसके बारे में की जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के विरुद्ध हेतुक दर्शित करने का युक्तियुक्त अवसर दे दिया गया हो ।

(5) किसी अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद के सदस्य या अन्य कर्मचारी का हटाया जाना उस तारीख से प्रभावी होगा, जिसको हटाए जाने का आदेश किया जाता है :

परन्तु जहां कोई अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद का सदस्य या अन्य कर्मचारी हटाए जाने के समय निलंबित है, वहां उसका हटाया जाना उस तारीख से प्रभावी होगा, जिसको वह निलंबित किया गया था ।

(6) इस परिनियम के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, कोई अध्यापक, शैक्षणिक कर्मचारिवृंद का सदस्य या अन्य कर्मचारी, –

(क) यदि वह स्थायी कर्मचारी है तो, यथास्थिति, कार्य परिषद् या नियुक्ति प्राधिकारी को तीन मास की लिखित सूचना देने या उसके बदले में तीन मास के वेतन का संदाय करने के पश्चात् ही पद त्याग सकेगा ;

(ख) यदि वह स्थायी कर्मचारी नहीं है तो, यथास्थिति, कार्य परिषद् या नियुक्ति प्राधिकारी को एक मास की लिखित सूचना देने या उसके बदले में एक मास के वेतन का संदाय करने के पश्चात् ही पद त्याग सकेगा :

परन्तु ऐसा त्यागपत्र केवल उस तारीख से प्रभावी होगा, जिसको, यथास्थिति, कार्य परिषद् या नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा वह त्यागपत्र स्वीकार किया जाता है ।

26. **मानद उपाधि** – (1) कार्य परिषद्, विद्या परिषद् की सिफारिश पर और उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से पारित संकल्प द्वारा कुलाध्यक्ष से मानद उपाधियां प्रदान करने की प्रस्थापना कर सकेगी :

परन्तु आपात स्थिति की दशा में, कार्य परिषद् स्वप्रेरणा से ऐसी प्रस्थापना कर सकेगी ।

(2) कार्य परिषद्, उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से पारित संकल्प द्वारा, कुलाध्यक्ष की पूर्व मंजूरी से, विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त किसी मानद उपाधि को वापस ले सकेगी ।

27. **उपाधियों, आदि का वापस लिया जाना** – कार्य परिषद् उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत से पारित विशेष संकल्प द्वारा किसी व्यक्ति को विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त किसी उपाधि या विद्या संबंधी विशेष उपाधि या दिए गए किसी प्रमाणपत्र या डिप्लोमा को उचित और पर्याप्त कारण से वापस ले सकेगी :

परन्तु ऐसा कोई संकल्प तभी पारित किया जाएगा, जब उस व्यक्ति को ऐसे समय के भीतर, जो उस सूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, यह हेतुक दर्शित करने के लिए लिखित सूचना दे दी गई हो कि ऐसा संकल्प क्यों न पारित कर दिया जाए और कार्य परिषद् द्वारा उसके आक्षेपों पर यदि कोई हों, और किसी ऐसे साक्ष्य पर, जो वह उनके समर्थन में प्रस्तुत करे, विचार कर लिया गया हो ।

28. **विश्वविद्यालयों के छात्रों में अनुशासन बनाए रखना** – (1) विश्वविद्यालय के छात्रों में अनुशासन बनाए रखने और उनके संबंध में अनुशासनिक कार्रवाई संबंधी सभी शक्तियां कुलपति में निहित होंगी ।

(2) खंड (1) में निर्दिष्ट शक्तियों का प्रयोग करने में कुलपति की सहायता करने के लिए विश्वविद्यालय का एक कुलानुशासक होगा जिसकी नियुक्ति अध्यादेशों द्वारा विहित रीति में आचार्यों और सह-आचार्यों में से कार्य परिषद् द्वारा की जाएगी ।

(3) कुलपति खंड (1) में निर्दिष्ट सभी शक्तियां या उनमें से कोई, जो वह उचित समझे, कुलानुशासक और ऐसे अन्य अधिकारियों को, जिन्हें वह इस निमित्त विनिर्दिष्ट करे, प्रत्यायोजित कर सकेगा ।

(4) कुलपति, अनुशासन बनाए रखने की तथा ऐसी कार्रवाई करने की,

जो उसे अनुशासन बनाए रखने के लिए समुचित प्रतीत हो, अपनी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसी शक्तियों के प्रयोग में, आदेश द्वारा निदेश दे सकेगा कि किसी छात्र या किन्हीं छात्रों को किसी विनिर्दिष्ट अवधि के लिए निकाला या निष्कासित किया जाए अथवा विश्वविद्यालय के किसी महाविद्यालय, संस्था, विभाग या विद्यापीठ में किसी पाठ्यक्रम या पाठ्यक्रमों में कथित अवधि के लिए प्रवेश न दिया जाए अथवा उसे उतने जुर्माने का दंड दिया जाए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट हो अथवा उसे विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, संस्था या विभाग या किसी विद्यापीठ द्वारा संचालित परीक्षा या परीक्षाओं में सम्मिलित होने से एक या अधिक वर्षों के लिए विवर्जित किया जाए अथवा संबंधित छात्र या छात्रों का, किसी परीक्षा या किन्हीं परीक्षाओं का, जिसमें वह या वे सम्मिलित हुआ है या हुए हैं, परीक्षाफल रोक लिया जाए या रद्द कर दिया जाए ।

(5) महाविद्यालय, संस्थाओं के प्राचार्यों, विद्यापीठों के संकायाध्यक्षों तथा विश्वविद्यालय में अध्यापन विभागों के अध्यक्षों को यह प्राधिकार होगा कि वे अपने-अपने महाविद्यालयों, संस्थाओं, विद्यापीठों और विश्वविद्यालय में अध्यापन विभागों में छात्रों पर ऐसी सभी अनुशासनिक शक्तियों का प्रयोग करें, जो उन महाविद्यालयों, संस्थाओं, विद्यापीठों और अध्यापन विभागों के उचित संचालन के लिए आवश्यक हों ।

(6) कुलपति तथा प्राचार्यों और खंड (5) में विनिर्दिष्ट अन्य व्यक्तियों की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अनुशासन और उचित आचरण संबंधी विस्तृत नियम विश्वविद्यालय द्वारा बनाए जाएंगे और महाविद्यालयों, संस्थाओं के प्राचार्य, विद्यापीठों के संकायाध्यक्ष और विश्वविद्यालय के अध्यापन विभागों के अध्यक्ष ऐसे अनुपूरक नियम बना सकेंगे, जो वे इसमें कथित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे ।

(7) प्रवेश के समय, प्रत्येक छात्र से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह इस आशय की घोषणा पर हस्ताक्षर करे कि वह अपने को कुलपति की तथा विश्वविद्यालय के अन्य प्राधिकारियों की अनुशासनिक अधिकारिता के अधीन अर्पित करेगा ।

29. **दीक्षांत समारोह** – उपाधियां प्रदान करने या अन्य प्रयोजनों के लिए विश्वविद्यालय के दीक्षांत समारोह उस रीति से किए जाएंगे, जो अध्यादेशों द्वारा विहित की जाए ।

30. **अधिवेशनों का कार्यकारी अध्यक्ष** – जहां विश्वविद्यालय के किसी

प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी की किसी समिति के अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए किसी अध्यक्ष या सभापति का उपबंध नहीं किया गया है अथवा जिस अध्यक्ष या सभापति के लिए इस प्रकार का उपबंध किया गया है, वह अनुपस्थित है तो उपस्थित सदस्य ऐसे अधिवेशन की अध्यक्षता करने के लिए अपने में से एक सदस्य को निर्वाचित कर लेंगे ।

31. **त्यागपत्र** – सभा, कार्य परिषद्, विद्या परिषद् या विश्वविद्यालय के किसी अन्य प्राधिकारी या ऐसे प्राधिकारी की किसी समिति के, पदेन सदस्य से भिन्न, कोई सदस्य कुलसचिव को संबोधित पत्र द्वारा पद त्याग कर सकेगा और ऐसा पत्र कुलसचिव को प्राप्त होते ही त्यागपत्र प्रभावी हो जाएगा ।

32. **निरर्हता** – (1) कोई भी व्यक्ति विश्वविद्यालय के प्राधिकारियों में से किसी का सदस्य चुने जाने और होने या किसी अधिकारी के रूप में चुने जाने या होने के लिए निरर्हित होगा यदि –

(i) वह विकृतचित्त है ; या

(ii) वह अनुन्मोचित दिवालिया है ; या

(iii) वह किसी ऐसे अपराध के लिए किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किया गया है, जिसमें नैतिक अधमता अंतर्वलित है, और उसकी बाबत छह मास से अन्यून कारावास से दंडादिष्ट किया गया है ।

(2) यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई व्यक्ति खंड (1) में वर्णित निरर्हताओं में से किसी एक के अधीन है या रहा है तो वह प्रश्न कुलाध्यक्ष को विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा और ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध किसी सिविल न्यायालय में कोई वाद या अन्य कार्यवाही नहीं होगी ।

33. **सदस्यता और पद के लिए निवास की शर्तें** – परिनियमों में किसी बात के होते हुए भी, ऐसा कोई व्यक्ति, जो भारत में मामूली तौर पर निवासी नहीं है, विश्वविद्यालय का कोई अधिकारी या विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी का सदस्य बनने के लिए पात्र नहीं होगा ।

34. **अन्य निकायों की सदस्यता के आधार पर प्राधिकारियों की सदस्यता** – परिनियमों में किसी बात के होते हुए भी, कोई व्यक्ति जो विश्वविद्यालय में कोई पद धारण करता है या विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी या निकाय का किसी विशिष्ट प्राधिकारी या निकाय के सदस्य की

अपनी हैसियत में सदस्य है या कोई विशिष्ट नियुक्ति धारित करता है, ऐसा पद तब तक धारण करेगा या सदस्य तब तक ही रहेगा जब तक वह, यथास्थिति, उस विशिष्ट प्राधिकारी या निकाय का सदस्य बना रहता है या उस विशिष्ट नियुक्ति को धारित करता रहता है ।

35. **पूर्व छात्र संगम** – (1) विश्वविद्यालय का एक पूर्व छात्र संगम होगा ।

(2) पूर्व छात्र संगम की सदस्यता के लिए अभिदाय अध्यादेशों द्वारा विहित किया जाएगा ।

(3) पूर्व छात्र संगम का कोई भी सदस्य तभी मत देने का या निर्वाचन में खड़े होने का हकदार होगा, जब वह निर्वाचन की तारीख से कम से कम एक वर्ष पहले से संगम का सदस्य रहा हो और विश्वविद्यालय की कम से कम पांच वर्ष की अवधि तक डिग्री धारक हो :

परन्तु प्रथम निर्वाचन की दशा में एक वर्ष की सदस्यता अवधि की शर्त लागू नहीं होगी ।

36. **विद्यार्थी परिषद्** – (1) विश्वविद्यालय में प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के लिए एक विद्यार्थी परिषद् गठित की जाएगी, जिसमें निम्नलिखित होंगे –

(i) छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष, जो विद्यार्थी परिषद् का अध्यक्ष होगा ;

(ii) बीस विद्यार्थी, जो अध्ययन, खेलकूद, पाठ्येतर गतिविधियों और व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में योग्यता के आधार पर नामनिर्देशित किए जाएंगे ;

(iii) बीस विद्यार्थी जो विद्यार्थियों द्वारा अपने प्रतिनिधियों के रूप में निर्वाचित किए जाएंगे :

परन्तु विश्वविद्यालय के किसी विद्यार्थी को, यदि अध्यक्ष द्वारा अनुज्ञात किया जाए तो विद्यार्थी परिषद् के समक्ष विश्वविद्यालय से संबंधित कोई मुद्दा लाने का अधिकार होगा और जब किसी बैठक में उस मुद्दे पर विचार किया जाए तो उसे विचार-विमर्श में भाग लेने का अधिकार होगा ।

(2) विद्यार्थी परिषद् के ये कृत्य होंगे कि वह विश्वविद्यालय के समुचित प्राधिकारियों को अध्ययन के कार्यक्रमों, छात्र कल्याण और अन्य महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में सामान्यतया विश्वविद्यालय के कार्य करने की बाबत

सुझाव दें और ऐसे सुझाव मतैक्यता के आधार पर दिए जाएंगे ।

(3) विद्यार्थी परिषद् प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष में कम से कम दो बार बैठक करेगी और परिषद् की पहली बैठक शिक्षा-सत्र के प्रारम्भ में होगी ।

37. **अध्यादेश कैसे बनाए जाएंगे** – (1) धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन बनाए गए प्रथम अध्यादेश, कार्य परिषद् द्वारा निम्नलिखित खंडों में विनिर्दिष्ट रीति से किसी भी समय, संशोधित, निरसित या परिवर्धित किए जा सकेंगे ।

(2) इस अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (1) में प्रगणित मामलों के संबंध में कार्य परिषद् द्वारा कोई अध्यादेश तभी बनाया जाएगा, जब ऐसे अध्यादेश का प्रारूप विद्या परिषद् द्वारा प्रस्थापित किया गया हो ।

(3) कार्य परिषद् को इस बात की शक्ति नहीं होगी कि वह विद्या परिषद् द्वारा खंड (2) के अधीन प्रस्थापित किसी अध्यादेश के प्रारूप का संशोधन करे, किन्तु वह प्रस्थापना को नामंजूर कर सकेगी या विद्या परिषद् के पुनर्विचार के लिए उस संपूर्ण प्रारूप को या उसके किसी भाग को उन किन्हीं संशोधनों सहित, जिनका सुझाव कार्य परिषद् दे, वापस भेज सकेगी ।

(4) जहां कार्य परिषद् ने विद्या परिषद् द्वारा प्रस्थापित किसी अध्यादेश के प्रारूप को नामंजूर कर दिया है या उसे वापस कर दिया है, वहां विद्या परिषद् उस प्रश्न पर नए सिरे से विचार कर सकेगी और उस दशा में जब मूल प्रारूप उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई और विद्या परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या के आधे से अधिक बहुमत से पुनः अभिपुष्ट कर दिया जाता है तब प्रारूप कार्य परिषद् को वापस भेजा जा सकेगा जो या तो उसे मान लेगी या उसे कुलाध्यक्ष को निर्देशित कर देगी, जिसका विनिश्चय अंतिम होगा ।

(5) कार्य परिषद् द्वारा बनाया गया प्रत्येक अध्यादेश तुरन्त प्रभावी होगा ।

(6) कार्य परिषद् द्वारा बनाया गया प्रत्येक अध्यादेश उसके अंगीकार किए जाने की तारीख से दो सप्ताह के भीतर कुलाध्यक्ष को प्रस्तुत किया जाएगा ।

(7) कुलाध्यक्ष को, विश्वविद्यालय को यह निदेश देने की शक्ति होगी कि वह किसी अध्यादेश के प्रवर्तन को निलंबित कर दे ।

(8) कुलाध्यक्ष, कार्य परिषद् को खंड (7) में निर्दिष्ट अध्यादेश पर अपने आक्षेप के बारे में सूचित करेगा और विश्वविद्यालय से टिप्पणी प्राप्त होने के पश्चात् वह या तो अध्यादेशों का निलंबन करने वाले आदेश को वापस ले लेगा या अध्यादेशों को नामंजूर कर देगा और उसका विनिश्चय अंतिम होगा ।

38. **विनियम** – (1) विश्वविद्यालय के प्राधिकारी निम्नलिखित विषयों के बारे में इस अधिनियम, परिनियमों और अध्यादेशों से संगत विनियम बना सकेंगे, अर्थात् :–

(i) अपने अधिवेशनों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया और गणपूर्ति के लिए अपेक्षित सदस्यों की संख्या अधिकथित करना ;

(ii) उन सभी विषयों के लिए उपबंध करना, जिनका इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों में, विनियमों द्वारा विहित किया जाना अपेक्षित है ; और

(iii) ऐसे सभी अन्य विषयों के लिए उपबंध करना, जो केवल ऐसे प्राधिकारियों या उनके द्वारा नियुक्त समितियों से संबंधित हों और जिनके लिए इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों द्वारा उपबंध न किया गया हो ।

(2) विश्वविद्यालय का प्रत्येक प्राधिकारी ऐसे प्राधिकारी के सदस्यों को अधिवेशनों की तारीखों और उन अधिवेशनों में विचारार्थ कार्य की सूचना देने और अधिवेशनों की कार्यवाही का अभिलेख रखने के लिए विनियम बनाएगा ।

(3) कार्य परिषद् इन परिनियमों के अधीन बनाए गए किसी विनियम का ऐसी रीति से, जो वह विनिर्दिष्ट करे, संशोधन या किसी ऐसे विनियम के निष्प्रभाव किए जाने का निदेश दे सकेगी ।

39. **शक्तियों का प्रत्यायोजन** – इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, विश्वविद्यालय का कोई अधिकारी या प्राधिकारी अपनी शक्तियां, अपने नियंत्रण में के किसी अन्य अधिकारी या प्राधिकारी या व्यक्ति को इस शर्त के अधीन रहते हुए, प्रत्यायोजित कर सकेगा कि इस प्रकार प्रत्यायोजित शक्तियों के प्रयोग का संपूर्ण उत्तरदायित्व ऐसी शक्तियों का प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी या प्राधिकारी में निहित बना रहेगा ।

प्रिवी कौंसिल

प्रिवी कौंसिल

निर्णय सूची

पृष्ठ संख्या

ट्रिब्यून प्रेस, लाहौर के न्यासी **बनाम** आय कर आयुक्त, पंजाब	6
बाबा करतार सिंह बेदी **बनाम** दयाल दास तथा अन्य	23
भूपेन्द्र मोहन राय और अन्य **बनाम** श्रीमती पूर्ण शशि देवी और अन्य	64
मियां फीरोज शाह **बनाम** मोहम्मद अकबर खां	1
लाला चुन्नी लाल और अन्य **बनाम** उदय प्रकाश और अन्य	37
साह मौजीराम **बनाम** साह चतुर्भुज	55
हरीचन्द और अन्य **बनाम** सचिव, भारत सरकार	41
हाजी मौला बख्श **बनाम** अब्दूल लतीफ	49

मियां फीरोज शाह .... अपीलार्थी

बनाम

मोहम्मद अकबर खां .... प्रत्यर्थी

23.5.1939

न्यायमूर्ति किलोवेन के लार्ड रसेल, न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर लांसलाट सेंडरसन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 – अनुच्छेद 109 और 120 – कब्जा बंधकदार का वाद कि उसे बंधककर्ता के अन्य लेनदार ने गलत तौर पर कार्रवाई करके बंधक संपत्ति के लाभों से वंचित कर दिया, अतः वह नुकसानी अदा करे – वाद अनुच्छेद 109 द्वारा शासित होगा, न कि अनुच्छेद 120 द्वारा ।

प्रक्रिया – प्रिवी कौंसिल – सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 विषयक आपत्ति निचले न्यायालयों में न करके पहली बार प्रिवी कौंसिल में की गई – तद्‌विषयक विधि पर भारतीय न्यायालयों के निर्णयों में एकमत नहीं – प्रिवी कौंसिल स्तर पर नया अभिवचन अनुमत नहीं ।

वादी की यह अपील पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के न्यायिक आयुक्त न्यायालय के 23.5.1936 के एक विनिश्चय के विरुद्ध है जिसके द्वारा उन्होंने पेशावर के अधीनस्थ न्यायाधीश की 25.3.1935 की डिक्री की पुष्टि की ।

अभिनिर्धारित – प्रश्न उठता है कि क्या वादी का दावा प्रतिवादी द्वारा प्राप्त राशि अदा कराने (money had and received) से अन्यथा भी माना जा सकता है । यहां वादी का यह कथन नहीं माना गया कि प्रतिवादी ने कार्य लापरवाही या विद्वेषवश किया । प्रतिवादी की अवैधता यह बताई गई कि अपीलार्थी के कब्जे के अधिकार में कुर्की के समय से हस्तक्षेप किया गया और उससे वाद हेतुक उत्पन्न हुआ । अब स्पष्ट है कि सोहबत खां को अपीलार्थी ने 1924 में 4 वर्ष के लिए नया पट्टा दे दिया था और 1929-30 में भी अपीलार्थी का कहना यही था कि वह अपीलार्थी का काश्तकार है । इन परिस्थितियों में यह नहीं माना जा सकता कि कुर्की करना, रिसीवर नियुक्त करना या 1927 में रिसीवर को कब्जा दिलाना अपीलार्थी के विरुद्ध दोषपूर्ण था । प्रत्यर्थी सोहबत खां ने हित के विरुद्ध कार्यवाही करने का पूर्णतः हकदार था । उस दृष्टि से राजस्व न्यायालय का अपीलार्थी की

आपत्ति न मानना सारतः गलत नहीं था । यह स्पष्ट नहीं है कि सोहबत खां का काश्तकारी हित वस्तुतः किस तारीख को समाप्त हुआ । यद्यपि 1929 में वाद के अंतिम निर्णय से स्पष्ट है कि वह वादपत्र की तारीख 25.4.1929 के पूर्व समाप्त हो चुका था । अब वादी को कोई नया कथानक अनुमत नहीं हो सकता जिससे अनुच्छेद 120 लागू होना संभव हो । किसी भी दृष्टि से अपीलार्थी को उसे देय राशि की डिक्री मिल गई है । (पैरा 6)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1918]	22 कलकत्ता वीकली नोट्स 263 = आ. इं. रि. 1918 कलकत्ता 360 : **उत्तर सूरज रंजन** बनाम **प्रेम चन्द्र चौधरी** ;	5
[1903]	(1903) 3 कलकत्ता ला जर्नल 182 : **हालोवे** बनाम **गुणेश्वर सिंह** ।	5

सिविल अधिकारिता : **1938 की अपील सं. 62.**

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एल. कोहन और जे. एम. पारिख

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री ए. एम. दुने और डब्ल्यू. वालच

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन ने दिया ।

न्या. रैंकिन – वादी की यह अपील पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत के न्यायिक आयुक्त न्यायालय के 23.5.1936 के एक विनिश्चय के विरुद्ध है जिसके द्वारा उन्होंने पेशावर के अधीनस्थ न्यायाधीश की 25.3.1935 की डिक्री की पुष्टि की । उक्त डिक्री द्वारा वादी (अपीलार्थी) को प्रतिवादी से 8,010/- रुपए दिलाए गए । वादी अपीलार्थी का कहना है कि उक्त राशि अपर्याप्त है ।

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं : 12.3.1917 को सोहबत खां नामक एक व्यक्ति ने पेशावर जिले के शेखू गांव की अपनी भूमि में से 1011 कनाल 8 मरला भूमि अपीलार्थी और उसके भाई के हक में 10 वर्ष के लिए बंधक कर दी । बंधक राशि 44,233/- रुपए थी । बंधक सकब्जा था । किंतु बंधकदार को वास्तविक कब्जा न देकर बंधककर्ता ने उक्त भूमि

1,224/- रुपए वार्षिक लगान पर उसी 10 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर ले ली । आगे चलकर अपीलार्थी एकमात्र बंधकदार हो गया । उधर 31.3.1920 को बंधककर्ता के विरुद्ध प्रत्यर्थी मोहम्मद अकबर खां ने एक धन की डिक्री प्राप्त करके उसकी भूमि कुर्क करा ली जिसमें उक्त बंधक भूमि भी थी । सोहबत खां ने कृषक जनजाति का होने के कारण पंजाब भूमि अन्यसंक्रामण अधिनियम, 1900 की धारा 16 उसकी भूमि के विक्रय का वर्जन करती थी । अतः चनसड्डा के नायब तहसीलदार को उसकी भूमि का रिसीवर नियुक्त किया गया । उसने कलेक्टर की इजाजत लेकर उस भूमि का कब्जा लिया और फिर वह भूमि चार व्यक्तियों को एक वर्ष की अवधि के लिए 3,000/- रुपए के लगान पर 1927 में उठा दी और वह स्थिति एक वर्ष के बाद भी चलती रही । अपीलार्थी की उस विषय में आपत्ति राजस्व न्यायालय ने नहीं मानी । इस बीच 1924 में अपीलार्थी के 1917 के बंधक का नवीकरण हो गया था और सोहबत खां के हक में 2,000/- रुपए वार्षिक लगान पर चार वर्ष के लिए नया पट्टा दे दिया गया था । नए पट्टे की एक शर्त यह भी थी कि यदि काश्तकार ने लगान नहीं दिया या पट्टे की किसी अन्य शर्त का उल्लंघन किया तो पट्टादाता भूमि का कब्जा ले लेगा ।

3. 25.4.1929 को अपीलार्थी ने पेशावर के जिला न्यायाधीश के यहां एक वाद इन घोषणा के लिए दाखिल किया कि भूमि प्रत्यर्थी के अनुरोध पर कुर्क नहीं की जा सकती थी और उसने रिसीवर को बेदखल करके कब्जा भी मांगा । यह वाद 22.8.1929 को खारिज हो गया और न्यायिक आयुक्त न्यायालय ने वादी की अपील 8.3.1930 को खारिज कर दी । उनके अनुसार अपीलार्थी के हक में बंधक भोग-बंधक न होकर सादा बंधक था और वह कब्जा प्राप्त करने का हकदार नहीं था । किंतु सपरिषद् हिज मैजेस्टी को अपील की जाने पर उन्होंने 11.4.1933 को निर्णय किया कि अपीलार्थी अपने बंधक के आधार पर भूमि के कब्जे का हकदार है और उसे उक्त 1011 कनाल 8 मरला बंधक भूमि का तथा वाद में दावाकृत 140 कनाल अतिरिक्त भूमि का कब्जा दिया जाना चाहिए । उस वाद में वादी ने नुकसानी नहीं मांगी थी और यह कहा था कि उसका और सोहबत खां का भूस्वामी-काश्तकार का संबंध माना जाने पर वह अपने हिस्से की फसल तथा काश्तकार की बेदखली के लिए कार्रवाई अलग से करेगा ।

4. तत्पश्चात् 2.8.1933 को अपीलार्थी ने यह वाद दाखिल किया । इसमें उसने केवल प्रत्यर्थी को प्रतिवादी बनाया और कहा कि प्रतिवादी ने उसकी भूमि की गलत तौर पर कुर्की करा कर और उसे बेदखल करके

उसे नुकसान पहुंचाया अतः वह वादी को उस फसल की कीमत के बराबर राशि अदा करे जो कि वादी को प्रश्नगत भूमि से मिलती । इस प्रकार 1927 से 1933 तक की बाबत 66,000/- रुपए का दावा किया गया । वादी के अनुसार उसका वाद हेतुक कुर्की की तारीख को 10.6.1927 का उत्पन्न हुआ और तत्पश्चात् प्रिवी कौंसिल के निर्णय की तारीख 19.4.1933 को उत्पन्न हुआ । यह भी कहा गया कि प्रतिवादी ने जानबूझकर अथवा संपत्ति की कुर्की-योग्यता की ओर ध्यान दिए बिना गलत तौर पर कुर्की कराई । अधीनस्थ न्यायाधीश के अनुसार वाद के लिए परिसीमाकाल प्रिवी कौंसिल के निर्णय से ही प्रारंभ हुआ और अनुच्छेद 109 लागू होगा, जिसके अधीन परिसीमाकाल 3 वर्ष का है । इसी कारण उन्होंने 3 वर्ष के अंतःकालीन लाभ दिलाए । रिसीवर को इन तीन वर्षों में काश्तकारों से 9,000/- रुपए मिले थे, जिसमें 890/- रुपए सोहबत खां को उसके भरण-पोषण के लिए दिए गए थे । अतः अधीनस्थ न्यायाधीश ने 8,110/- रुपए की अदायगी की डिक्री दी । न्यायिक आयुक्त न्यायालय का निर्णय था कि प्रतिवादी द्वारा कार्रवाई न्यायालय के माध्यम से की जाने के कारण वह अवैध नहीं थी किंतु साम्या की दृष्टि से वह अपीलार्थी को वह लाभ प्रदान करने के लिए आबद्ध था जो कि न्यायालयों के गलत निर्णयों के कारण उसे प्राप्त हुआ । उन्होंने अपीलार्थी का नुकसानी का या सिविल प्रक्रिया संहिता के अर्थ में अंतःकालीन लाभ का दावा नहीं माना और उक्त राशि प्रतिवादी द्वारा सदोष प्राप्त किए गए स्थावर संपत्ति के लाभ के रूप में दिलाई ।

5. अपीलार्थी का पहला कथन प्रतिवादी द्वारा जानबूझकर चूक की जाने का भी था । किंतु वह सर्वथा अमान्य है । न्यायालय ने अपने ढंग से जांच करके आदेश दिए थे । जो राशि दिलाई गई है वह पर्याप्त है, चाहे अंतःकालीन लाभ की दृष्टि से देखी जाए या प्रतिवादी द्वारा वस्तुतः प्राप्त किया गया धन दिलाने की दृष्टि से । प्रश्न परिसीमा का उठता है । अंतःकालीन लाभ के लिए भी सुप्रतिष्ठित विधि है कि अनुच्छेद 109 लागू होता है । अपीलार्थी की ओर से बहस की गई कि **हालोवे** बनाम **गुणेश्वर सिंह**[1] के अनुसार यहां अनुच्छेद 109 लागू नहीं होगा बल्कि 120 लागू किया जाना चाहिए । किंतु यह मान्य नहीं है । भला वादी यह कैसे कह सकता है कि प्रतिवादी द्वारा लाभ की प्राप्ति सदोष नहीं थी । यदि अपना वाद केवल प्रतिवादी द्वारा वस्तुतः प्राप्त की गई राशि दिलाई जाने तक

[1] (1903) 3 कलकत्ता ला जर्नल 182.

सीमित रखता है तो अनुच्छेद 62 लागू होगा । उपर्युक्त निर्णय के तर्क का उत्तर **सूरज रंजन** बनाम **प्रेम चन्द्र चौधरी**[1] में दिया गया है । उसमें बताया गया कि 1908 के संशोधन के पूर्व यथा विद्यमान अनुच्छेद 109 तब भी लागू होगा जब न्यायालय की डिक्री अपील में अपास्त हो जाए और इस बीच के लाभ दिलाने का प्रश्न हो ।

6. प्रश्न उठता है कि क्या वादी का दावा प्रतिवादी द्वारा प्राप्त राशि अदा कराने (money had and received) से अन्यथा भी माना जा सकता है । यहां वादी का यह कथन नहीं माना गया कि प्रतिवादी ने कार्य लापरवाही या विद्वेषवश किया । प्रतिवादी की अवैधता यह बताई गई कि अपीलार्थी के कब्जे के अधिकार में कुर्की के समय से हस्तक्षेप किया गया और उससे वाद हेतुक उत्पन्न हुआ । अब स्पष्ट है कि सोहबत खां को अपीलार्थी ने 1924 में 4 वर्ष के लिए नया पट्टा दे दिया था और 1929-30 में भी अपीलार्थी का कहना यही था कि वह अपीलार्थी का काश्तकार है । इन परिस्थितियों में यह नहीं माना जा सकता कि कुर्की करना, रिसीवर नियुक्त करना या 1927 में रिसीवर को कब्जा दिलाना अपीलार्थी के विरुद्ध दोषपूर्ण था । प्रत्यर्थी सोहबत खां ने हित के विरुद्ध कार्यवाही करने का पूर्णतः हकदार था । उस दृष्टि से राजस्व न्यायालय का अपीलार्थी की आपत्ति न मानना सारतः गलत नहीं था । यह स्पष्ट नहीं है कि सोहबत खां का काश्तकारी हित वस्तुतः किस तारीख को समाप्त हुआ । यद्यपि 1929 में वाद के अंतिम निर्णय से स्पष्ट है कि वह वादपत्र की तारीख 25.4.1929 के पूर्व समाप्त हो चुका था । अब वादी को कोई नया कथानक अनुमत नहीं हो सकता जिससे अनुच्छेद 120 लागू होना संभव हो । किसी भी दृष्टि से अपीलार्थी को उसे देय राशि की डिक्री मिल गई है ।

7. प्रत्यर्थी की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 2, नियम 2 के आधार पर भी आपत्ति की गई । इस विषय में विधि पर भारतीय उच्च न्यायालयों के निर्णय ही एकमत नहीं है । यह प्रश्न निचले किसी न्यायालय में नहीं उठाया गया था । अतः अब हम उसकी अनुमति नहीं दे सकते ।

हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि यह अपील खारिज की जानी चाहिए । अपीलार्थी प्रत्यर्थी का अपील का खर्चा अदा करे ।

अपील खारिज की गई ।

---

[1] 22 कलकत्ता वीकली नोट्स 263 = आ. इं. रि. 1918 कलकत्ता 360.

ट्रिब्यून प्रेस, लाहौर के न्यासी .... अपीलार्थी

बनाम

आय कर आयुक्त, पंजाब .... प्रत्यर्थी

13.6.1939

न्यायमूर्ति लार्ड थैंकरटन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

भारतीय आय कर अधिनियम, 1922 – धारा 4(3) – न्यास को आय कर से कब छूट प्राप्त होगी, इसका निर्णय स्वयं अधिनियम में प्रयुक्त भाषा के आधार पर किया जाना चाहिए ।

जब न्याय का उद्देश्य किसी राजनीतिक पार्टी का प्रचार करने का न होकर एक समाचारपत्र चलाने का है जो जनता को विभिन्न समाचारों से और विभिन्न विषयों पर व्यक्त किए गए मतों से अवगत कराए तो वह प्रयोजन सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन समझा जाएगा और उसके लिए सृजित न्यास की आय, आय कर से छूट प्राप्त होगी ।

प्रयोजन सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन है या नहीं, वह ऐसे मामले में समाचारपत्र की प्रकृति से प्रकट होगा – उसके लिए यह देखना होगा कि इस समाचारपत्र की नीति के विषय में न्यास के सृजनकर्ता ने क्या कहा तथा उसने अपने जीवनकाल में समाचारपत्र में क्या प्रकाशित किया ।

सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन माने जाने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह खैराती प्रयोजन हो अर्थात् कोई वस्तु या सेवा मुफ्त या कम मूल्य पर उपलब्ध करें – लोक शिक्षा का कार्य भी सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन है ।

ट्रिब्यून प्रेस, लाहौर के न्यासियों ने यह अपील लाहौर उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के बहुमत से दिए गए 4.6.1935 के विनिश्चय के विरुद्ध की है । इसमें एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थियों की आय उक्त अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (i) के अधीन कर से छूट-प्राप्त नहीं है ? अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – हम यह निर्णय करने को तैयार नहीं है कि वसीयत के इन पैराओं में निर्दिष्ट संपत्ति उसी अर्थ में शिक्षा के प्रयोजनार्थ धारित है जिसमें कि वह शब्द अधिनियम की धारा 4 में आया है । अतः प्रथमदृष्ट्या विनिश्चयार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या संपत्ति पूर्णतः सामान्य लोक उपयोग के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए न्यास के रूप में धारित है । उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति टेकचंद का यही मत था । उन्होंने आय कर अधिनियम के छूट-प्रदायी खंड की व्यापक शब्दावली का मेकडफ का मामला पर लार्ड लिंडले की उक्ति से अंतर दिखाया । उक्त निर्णय में कमिश्नर्स फार स्पेशल पर्पजेज आफ इनकम टैक्स बनाम नान फ्रेडरिक पेयसेल पर लार्ड मेकनाटन के निर्णय के एक सुप्रसिद्ध पैरा का निर्देश करने के बाद लार्ड लिंडले ने निर्णय किया कि अंग्रेजी विधि में सामान्य लोक उपयोग के कुछ ऐसे प्रयोजन हो सकते हैं जो पूर्त हों और कुछ ऐसे जो पूर्त न हों और उसकी कसौटी एलिजबेथ के कानून (43 एलीजबेथ चैप्टर 4) की भावना या आशय की है । प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी के विद्वान अभिवक्ता, दृश्यतः यह न मानते हुए कि भारतीय कानून के अधीन न्यास के उद्देश्य को लागू की जाने वाली एकमात्र कसौटी सामान्य लोक उपयोग की है, इस बात के लिए रजामंद थे कि प्रस्तुत मामले के प्रयोजनार्थ वह मान लिया जाए । उनका कहना है कि कोई उद्देश्य सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न है जिसके विषय में निष्कर्ष निकाल कर आयुक्त को लिखना चाहिए ; वह विधि का प्रश्न नहीं है जिसका निर्णय न्यायालय करे । यद्यपि हम इस बात के लिए तैयार नहीं है कि किसी ऐसे प्रश्न पर निर्णय सुनाएं जिस पर हमारे समक्ष बहस नहीं की गई, फिर भी हमारा विचार है कि भारत के न्यायालय उस दशा में मार्गभ्रांत होंगे यदि यह बोर्ड इस दृष्टिकोण में संदेह करता प्रतीत हो कि आय कर से छूट के दावे की ग्राह्यता का अवधारण अधिनियम द्वारा उस निमित्त किए गए विशिष्ट उपबंध की भाषा के अनुसार होना चाहिए । हमारी यह भी राय है कि प्रश्न कि अमुक उद्देश्य सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं इस प्रश्न की भांति कि अमुक न्यास पूर्त है या नहीं विधि का प्रश्न है, यद्यपि यह आयुक्त का कार्य है कि तत्संबंधी तथ्यों का पता लगाकर उनका वर्णन करें । तुलना कीजिए - कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू बनाम टेम्परेंस काउंसिल । प्रस्तुत मामले में आयुक्त ने इसे धारा 66 के अधीन विधि के प्रश्न के रूप में सही तौर पर लिखा और उसी रूप में उसका उत्तर दिया ; बल्कि उन्होंने इस प्रकार कहा कि "क्या न्यास पूर्त न्यास समझा जा सकता है ?" ऐसे मामले में सही सिद्धांत लागू करने का महत्व उत्तराधिकार अधिनियम,

1925 की धारा 114 में वसीयतों के विषय में तथा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 14 द्वारा जीवित मध्ये अंतरणों के विषय में अधिकथित शाश्वतता के विरुद्ध नियम के कारण प्रत्यक्ष है । उत्तरोक्त अधिनियम की धारा 18 के ज्ञान, धर्म, वाणिज्य, स्वास्थ्य, क्षेम को या मानव जाति के लिए फायदाप्रद किसी अन्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए संपत्ति के अंतरण के विषय में अपवाद किया है । अंग्रेजी निर्णयों का अनुसरण करते हुए निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला है जिसके द्वारा उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 114 में पूर्त न्यासों के संबंध में छूट विवक्षित समझी गई है और धारा 118 ने धार्मिक या पूर्त उपयोगार्थ वसीयत पर निर्बंधन लगाए हैं । तथा पूर्त विन्यास अधिनियम, 1890 की धारा 2 में "पूर्त प्रयोजन" की वही परिभाषा दी गई है जो कि आय कर अधिनियम द्वारा दी गई है किंतु उसमें "धार्मिक प्रयोजनों को अपवर्जित करते हुए" शब्द जोड़ दिए गए हैं । न्यायमूर्तिगण जय लाल और टेक चंद का विचार था कि कोई उद्देश्य या प्रयोजन सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं, इस की सही कसौटी यह नहीं है कि न्यायालय किसे लोगों के लिए फायदाप्रद समझता है, बल्कि यह है कि वसीयकर्ता किसे ऐसा समझता था । यह निष्कर्ष निकालने में वे उस उचित का अनुसरण कर रहे थे जो न्यायमूर्ति चिट्टी ने फोवो ग्रास बनाम लंदन एंटीविवीसेक्शन सोसाइटी में की थी । इस प्रश्न पर न्यायमूर्ति रसेल ने हेमेलटेनवर्ग का मामला पर उक्त निर्णय से विसम्मति व्यक्त की और यह निर्णय किया कि यद्यपि न्यायाधीश की व्यक्तिगत या निजी राय महत्वहीन है, फिर भी पूर्त दान के विधिमान्य होने के लिए यह दिखाया जाना चाहिए कि (1) दान लोक फायदे के लिए होगा या हो सकता है और (2) न्यास ऐसा है जिसका प्रशासन यदि आवश्यक हो तो न्यायालय स्वयं लेकर नियंत्रण कर सकता है : "यदि वसीयतकर्ता अपना यह मत लिख या व्यक्त करके कि न्यास लोक फायदे के लिए है उस बात को निर्विवाद रूप से सिद्ध कर सकता है तो ऐसे न्यास स्थापित हो सकते हैं जो सभी प्रकार के सनकपूर्ण (यद्यपि विधिविरुद्ध नहीं) उद्देश्यों के लिए हों ।" हम इस मत से सहमत हैं और आय कर अधिनियम में ऐसा कुछ नहीं पाते जो न्यायालय को उसके इस उत्तरदायित्व से मुक्त करे कि वह इस विषय में निष्कर्ष निकाले कि न्यास के उद्देश्य की प्रकृति क्या है, जो उसकी विधिमान्यता से सीधा संबंध रखता है । इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि आय कर अधिनियम के अधीन सामान्य लोक उपयोग के प्रयोजन की कसौटी अंग्रेजी अर्थ में ट्रस्ट को ही लागू नहीं होती है अपितु ऐसी संपत्ति को भी लागू होती है जो "अन्य

विधिक बाध्यता के अधीन धारित" हो, जिस पद में मुस्लिम वक्फ और हिन्दू विन्यास भी आते हैं । बोर्ड ने योप च्याह न्यो बनाम आंग चिंग न्यो में उन मामलों मे ऐसे प्रश्नों के संबंध में सही दृष्टिकोण पर विचार किया जो उन देशों में उठते हैं जिन्हें अंग्रेजी विचारधारा अंग्रेजी तकनीकियों को छोड़ दिया जाए - लागू नहीं होती है । सर रेमण्ड वेस्ट ने फातिमा बीबी बनाम महाधिवक्ता वाले भारतीय मामले में पृष्ठ 50 पर ठीक ही कहा : "किंतु उपयोगी और फायदाप्रद किस अर्थ में ? न्यायालय को यह निर्णय करना होता है कि क्या दान विषयक उदारता का कोई उद्देश्य इस परिभाषा में आता है । किंतु सामान्यतः उन्हें रूढ़िजन्य विधि वाला मानदंड और उस समाज के सामान्य मत को अपनाना चाहिए जिसके सदस्य हितबद्ध पक्षकार हों ।" यह निर्णय करते हुए कि महाविद्यालय सारतः कंजर्वेटिव व पार्टी के लिए शिक्षा केंद्र था और ऐसा विलेख के अनुसार ही था, विद्वान् न्यायाधीश ने विनिश्चय किया कि कर से छूट का दावा मान्य नहीं हो सकता । ये अंग्रेजी निर्णय केवल वहां तक सुसंगत हैं जहां तक कि वे उस रीति के उदाहरण हैं जिससे कि व्यापाक अर्थ में राजनीतिक उद्देश्य (जिसके अंतर्गत विशिष्ट मतों के हित में विधायन के कार्यक्रम भी हैं) इस प्रश्न को प्रभावित करते हैं कि क्या न्यायालय न्यास को सामान्य लोग उपयोग के प्रयोजनार्थ मान सकता है । मूल निर्देश-पत्र में आयुक्त ने यह संकेत नहीं किया था कि समाचारपत्र के संस्थापक का आशय उसे केवल राजनीतिक प्रचार का माध्यम बनाना था और सरदार दयाल सिंह के मामले में इसमें संदेह करना अनुचित लगता है कि उनका उद्देश्य उत्तर भारत के निवासियों को उन्हें एक अंग्रेजी समाचारपत्र उपलब्ध करके फायदा पहुंचाने का था कि समाचारों का प्रसार किया जाए लोक हित के सभी विषयों पर मत व्यक्त किए जाएं । किसी समाचारपत्र के लिए संभवतः यह असंभव नहीं है, किंतु बहुत कठिन है कि कोई विशिष्ट राजनीतिक प्रवृत्ति रखने या अर्जित करने से बचा रहे, सिवाय उस दशा के जब कि वह सरकारों या विधान-मंडलों के क्रियाकलाप का उल्लेख ही न करे या उनके विषय में चयनात्मक या असंगत ढंग से व्यवहार करे । 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उत्तरी भारत की परिस्थितियां भारतीय पाठकों के लिए प्रकाशित किसी समाचारपत्र को निःसंदेह सामाजिक और आर्थिक सुधार के विभिन्न आंदोलनों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण बना देने वाली थीं । किंतु हमारे समक्ष सामग्री है जिससे समाचारपत्र की प्रकृति प्रकट होती है कि वह किस प्रकार वसीयकर्ता के जीवनकाल में चलाया गया । उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि राजनीति और विधायन के प्रश्नों की चर्चा इस समाचारपत्र

में चर्चित अन्य बहुत से विषयों में से कुछ विषयों के रूप में की गई और यह सिद्ध नहीं किया गया है कि राजनीतिक प्रयोजन इस न्यास का मुख्य प्रयोजन था । हमारे विचार से समाचारपत्र का उद्देश्य उचित तौर पर प्रांत को शिक्षित लोक मत का माध्यम प्रदान करने का उद्देश्य कहा जा सकता है और यह प्रथमदृष्ट्या सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन ठहराया जाना चाहिए । उस समय की विशिष्ट परिस्थितियों, वसीयत के निदेशों और 1898 के पूर्व समाचारपत्र की विषयवस्तु को देखते हुए हमारा विचार है कि प्रस्तुत मामला तथ्यों की दृष्टि से उपर्युक्त (1933) 17 टेक्स केसेज 508 अथवा (1931) 1 चां. 258 में न्यायमूर्ति रसेल द्वारा बताए गए मामले की अपेक्षा उपर्युक्त (1898) 1 चां. 638 के निकटतर है । हमारे विचार से इन परिस्थितियों में यह मामला भारतीय अधिनियम के छूट वाले खंड की परिधि के बाहर नहीं माना जा सकता । इस पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि यदि वसीयत द्वारा घोषित न्यास भविष्य में ठप्प हो जाए तो क्या स्थिति होगी । बताए गए कारणों से हमारी राय है कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिए और आयुक्त के 26.1.1934 के निर्देशपत्र में निर्दिष्ट दो प्रश्नों में से द्वितीय का उत्तर "हां" में दिया जाना चाहिए । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तदनुसार है । प्रत्यर्थी अपीलार्थियों का उच्च न्यायालय में निर्देश का और इस अपील का खर्चा अदा करें । (पैरा 7, 8, 9, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1934]	(1934) 1 चां. 258 : **टेटली का मामला** ;	12
[1933]	(1933) 17 टेक्स केसेज 508 : **बोनरला मेमोरियल ट्रस्ट** बनाम **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू** ;	15
[1931]	(1931) 1 चां. 240 : **हुड वाला मामला** ;	15
[1926]	(1926) अपील केसेज 192 : **ब्राइटन कालेज** बनाम **मेरियट** ;	6
[1926]	(1926) 10 टैक्स केसेज 748 : **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यु** बनाम **टेम्परेंस काउंसिल** ;	7

[1923]	(1923) 1 चां. 237 : **हेमेलटेनवर्ग का मामला** ;	8
[1917]	(1917) अपील केसेज 406 : **ब्रावमेन** बनाम **सेक्युलर सोसाइटी लि.** ;	11
[1909]	(1909) 5 टैक्स केसेज 408 : **कमिश्नर्स** बनाम **यूनिवर्सिटी कालेज आफ नार्थ वेल्स** ;	10
[1898]	(1898) 2 चां. 638 : **स्कोक्राफ्ट का मामला** ;	14
[1896]	(1896) 2 चां 451 : **मेकडाल का मामला** ;	7
[1895]	(1895) 2 चां. 501 : **फोवो ग्रास** बनाम **लंदन एंटीविवी सेक्शन सोसाइटी** ;	8
[1891]	(1891) अपील केसेज 531 : **कमिश्नर्स फार स्पेशल पर्पजेज आफ इनकम टैक्स** बनाम **नान फ्रेडरिक पेयसेल** ;	7
[1881]	ई. ला रि. (1881) 6 बाम्बे 42 : **फातिमा बीबी** बनाम **महाधिवक्ता** ;	9
[1875]	(1875) 6 पी. सी. 381 : **योप च्याह न्यो** बनाम **अंग चिंग न्यों** ।	9

सिविल अपीली अधिकारिता : 1936 की अपील सं. 117.

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. एम. लाटर और एच. डब्ल्यू. विलियमस

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मिलार्ड ठक्कर और ई. एल. नार्टन

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन ने दिया ।

न्या. रैंकिन – ट्रिब्यून प्रेस, लाहौर के न्यासियों ने यह अपील लाहौर उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के बहुमत से दिए गए 4.6.1935 के

विनिश्चय के विरुद्ध की है । वह विनिश्चय आय कर अधिनियम, 1922 की धारा 66(2) के अधीन उस न्यायालय को किए गए निर्देश पर दिया गया था । आय कर अधिकारी, लाहौर ने 31.1.1933 को अपीलार्थियों का निर्धारण वर्ष 1932-33 के लिए आय कर निर्धारण 61,629/- रुपए पर किया, जो राशि पूर्व वर्ष के आंकड़ा पर आकलित की गई थी । अब निर्धारण की राशि या कर की संगणना के विषय में कोई प्रश्न नहीं है । एकमात्र प्रश्न है कि क्या अपीलार्थियों की आय उक्त अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (3) के खंड (i) के अधीन कर से छूट-प्राप्त नहीं है :–

"(3) यह अधिनियम निम्नलिखित वर्गों की आय को लागू नहीं होगा –

(i) ऐसी संपत्ति से व्युत्पन्न कोई आय जो पूर्णतः पूर्त या धार्मिक प्रयोजनों के लिए न्यास या अन्य विधिक बाध्यता के अधीन धारित है तथा ऐसी संपत्ति के विषय में जो ऐसे प्रयोजनार्थ केवल भागतः धारित है वह आय जो ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयुक्त की जाए या अंतिम रूप से अलग रखी जाए ।

इस उपधारा में 'पूर्त प्रयोजन' के अंतर्गत गरीबों को सहायता, शिक्षा, चिकित्सा सहायता और किसी अन्य सामान्य लोक उपयोग के उद्देश्य को अग्रसर करना भी है ।"

2. पंजाब निवासी एक सिख सरदार दयाल सिंह की मृत्यु 1898 में हुई । उन्होंने अपनी 15.5.1895 की वसीयत द्वारा तीन अलग-अलग न्यासों का सृजन किया, जिनका प्रशासन तीन स्वतंत्र न्यासी समितियों द्वारा किया जाना था । उन न्यासों में से दो – (1) एक कला महाविद्यालय व (2) एक सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना और अनुरक्षण के लिए थे । तीसरे न्यास की घोषणा वसीयत के पैरा 20 और 21 द्वारा इन शब्दों में की गई :–

"20. अनारकली लाहौर स्थित ट्रिब्यून प्रेस और समाचारपत्र के स्टाक और डविल की हमारी संपत्ति स्थायी तौर पर एक न्यासी समिति में निहित होगी जिसके निम्नलिखित सदस्य होंगे, अर्थात् –

(1) बाबू जोगेन्द्र चन्द्र बोस – एम. ए., बी. एल., मुख्य न्यायालय लाहौर ।

(2) श्री चार्ल्स गोलक नाथ – बी. ए. बैरिस्टर, लाहौर ।

(3) श्री हर किशन लाल – बी. ए. बैरिस्टर, लाहौर ।

21. उक्त न्यासी समिति का यह कर्तव्य होगा कि उक्त समाचारपत्र की उदार नीति बनाए रखते हुए उक्त प्रेस और समाचारपत्र दक्ष स्थित में चलाएं, और उक्त प्रेस तथा समाचारपत्र की आय में से नित्यप्रति के खर्चे काटने के बाद उसका अतिशेष उक्त समाचारपत्र में सुधार करने और उसे स्थायित्व प्रदान करने में व्यय करें ।"

3. 1.12.1906 को एक समझौता विलेख किया गया, जिससे वसीयत की विधिमान्यता विषयक कुछ मुकदमेबाजी समाप्त की गई । उससे पक्षकारों ने करार किया कि "यदि ट्रिब्यून सामचारपत्र न रह जाए या उसका बना रहना असंभव हो जाए तो ट्रिब्यून प्रेस की संपत्ति कला महाविद्यालय न्यास की संपत्ति हो जाएगी ।" 1898 में सरदार दयाल सिंह की मृत्यु के समय से ट्रिब्यून प्रेस न्यास चलाया जा रहा है और उस नाम पर समाचारपत्र लगातार प्रकाशित किया जा रहा है । इस प्रेस और समाचारपत्र के लाभों पर 1918 से आय कर का निर्धारण हो रहा है । अपीलार्थियों ने छूट का दावा पहली बार वर्ष 1932-33 की बाबत किया, अर्थात् उस कार्यवाही में जिससे यह अपील उत्पन्न हुई । यह दावा प्रथमतः सहायक आयुक्त के समक्ष किया गया और उनके द्वारा अपीलार्थियों का तर्क अमान्य किए जाने पर उन्होंने आयुक्त को आवेदन देकर प्रार्थना की कि इस प्रश्न पर (तथा एक अन्य प्रश्न पर जिस पर अब विवाद नहीं है) वे या तो अपीलार्थियों का दावा मान लें या उच्च न्यायालय को निर्देश कर दें । 20.10.1934 को आयुक्त ने उच्च न्यायालय को दो प्रश्न निर्देशित किए जा इस प्रकार थे :–

(1) क्या ट्रिब्यून न्यास की न्यासियों के हाथ में आय, आय कर अधिनियम के उपबंधों के अधीन निर्धारण-योग्य है ?

(2) यदि है, तो क्या वह उस अधिनियम की धारा 4(3)(i) के अधीन छूट-प्राप्त नहीं है ?

4. अब केवल द्वितीय प्रश्न के उल्लेख की आवश्यकता है । उस पर आयुक्त ने वसीयत के पैरा 20 और 21 उद्धृत करने के बाद अपील यह राय व्यक्त की :–

"यह कहना बहुत कठिन होगा कि क्या समाचारपत्र चलाना

सामान्य लोक उपयोग का उद्देश्य है । किंतु केवल यह तथ्य उसे व्यापारिक समुत्थान की कोटि से निकालने के लिए पर्याप्त नहीं है कि आय का उपयोग समाचारपत्र के सुधार के लिए होना है ।"

5. जिस खंड न्यायपीठ द्वारा यह निर्देश पहली बार सुना गया उसके न्यायाधीशा में मतभेद हुआ । न्यायमूर्ति जयलाल का निष्कर्ष था कि अपीलार्थियों की आय कर से छूट-प्राप्त थी, जब कि न्यायमूर्ति स्कैम्प की राय थी कि वह छूट-प्राप्त नहीं थी । मामला पूर्ण न्यायपीठ को निर्देशित किया गया । परिणामतः मुख्य न्यायमूर्ति यंग और न्यायमूर्ति एडिसन ने निर्णय किया कि प्रश्नगत आय छूट-प्राप्त नहीं है । न्यायमूर्ति टेकचंद उससे असहमत हुए । 4.6.1935 के इस विनिश्चय के विरुद्ध यह अपील हिज मैजेस्टी को की गई और 22 व 23 जुलाई, 1937 को पहली सुनवाई के समय इस बोर्ड ने यह वांछनीय समझा कि अधिनियम की धारा 66 की उपधारा (4) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का उपयोग अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाए । तद्नुसार 29.7.1937 के सपरिषद् आदेश द्वारा बोर्ड द्वारा दी गई राय के अनुसार निदेश दिया गया कि :–

> "(2) मामला लाहौर उच्च न्यायालय को इस निदेश के साथ भेजा जाए कि उक्त उच्च न्यायालय मामला आय कर अधिनियम, 1922 की धारा 66(4) के अधीन उक्त आयुक्त को वापस भेजें कि प्रथमतः वसीयतकर्ता सरदार दयाल सिंह के जीवनकाल के ऐसे तथ्य जोड़े जाएं जो इस पद के उचित निर्वचन के लिए सुसंगत हों कि "उक्त समाचारपत्र की उदार नीति बनाए रखते हुए," जो उक्त वसीयतकर्ता की 15.6.1895 की वसीयत के पैरा 21 में है, और द्वितीयतः 1.12.1906 के समझौते के ऐसे तथ्य जोड़े जो यह प्रकट करें कि क्या वह समझौता उक्त वसीयतकर्ता की संपत्ति में हितबद्ध सभी पक्षकारों पर आबद्धकर है ।"

6. अब हमारे समक्ष एक अनुपूरक विवरण है जो वर्तमान आयुक्त श्री के. सी. बसक ने दिया है । उन्होंने वसीयकर्ता द्वारा दिए गए निदेश में प्रयुक्त (उक्त समाचारपत्र की उदार नीति बनाए रखते हुए) पद का स्पष्टीकरण करने वाली बहुत-सी सामग्री एकत्र की है जो हमारी राय में न्यास की प्रकृति और प्रयोजन बहुत उचित तौर पर प्रकट करती है । इस समाचारपत्र का पहला अंक 2.2.1981 का था । जिसमें "हम (ourselves)"

शीर्षक एक लेख था, जो समाचारपत्र के लक्ष्य और उद्देश्यों का वर्णन था । दो वर्ष बाद 3.2.1883 को उसी प्रकार का एक अन्य लेख प्रकाशित किया गया जिसका शीर्षक था "हमारी द्वितीय वर्षगांठ" (our second anniversay) । संस्थापक के जीवनकाल में समाचारपत्र की प्रकृति और नीति पर प्रकाश डालने के लिए आयुक्त तथा अपीलार्थियों ने समाचारपत्र के 1881 और 1898 के बीच के अंकों से उद्धरणों का चयन किया है । इस सामग्री का हम एकमात्र उपयोग न्यास का सही अर्थान्वयन करने के लिए करना चाहते हैं क्योंकि वसीयतकर्ता ने अपना आशय एक समाचारपत्र के संदर्भ से जो उनके जीवनकाल में प्रकाशित होता था प्रकट किया तथा उस नीति के संदर्भ से भी प्रकट किया जिसकी प्रकृति और प्रयोजन का निष्कर्ष उसके पूर्व अंकों से अनिवार्यतः निकाला जाना चाहिए । यह जांच करना न आवश्यक है न सुसंगत कि वसीयतकर्ता की मृत्यु की तारीख के बाद से न्यास का क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाता रहा है । प्रश्न न्यास की सही प्रकृति और लक्ष्यों का है । यहां ऐसा कोई प्रश्न नहीं उठता जिसकी चर्चा **ब्राइटन कालेज** बनाम **मेरियट**[1] में की गई थी । उसमें निर्णय किया गया कि तत्समय विद्यमान अंग्रेजी अधिनियम किसी पूर्व द्वारा किए जा रहे व्यापार के लाभों को कोई छूट प्रदान नहीं करता है, भले ही वह व्यापार करना ही उस पूर्त का अनन्य और एकमात्र प्रयोजन हो । निर्देश पत्र में यह कहीं अंकित नहीं है कि निर्धारण के अधीन आय उस संपत्ति से व्युत्पन्न नहीं हुई जो वसीयत के पैरा 20 और 21 में घोषित न्यास के अधीन धारित है ।

7. हम यह निर्णय करने को तैयार नहीं है कि वसीयत के इन पैराओं में निर्दिष्ट संपत्ति उसी अर्थ में शिक्षा के प्रयोजनार्थ धारित है जिसमें कि वह शब्द अधिनियम की धारा 4 में आया है । अतः प्रथमदृष्ट्या विनिश्चयार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या संपत्ति पूर्णतः सामान्य लोक उपयोग के उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए न्यास के रूप में धारित है । उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति टेकचंद का यही मत था । उन्होंने आय कर अधिनियम के छूट-प्रदायी खंड की व्यापक शब्दावली का **मेकडफ का मामला**[2] पर लार्ड लिंडले की उक्ति से अंतर दिखाया । उक्त निर्णय में **कमिश्नर्स फार स्पेशल पर्पजेज आफ इनकम टैक्स** बनाम **नान फ्रेडरिक**

---

[1] (1926) अपील केसेज 192.

[2] (1896) 2 चां. 451.

पेयसेल[1] पर लार्ड मेकनाटन के निर्णय के एक सुप्रसिद्ध पैरा का निर्देश करने के बाद लार्ड लिंडले ने निर्णय किया कि अंग्रेजी विधि में सामान्य लोक उपयोग के कुछ ऐसे प्रयोजन हो सकते हैं जो पूर्त हों और कुछ ऐसे जो पूर्त न हों और उसकी कसौटी एलिजबेथ के कानून (43 एलीजबेथ चैप्टर 4) की भावना या आशय की है । प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी के विद्वान अभिवक्ता, दृश्यतः यह न मानते हुए कि भारतीय कानून के अधीन न्यास के उद्देश्य को लागू की जाने वाली एकमात्र कसौटी सामान्य लोक उपयोग की है, इस बात के लिए रजामंद थे कि प्रस्तुत मामले के प्रयोजनार्थ वह मान लिया जाए । उनका कहना है कि कोई उद्देश्य सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न है जिसके विषय में निष्कर्ष निकाल कर आयुक्त को लिखना चाहिए ; वह विधि का प्रश्न नहीं है जिसका निर्णय न्यायालय करे । यद्यपि हम इस बात के लिए तैयार नहीं है कि किसी ऐसे प्रश्न पर निर्णय सुनाएं जिस पर हमारे समक्ष बहस नहीं की गई, फिर भी हमारा विचार है कि भारत के न्यायालय उस दशा में मार्गभ्रांत होंगे यदि यह बोर्ड इस दृष्टिकोण में संदेह करता प्रतीत हो कि आय कर से छूट के दावे की ग्राह्यता का अवधारण अधिनियम द्वारा उस निमित्त किए गए विशिष्ट उपबंध की भाषा के अनुसार होना चाहिए । हमारी यह भी राय है कि प्रश्न कि अमुक उद्देश्य सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं इस प्रश्न की भांति कि अमुक न्यास पूर्त है या नहीं विधि का प्रश्न है, यद्यपि यह आयुक्त का कार्य है कि तत्संबंधी तथ्यों का पता लगाकर उनका वर्णन करें । तुलना कीजिए - **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू** बनाम **टेम्परेंस काउंसिल**[2] ।

8. प्रस्तुत मामले में आयुक्त ने इसे धारा 66 के अधीन विधि के प्रश्न के रूप में सही तौर पर लिखा और उसी रूप में उसका उत्तर दिया ; बल्कि उन्होंने इस प्रकार कहा कि "क्या न्यास पूर्त न्यास समझा जा सकता है ?" ऐसे मामले में सही सिद्धांत लागू करने का महत्व उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 114 में वसीयतों के विषय में तथा संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 14 द्वारा जीवित मध्ये अंतरणों के विषय में अधिकथित शाश्वतता के विरुद्ध नियम के कारण प्रत्यक्ष है । उत्तरोक्त अधिनियम की धारा 18 के ज्ञान, धर्म, वाणिज्य, स्वास्थ्य, क्षेम को या मानव जाति के लिए फायदाप्रद किसी अन्य उद्देश्य को अग्रसर करने के लिए संपत्ति के अंतरण के विषय में अपवाद किया है । अंग्रेजी निर्णयों का

[1] (1891) अपील केसेज 531.

[2] (1926) 10 टैक्स केसेज 748.

अनुसरण करते हुए निर्णयों की एक लंबी शृंखला है जिसके द्वारा उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 114 में पूर्त न्यासों के संबंध में छूट विवक्षित समझी गई है और धारा 118 ने धार्मिक या पूर्त उपयोगार्थ वसीयत पर निर्बंधन लगाए हैं । तथा पूर्त विन्यास अधिनियम, 1890 की धारा 2 में "पूर्त प्रयोजन" की वही परिभाषा दी गई है जो कि आय कर अधिनियम द्वारा दी गई है किंतु उसमें "धार्मिक प्रयोजनों को अपवर्जित करते हुए" शब्द जोड़ दिए गए हैं । न्यायमूर्तिगण जय लाल और टेक चंद का विचार था कि कोई उद्देश्य या प्रयोजन सामान्य लोक उपयोग का है या नहीं, इस की सही कसौटी यह नहीं है कि न्यायालय किसे लोगों के लिए फायदाप्रद समझता है, बल्कि यह है कि वसीयकर्ता किसे ऐसा समझता था । यह निष्कर्ष निकालने में वे उस उचित का अनुसरण कर रहे थे जो न्यायमूर्ति चिट्टी ने **फोवो ग्रास** बनाम **लंदन एंटीविवीसेक्शन सोसाइटी**[1] में की थी । इस प्रश्न पर न्यायमूर्ति रसेल ने **हेमेलटेनवर्ग का मामला**[2] पर उक्त निर्णय से विसम्मति व्यक्त की और यह निर्णय किया कि यद्यपि न्यायाधीश की व्यक्तिगत या निजी राय महत्वहीन है, फिर भी पूर्त दान के विधिमान्य होने के लिए यह दिखाया जाना चाहिए कि (1) दान लोक फायदे के लिए होगा या हो सकता है और (2) न्यास ऐसा है जिसका प्रशासन यदि आवश्यक हो तो न्यायालय स्वयं लेकर नियंत्रण कर सकता है :—

> "यदि वसीयतकर्ता अपना यह मत लिख या व्यक्त करके कि न्यास लोक फायदे के लिए है उस बात को निर्विवाद रूप से सिद्ध कर सकता है तो ऐसे न्यास स्थापित हो सकते हैं जो सभी प्रकार के सनकपूर्ण (यद्यपि विधिविरुद्ध नहीं) उद्देश्यों के लिए हों ।"

9. हम इस मत से सहमत हैं और आय कर अधिनियम में ऐसा कुछ नहीं पाते जो न्यायालय को उसके इस उत्तरदायित्व से मुक्त करे कि वह इस विषय में निष्कर्ष निकाले कि न्यास के उद्देश्य की प्रकृति क्या है, जो उसकी विधिमान्यता से सीधा संबंध रखता है । इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि आय कर अधिनियम के अधीन सामान्य लोक उपयोग के प्रयोजन की कसौटी अंग्रेजी अर्थ में ट्रस्ट को ही लागू नहीं होती है अपितु ऐसी संपत्ति को भी लागू होती है जो "अन्य विधिक बाध्यता के अधीन धारित" हो, जिस पद में मुस्लिम वक्फ और हिन्दू विन्यास भी आते

---

[1] (1895) 2 चां. 501.

[2] (1923) 1 चां. 237.

हैं । बोर्ड ने **योप च्याह न्यो** बनाम **आंग चिंग न्यो**[1] में उन मामलों मे ऐसे प्रश्नों के संबंध में सही दृष्टिकोण पर विचार किया जो उन देशों में उठते हैं जिन्हें अंग्रेजी विचारधारा अंग्रेजी तकनीकियों को छोड़ दिया जाए - लागू नहीं होती है । सर रेमण्ड वेस्ट ने **फातिमा बीबी** बनाम **महाधिवक्ता**[2] वाले भारतीय मामले में पृष्ठ 50 पर ठीक ही कहा :–

> "किंतु उपयोगी और फायदाप्रद किस अर्थ में ? न्यायालय को यह निर्णय करना होता है कि क्या दान विषयक उदारता का कोई उद्देश्य इस परिभाषा में आता है । किंतु सामान्यतः उन्हें रुढ़िजन्य विधि वाला मानदंड और उस समाज के सामान्य मत को अपनाना चाहिए जिसके सदस्य हितबद्ध पक्षकार हों ।"

10. उच्च न्यायालय में विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति तथा न्यायमूर्ति एडिसन ने इस बात पर और जोर दिया कि ट्रिब्यून समाचारपत्र अपने पाठकों और विज्ञापनदाताओं से उनको दिए जाने वाले लाभों के लिए मामूली वाणिज्यिक दरों से प्रभार लेता है । इसके विरुद्ध साक्ष्य और निष्कर्ष यह प्रकट नहीं करते कि 1918 के पूर्व समाचारपत्र या प्रेस ने कोई लाभ कमाया और कम से कम इतना तो निश्चित है कि इन दो में से कोई भी निजी लाभ के लिए स्थापित नहीं किया गया, चाहे वह लाभ वसीयतकर्ता को होता या किसी अन्य व्यक्ति को । न्यास के निबंधनों के अनुसार वह किसी व्यक्ति के फायदे के लिए नहीं चलाया जाना है । हमारी राय में इसे सामान्य लोक उपयोग के प्रयोजन के लिए आवश्यक तत्व नहीं माना जा सकता कि वह बिना कुछ लिए या लागत से कम पर या सामान्य कीमत से कम पर कुछ दे । पूर्त प्रयोजन के प्रति कठोरतम अंग्रेजी दृष्टिकोण से भी उसमें खैरात का तत्व आवश्यक नहीं है, देखिए - **कमिश्नर्स** बनाम **यूनीवर्सिटी कालेज आफ नार्थ वेल्स**[3] । "सामान्य लोक उपयोग के प्रयोजन" पद के अंतर्गत वसीयतकर्ता द्वारा स्थापित ऐसे विद्यालय में जो छात्रों से फीस लेता है और वसीयतकर्ता द्वारा स्थापित ऐसे पत्र में जो उसके पाठकों को बेचा जाता है कोई तात्विक अंतर नहीं प्रतीत होता । निर्धनों को या जनसामान्य को कोई उपयोगी वस्तु कीमत के बिना या कम कीमत पर देने का प्रयोजन निःसंदेह स्वयं में सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन होगा । किंतु कोई अन्य उद्देश्य स्वतंत्र रूप से स्वयं सामान्य लोक

---

[1] (1875) 6 पी. सी. 381.

[2] इं. ला रि. (1881) 6 बाम्बे 42.

[3] (1909) 5 टेक्स केसेज 408.

उपयोग का हो तो यह परिस्थिति उस उद्देश्य की प्रकृति को अनिवार्यतः नहीं बदल देगी कि वसीयतकर्ता का दान केवल प्रारंभिक पूंजी आस्तियों के विषय में था या वह कार्य करने में होने वाली हानि को अस्थायी तौर पर, न कि स्थायी तौर पर, पूरा करने के लिए था ।

11. अपीलार्थियों के छूट के दावे पर अब की गई मुख्य आपत्ति इस आधार पर है कि ट्रिब्यून सामचारपत्र जिस रूप में उसके संप्रवर्तक चलाना चाहते थे उसमें राजनीतिक प्रचार की प्रकृति की सामग्री होगी और वह विशिष्ट विधायी अध्युपाय के प्रचार में लगेगा, जो उसके संप्रवर्तकों ने सुधार के उपाय माने थे । यह नहीं कहा गया है कि जिन दृष्टिकोणों या अध्युपायों का प्रचार करना था वे किसी प्रकार से विधिविरुद्ध थे, किंतु कहा यह गया कि फिर भी न्यास की राजनीतिक प्रकृति न्यास को सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन ठहराए जाने से रोकती है । लार्ड पार्कर ने **ब्रावमेन** बनाम **सेक्युलर सोसाइटी लि.**[1] में पृष्ठ 442 पर कहा :–

> "राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए न्याय सदैव अविधिमान्य ठहराया गया है और वह इस कारण नहीं कि वह अवैध है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए स्वतंत्र है कि विधि में परिवर्तन का प्रचार या अभिवृद्धि किसी भी विधिपूर्ण तरीके से करे, बल्कि इस कारण कि न्यायालय के पास यह निर्णय करने का कोई साधन नहीं होता कि विधि में प्रस्थापित परिवर्तन लोक हित के लिए होगा या नहीं, अतः वह यह नहीं कह सकता कि ऐसा परिवर्तन कराने के लिए दान पूर्त दान है ।"

12. **टेटली का मामला**[2] में दान "देशभक्तिपूर्ण" और पूर्त प्रयोजनों के लिए था । उसमें न्यायमूर्ति रसेल ने पृष्ठ 262 पर कहा :–

> "किंतु क्या देशभक्तिपूर्ण प्रयोजनार्थ धन लगाने का प्रत्येक कार्य समाज के लिए फायदाप्रद और इस प्रकार पूर्त होना आवश्यक है ? हमें यह लगता है कि ऐसा निर्णय करना असंभव है । क्या देशभक्तिपूर्ण है और क्या देशभक्तिपूर्ण नहीं है, यह बहुधा केवल राय का प्रश्न होता है । विशिष्ट राजनीतिक या वित्तीय विचारधाराओं की अभिवृद्धि के लिए समाचारपत्र को वित्तीय सहायता देना उन व्यक्तियों की दृष्टि में देशभक्तिपूर्ण होगा जिनका विचार हो कि उन

---

[1] (1917) अपील केसेज 406.

[2] (1934) 1 चां. 258.

विचारधाराओं की विजय समाज के लिए फायदाप्रद होगी । वह पूर्त प्रयोजनार्थ धन लगाना नहीं होगा ।"

13. उपर्युक्त (1926)10 टेक्स केसेज 748 में निर्धारिती का प्रथम प्रयोजन विधायन द्वारा मद्य-निषेध विषयक सुधार था यद्यपि वह कार्य पूरे तौर से गैर-पार्टी ढंग से किया जाना था । यह देखकर न्यायमूर्ति रोलट ने पृष्ठ 752 पर कहा :–

"विधायन को प्रभावित करने का कोई प्रयोजन इस संबंध में राजनीतिक प्रयोजन है । इस प्रकार यह न्यास मुख्यतः विशिष्ट प्रकार का विधायन कराने के लिए न्यास है ; और यदि ऐसा है तो मैं इसे विवादित नहीं समझता कि यह पूर्त न्यास नहीं होगा । हमारे विचार से इस विषय में प्रमाण स्पष्ट है और मैं इस विषय में और कुछ नहीं कहता ।"

14. दूसरी ओर यह उल्लेखनीय है कि उस मामले में न्यायमूर्ति रोलेट ने तथ्यों के आधार पर यह तर्क अमान्य किया कि काउंसिल का प्रयोजन मद्य-निषेध का था और विधायन केवल उसके सहायक के रूप में आया । फिर **स्कोक्राफ्ट का मामला**[1] में एक पल्ली (parish) स्थित कंजर्वेटिव क्लब और विलेज रीडिंग रूप नामक भवन की इस दृष्टि से वसीयत की कि उन्हें कंजर्वेटिव सिद्धांतों की अभिवृद्धि तथा धार्मिक और मानसिक सुधार करने के लिए चलाया जाए, आदि । वह दान धार्मिक और मानसिक सुधार के लिए माना गया । न्यायमूर्ति स्टर्लिंग ने कहा :–

"अतः यह दान किसी न किसी रूप में धार्मिक व मानसिक सुधार के लिए है । निःसंदेह उसके साथ में कंजर्वेटिव सिद्धांतों को आगे बढ़ाना भी है । किंतु हमारे विचार से वह परसीमा उसे पूर्णतः मान्य पूर्त दान होने से रोकने के लिए पर्याप्त नहीं है, जैसा कि यह निःसंदेह होता यदि यह दान केवल धार्मिक और मानसिक सुधार के लिए होता ।"

15. **हुंड**[2] वाले मामले में वसीयतकर्ता अपनी अवशिष्टीय संपदा की वसीयत ईसाई सिद्धांत फैलाने के और मद्य-व्यापार को कम से कम और समाप्त करने के सभी सक्रिय उपायों की सहायता करने के लिए की थी ।

---

[1] (1898) 2 चां. 638.

[2] (1931) 1 चां. 240.

इस दृष्टि से कि प्रथमोक्त मुख्य प्रयोजन था और उत्तरोक्त उसका समनुषंगी था, दान इसके होते हुए भी विधिमान्य ठहराया गया कि उत्तरोक्त प्रयोजन स्वयं में पूर्त नहीं होता । **बोनरला मेमोरियल ट्रस्ट** बनाम **कमिश्नर्स आफ इनलैंड रेवेन्यू**[1] में न्यायमूर्ति फिनले को एक महाविद्यालय के संदर्भ में निर्णय करना पड़ा जो कंजर्वेटिव पार्टी के संबंध में स्थापित किया गया था और उपर्युक्त निर्णयों की समीक्षा करने के बाद उन्होंने निर्णय किया कि प्रश्न यह था कि मुख्य प्रयोजन मान्य पूर्त प्रयोजन है या नहीं

> "हमारे विचार से तो यदि वह न्यास वस्तुतः शिक्षा के लिए था तो यह बात कि शिक्षा कंजर्वेटिव पार्टी को सौंपी गई न्यास की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करेगी । किंतु दूसरी ओर यदि सही दृष्टिकोण यह हो कि न्यास कंजर्वेटिव सिद्धांतों की अभिवृद्धि के लिए था .... और शिक्षा, व्याख्यान आदि उस प्रयोजन के समनुषंगी थे जो कि मुख्य और प्रमुख प्रयोजन था तो यह बात की व्याख्यान आदि शिक्षा-प्रदायी होंगे इसके लिए पर्याप्त नहीं होगी कि न्यास को केवल पूर्त प्रयोजनार्थ न्यास बना दे ।"

16. यह निर्णय करते हुए कि महाविद्यालय सारतः कंजर्वेटिव व पार्टी के लिए शिक्षा केंद्र था और ऐसा विलेख के अनुसार ही था, विद्वान् न्यायाधीश ने विनिश्चय किया कि कर से छूट का दावा मान्य नहीं हो सकता । ये अंग्रेजी निर्णय केवल वहां तक सुसंगत हैं जहां तक कि वे उस रीति के उदाहरण हैं जिससे कि व्यापाक अर्थ में राजनीतिक उद्देश्य (जिसके अंतर्गत विशिष्ट मतों के हित में विधायन के कार्यक्रम भी हैं) इस प्रश्न को प्रभावित करते हैं कि क्या न्यायालय न्यास को सामान्य लोग उपयोग के प्रयोजनार्थ मान सकता है । मूल निर्देश-पत्र में आयुक्त ने यह संकेत नहीं किया था कि समाचारपत्र के संस्थापक का आशय उसे केवल राजनीतिक प्रचार का माध्यम बनाना था और सरदार दयाल सिंह के मामले में इसमें संदेह करना अनुचित लगता है कि उनका उद्देश्य उत्तर भारत के निवासियों को उन्हें एक अंग्रेजी समाचारपत्र उपलब्ध करके फायदा पहुंचाने का था कि समाचारों का प्रसार किया जाए लोक हित के सभी विषयों पर मत व्यक्त किए जाएं । किसी समाचारपत्र के लिए संभवतः यह असंभव नहीं है, किंतु बहुत कठिन है कि कोई विशिष्ट राजनीतिक प्रवृत्ति रखने या अर्जित करने से बचा रहे, सिवाय उस दशा के जब कि वह सरकारों या विधान-मंडलों के क्रियाकलाप का उल्लेख ही न करे या उनके विषय में

---

[1] (1933) 17 टेक्स केसेज 508.

चयनात्मक या असंगत ढंग से व्यवहार करे । 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक में उत्तरी भारत की परिस्थितियां भारतीय पाठकों के लिए प्रकाशित किसी समाचारपत्र को निःसंदेह सामाजिक और आर्थिक सुधार के विभिन्न आंदोलनों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण बना देने वाली थीं । किंतु हमारे समक्ष सामग्री है जिससे समाचारपत्र की प्रकृति प्रकट होती है कि वह किस प्रकार वसीयकर्ता के जीवनकाल में चलाया गया । उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि राजनीति और विधायन के प्रश्नों की चर्चा इस समाचारपत्र में चर्चित अन्य बहुत से विषयों में से कुछ विषयों के रूप में की गई और यह सिद्ध नहीं किया गया है कि राजनीतिक प्रयोजन इस न्यास का मुख्य प्रयोजन था ।

17. हमारे विचार से समाचारपत्र का उद्देश्य उचित तौर पर प्रांत को शिक्षित लोक मत का माध्यम प्रदान करने का उद्देश्य कहा जा सकता है और यह प्रथमदृष्ट्या सामान्य लोक उपयोग का प्रयोजन ठहराया जाना चाहिए । उस समय की विशिष्ट परिस्थितियों, वसीयत के निदेशों और 1898 के पूर्व समाचारपत्र की विषयवस्तु को देखते हुए हमारा विचार है कि प्रस्तुत मामला तथ्यों की दृष्टि से उपर्युक्त (1933)17 टेक्स केसेज 508 अथवा (1931)1 चां. 258 में न्यायमूर्ति रसेल द्वारा बताए गए मामले की अपेक्षा उपर्युक्त (1898)1 चां. 638 के निकटतर है । हमारे विचार से इन परिस्थितियों में यह मामला भारतीय अधिनियम के छूट वाले खंड की परिधि के बाहर नहीं माना जा सकता । इस पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि यदि वसीयत द्वारा घोषित न्यास भविष्य में ठप्प हो जाए तो क्या स्थिति होगी । बताए गए कारणों से हमारी राय है कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिए और आयुक्त के 26.1.1934 के निर्देशपत्र में निर्दिष्ट दो प्रश्नों में से द्वितीय का उत्तर "हां" में दिया जाना चाहिए । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तदनुसार है । प्रत्यर्थी अपीलार्थियों का उच्च न्यायालय में निर्देश का और इस अपील का खर्चा अदा करें ।

अपील मंजूर की गई ।

बाबा करतार सिंह बेदी .... अपीलार्थी

बनाम

दयाल दास तथा अन्य .... प्रत्यर्थी

15.6.1939

न्यायमूर्ति किलोवेन के लार्ड रसेल, न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर लांसलाट सेंडरसन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जैकर

विबंध – वसीयत की शर्तो के अधीन चेले के रूप में किसी व्यक्ति के नामांकन की विधिमान्यता से संबंधित प्रश्न विधिक प्रश्न होने के कारण उस बारे में कोई विबंध नहीं हो सकता ।

कब्जा – जहां वादी का वादगत संपत्ति पर वाद के दिन और उसके पूर्व बहुत वर्षो तक कब्जा नहीं रहा और उन व्यक्तियों के विरुद्ध दावा कर रहा है जिनका संपत्ति पर कब्जा है, वहां वह अपने हक के बल पर ही सफल हो सकता है, न कि अपने विरोधियों की निर्बलता पर ।

साक्ष्य विधि – वसीयत – जो वसीयत के अधीन दावा कर रहा है वह उस संपत्ति की प्रकृति के बारे में जिसकी व्यवस्था की गई है वसीयतकर्ता के कथन को निराकृत नहीं कर सकता ।

हिन्दू विधि – धार्मिक विन्यास – यदि कोई संपत्ति किसी व्यक्ति द्वारा उसकी निजी संपत्ति के रूप में धारित है, जो मात्र यह परिस्थिति कि तत्पश्चात् वह गुरु से चेले को मिली इस उपधारणा को उचित नहीं ठहराएगी कि वह धार्मिक संपत्ति थी ।

हिन्दू विधि – चेले और दत्तक पुत्र – "चेला" का अर्थ है शिष्य – वह दत्तक पुत्र से भिन्न होता है, अपने बनाए जाने की प्रक्रिया में भी और अपने अस्तित्व के प्रयोजन में भी – साधारणतया चेला कार्यरत महंत द्वारा अपने जीवन काल में धार्मिक संस्था के कार्यकलाप के संचालन हेतु नामांकित किया जाता है – उसका दतक पुत्र से कोई सादृश्य नहीं – दत्तक पुत्र के मामले में यह अनिवार्य कि जनक माता-पिता में से एक उसे गोद दे और गोद लेने वाले माता-पिता में से एक उसे गोद ले – इसके बिना दत्तक-ग्रहण विधिमान्य नहीं – समारोहपूर्वक दत्तक-ग्रहण पूरा करने के लिए होम होता है – दत्तकपुत्र का प्रमुख कार्य अपने अभिभावकों और उनके पूर्वजों की आत्मा को शांति के लिए समय-समय पर श्राद्ध करना है – इनमें से कोई बात चेले के मामले में नहीं पाई जाती – उसका मुख्य काम संस्था

के परंपरागत दायित्व का निर्वहन करना और संस्था की संपत्ति का प्रबंध करना है ।

इस मामले में यह प्रश्न तमाम जटिलताओं से मुक्त और सरल सा है कि क्या किशन दास की वसीयत में वादी के पक्ष में दान करने के कोई शब्द हैं ? वसीयत के शब्दों का अर्थान्वयन करने पर न्यायालय की राय है कि ऐसे कोई शब्द नहीं है जो वादी को चेले या नामोर्दिष्ट व्यक्ति के रूप में संपत्ति देते हों । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अतः यह स्पष्ट है कि वे हम ऐसी संपत्ति के बारे में कार्रवाई नहीं कर रहे हैं जो किसी संयासी या फकीर की उस हैसियत से हो या किसी धार्मिक संस्था की हो और न ऐसी संपत्ति के बारे में कर रहे हैं जो ऐसे व्यक्तियों या संस्थाओं के उत्तराधिकार से संबंधित रूढ़िज विधि के अधीन जाती हो, यद्यपि "महंत" "चेला" और अन्य पदों का प्रयोग किया गया है, जो उचित रूप से सन्यासियों या महंतों के समाज के लिए उपयुक्त हैं । जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों ने कहा है, ये शब्द मात्र दिखावा हैं । यदि आत्माराम संपत्ति को अपनी निजी संपत्ति के रूप में धारण करता था, तो मात्र यह परिस्थिति की तत्पश्चात् वह गुरु से चेले को मिली इस उपधारणा को उचित नहीं ठहराएगी कि वह धार्मिक संपत्ति थी । यह बोर्ड परमानंद बनाम निहाल चंद में ऐसा ही विनिश्चय कर चुका है । प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने यह बहस की है कि वसीयत में शब्द "चेला" का अर्थ है दत्तक पुत्र । यह तर्क हमारी राय में बिल्कुल ही निराधार है । जैसा कि भारत में सुविदित है वह अपने बनाए जाने की प्रक्रिया और अपने अस्तित्व के प्रयोजन दोनों में दत्तक पुत्र से भिन्न होता है । प्रायः चेला पीठासीन महंत द्वारा अपने जीवनकाल में धार्मिक संस्था के कार्यकलाप के संचालन हेतु नामांकित किया जाता है, अथवा यदि महंत ऐसा न कर पाए तो चेला उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके प्रमुख अनुगामियों द्वारा, जो संस्था से संबंधित है, नामांकित किया जाता है । उसमें और हिन्दू विधि में यथाज्ञात दत्तक पुत्र में कोई सादृश्य नहीं हो सकता । दत्तक पुत्र के विषय में यह अनिवार्य है कि उसके माता-पिता में से कोई उसे गोद दे और गोद लेने वाले माता-पिता में से कोई उसे गोद ले । ऐसे गोद लेने और देने के बिना दत्तक-ग्रहण विधिमान्य नहीं होगा । इसके अतिरिक्त धार्मिक कृत्य होते हैं, जैसे गोद लेने के संव्यवहार को समारोहपूर्वक पूरा करने के लिए होम और अंत में यह कहा जा सकता है कि दत्तक पुत्र का प्रमुख काम होता है हिन्दू भावना के अनुसार अपने अभिभावकों और अन्य पूर्वजों की आत्मा की शांति के लिए समय-समय पर श्राद्ध करना । इनमें से कोई बात

चेले के विषय में नहीं पाई जाती । उसका संबंधन (affiliation) (यदि उसे ऐसा कहा जा सके तो) मुख्यतया संस्था की परंपरागत बाध्यताओं को जारी रखना तथा आनुषंगिक प्रयोजनार्थ संपत्ति धारण करना और उसका प्रबंध करना है । उसका मुख्य कार्य अपने पूर्वजों के लाभ हेतु मृतक संस्कार करना नहीं है, क्योंकि अधिकांशतः जब कोई सन्यासी या महंत उस श्रेणी में प्रवेश करता है तो वह वे अधिकार और बाध्यताएं निराकृत कर देता है जो किसी गृहस्थ की होती हैं, जिसके मरणोपरांत जीवन में सुख की चिंता करना उसके पुरुष वंशजों का काम है । (पैरा 11 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1938]	65 इंडियन अपील्स 252 = आ. इं. रि. 1938 प्रि. कौं. 195 : **परमानंद** बनाम **निहाल चन्द** ।	11

सिविल अपीली अधिकारिता : **1937 की अपील सं. 75.**

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. एम. दुने और आर. के. हांडू

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री एस. हयाय

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. जैकर ने दिया ।

न्या. जैकर – यह अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय की 30.4.1934 की डिक्री के विरुद्ध है, जिससे सहारनपुर के अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय की 29.4.1929 की डिक्री में संशोधन किया गया था । अपील प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दायर वाद से उत्पन्न हुई, जो उसने एक वसीयत की शर्तों के अधीन चेले और उत्तराधिकारी के रूप में स्थावर संपत्ति पर अपने हक की घोषणा, कब्जे और अंतःकालीन लाभ हेतु किया था । संपत्ति हरिद्वार के हिन्दू तीर्थस्थल में स्थित एक भवन, जिसे हवेली बुंढ़िया वाली कहा जाता है, और उससे संबद्ध कतिपय कमरों या बाह्य घर हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में कभी यह संपत्ति एक आत्माराम को दान में दी गई थी और आत्माराम के पास यह उसकी अपनी संपत्ति के रूप में रही । उसकी मृत्यु के पश्चात् यह संपत्ति उसके चेले अष्टावक्र को मिली (यह स्पष्ट नहीं है कि वह वसीयत द्वारा मिली अथवा विधि के प्रवर्तन से) । उसके बाद यह उसके गुरुभाई ध्यान दास को मिली और ध्यान दास की मृत्यु के पश्चात् वह उसके चेले किशन दास को मिली । किशन दास ने अपने जीवनकाल में संपत्ति को अपनी निजी और व्यक्तिगत संपत्ति के रूप

में धारित किया और उसका उपभोग किया । उसने लगभग 2-1/2 वर्ष के एक बालक साहब दास को अपने चेले के रूप में रख लिया । 1904 में किशन दास की मृत्यु हो गई । उसने अतर कुंवर (प्रतिवादी सं. 1) को अपनी विधवा के रूप में छोड़ा । कार्यवाही से यह स्पष्ट नहीं है कि इस महिला का किशन दास से ठीक क्या संबंध था, वह उसकी विधिपूर्वक विवाहित पत्नी थी या मात्र उप-पत्नी । किंतु इस मामले के संबंध में हमारा जो विचार है, उसकी दृष्टि से यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है । किशन दास ने 19.2.1904 की एक वसीयत छोड़ी, और क्योंकि इस मामले में मुख्य प्रश्न उसके निबंधनों के अर्थान्वयन से संबंधित है अतः उनका विस्तार से उल्लेख आवश्यक है :–

> "मैं, महंत किशन दास, चेला महंत ध्यान दास, जाति साधु उदासी, निवासी कस्बा हरिद्वार, थाना ज्वालापुर, जिला सहारनपुर, निम्नलिखित घोषणा करता हूं – मेरी आयु लगभग 35 वर्ष की है और कई रोगों से ग्रस्त होने के कारण मैं प्रायः बीमार रहता हूं । जीवन ऋण-स्वरूप है । अब लगभग ढाई वर्ष का अवयस्क साहब दास मेरा चेला है । अतः अब मैंने स्वस्थ मत और तन से अपनी सारी स्थावर और जंगम संपत्ति, जिसका मैं स्वयं सकब्जा स्वामी हूं, अपने उपर्युक्त चेले साहब दास को दे दी है और उसे अपने स्थान पर महंत और उत्तराधिकारी बना दिया है और अपनी पत्नी श्रीमती अतर कुंवर को उक्त महंत की संरक्षिका और वारिस बना दिया है । ईश्वर न करे, यदि उक्त महंत साहब दास की मृत्यु हो जाए, तो श्रीमती अतर कुंवर को, महंत प्रेम सिंह, महंत कान दास तथा लाला राम प्रसाद चौधरी, सर्जन सिंह और डा. लेना सिंह के, जो कस्बे हरिद्वार के रईस हैं, परामर्श से किसी अन्य व्यक्ति को चेला नियुक्त करने की शक्ति होगी । क्योंकि यह संपत्ति मेरी व्यक्तिगत संपत्ति है और इसके संबंध में मुझे पूर्ण शक्ति प्राप्त है । मैं इस लिखत द्वारा वसीयत करता हूं कि महंत साहब दास और उक्त संरक्षिका को किसी समय मेरी संपत्ति बेचने या बंधक रखने का अधिकार नहीं होगा और भेक को भी मेरी संपत्ति से कोई सरोकार नहीं होगा । यदि मेरी मृत्यु के पश्चात् भेक मेरी संपत्ति के विषय में किसी प्रकार का कोई दावा करे तो इस लिखत के सामने वह अविधिमान्य समझा जाएगा । अतः वसीयत के रूप में मैंने यह विलेख लिख दिया, जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर वह साक्ष्य के रूप में काम आ सके ।"

2. किशन दास की मृत्यु के पश्चात् अतर कुंवर ने, दृश्यतः शिशु

साहबदास की ओर से, संपत्ति का प्रबंध किया । साहब दास का 1907 में देहांत हो गया । उसके बाद भी वह यथारपूर्व संपत्ति धारण किए रही और उसका उपयोग करती रही । 17.10.1923 को अतर कुंवर ने वसीयत के अनुसार वादी दयाल दास (प्रत्यर्थी सं. 1) को किशन दास के चेले के रूप में नामांकित किया, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि इस नामांकन के बावजूद यथापूर्व उसका संपत्ति पर कब्जा रहा और वह उसका उपभोग करती रही । तत्पश्चात् वादी दयाल दास और अतर कुंवर के मध्य विवाद उठने लगे और उनके विवादों के ब्यौरों में न जाते हुए यह बताना पर्याप्त है कि अतर कुंवर ने अंततः चेले के रूप में वादी की नियुक्ति निराकृत कर दी और 5.5.1927 को उसने उक्त संपत्ति का एक न्यास-विलेख निष्पादित कर दिया, जिसके द्वारा उसने उसे पूर्त उपभोग के लिए समर्पित कर दिया, जिनमें अन्य बातों सहित, एक अस्पताल और अनाथालय खोलना और उसका रख-रखाव तथा विधवाओं की शिक्षा और निवास की व्यवस्था भी थी । उसने उक्त विलेख में प्रतिवादी सं. 2-10 को न्यासी नियुक्त किया और एक सलाहकार समिति नियुक्त की, जिसमें प्रतिवादी सं. 11-16 थे । उसने समिति को यह अधिकार दिया कि वह समय-समय पर उक्त न्यास के प्रयोजनों और उद्देश्यों में सुधार के संबंध में सुझाव दे । हमारे समक्ष अपीलार्थी इस सलाहकार समिति का एक सदस्य है ।

3. उक्त न्यासियों की नियुक्ति के बावजूद अतर कुंवर ने उक्त संपत्ति का कब्जा अपने हाथ में ही रखा । उसने ऐसा दृश्यतः न्यास विलेख के ही एक खंड के अधीन किया, जो उसे अपने जीवनकाल में उक्त संपत्ति की आय वसूल करने और प्रति वर्ष उसमें से कुछ राशियां अपने भरणपोषण, व चिकित्सा उपचार और भिक्षा देने के लिए लगाने की शक्ति प्रदान करता है । आय का अतिशेष न्यासियां का दिया जाना था । इस न्यास विलेख से व्यथित होकर वादी दयाल दास ने अकिंचन के रूप में यह वाद सहारनपुर के अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में 21.6.1927 को संस्थित किया । उसने अतर कुंवर (प्रतिवादी सं. 1), उक्त न्यास विलेख के न्यासियों (प्रतिवादी सं. 2-10) और उक्त सलाहकार समिति के सदस्यों (प्रतिवादी सं. 11-16) को प्रतिवादी बनाया । उसने वाद में इन अनुतोषों का दावा किया :–

(क) घोषणा कि उक्त न्यास विलेख अकृत और शून्य है और उस दस्तावेज के अधीन किसी न्यास का सृजन नहीं हुआ ।

(ख) घोषणा कि वादी किशनदास का उत्तराधिकारी और महंत है ।

4. उसने यह भी दावा किया कि उसे प्रतिवादियों को बेकब्जा करके विवादगत संपत्ति पर कब्जा और वाद प्रारंभ होने की तारीख से कब्जे की तारीख तक का अंतःकालीन लाभ दिलाया जाए । अपने वादपत्र में उसने अपने हक की घोषणा के दावे हेतु निम्नलिखित कथनों को आधार बनाया :–

"उक्त हवेली के अंतिम महंत किशन दास थे, जिनकी मृत्यु वर्ष 1904 में हो गई । उनके पश्चात् उनके चेला साहब दास उनके उत्तराधिकारी और महंत हुए ; किंतु क्योंकि साहब दास अवयस्क थे अतः उपर्युक्त किशन दास ने 19.2.1904 को अपनी वसीयत के अधीन प्रतिवादी सं. 7 श्रीमती अतर कुंवर को उसकी संरक्षि नियुक्त किया । उक्त वसीयत के अधीन उन्होंने प्रतिवादी सं. 1 को यह भी अधिकार दिया कि यदि उपर्युक्त साहब दास का देहावसान हो जाए तो श्रीमती अतर कुंवर दिवंगत किशन दास के उत्तराधिकारी और महंत के रूप में अन्य चेला नियुक्त कर लें ।

उपर्युक्त साहब दास का 1907 में देहावसान हो गया । श्रीमती अतर कुंवर प्रतिवादी सं. 1 ने पंचायत की उपस्थिति में 17.10.1923 को वादी को दिवंगत महंत किशन दास का उत्तराधिकारी एवं चेला और महंत नियुक्त किया तथा उसी दिन पंचायत के सामने महंत की नियुक्ति संबंधी धार्मिक कृत्य किए गए और उसी दिन से वादी महंत तथा उक्त हवेली के बारे में दिवंगत महंत किशन दास का उत्तराधिकारी हो गया तथा उसने महंत और उत्तराधिकारी के रूप में दावाकृत संपत्ति का कब्जा प्राप्त कर लिया ।"

5. अतर कुंवर वाद संस्थित करते समय जीवित थी । उसने वादी के दावे से इनकार किया । बाद में 10.1.1929 को उसकी मृत्यु हो गई । अन्य प्रतिवादियों ने अतर कुंवर का समर्थन किया । अधीनस्थ न्यायाधीश ने निम्नलिखित विवाद्यक बनाए :–

"(i) क्या श्रीमती अतर कुंवर ने वादी को महंत किशन दास का चेला बनाया और क्या वह ऐसा करने के लिए सक्षम थी तथा क्या वादी उस नाते दिवंगत किशन दास की विवादगत संपत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता था ?

(ii) क्या वादी को प्रस्तुत प्रतिवादियों के विरुद्ध कोई वादहेतुक है और क्या वह उनके विरुद्ध संपत्ति का हकदार है ?

(iii) क्या अंतःकालीन लाभ का दावा इस प्रक्रम पर जोड़ा जा

सकता है और यदि हां तो वादी कितने अंतःकालीन लाभ का हकदार है ?"

6. विवाद्यक सं. 1 पर अधीनस्थ न्यायाधीश ने तथ्य के रूप में पाया कि अतर कुंवर ने वादी को चेले के रूप में नियुक्त किया एवं उसे संपत्ति के उत्तराधिकारी के रूप में नामित किया तथा ऐसी नियुक्ति के लिए अपेक्षित धार्मिक कृत्य किए गए, किंतु वह किसी को चेला नियुक्त करने के लिए विधिक दृष्टि से सक्षम नहीं थी, क्योंकि स्त्री होने के कारण वह उसे गुरुमंत्र नहीं दे सकती थी तथा वादी के साक्षी ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दे सके जिसमें किसी स्त्री ने कोई चेला नियुक्त किया हो और ऐसे किसी उदाहरण के बारे में न कोई कथन है और न वह साबित किया गया है । उन्होंने यह भी पाया कि अतर कुंवर ने कभी कोई मंत्र नहीं दिए जो किसी ने भी कभी स्वीकार किए हों तथा गुरु और चेले का संबंध आध्यात्मिक है और यदि कोई स्त्री अपने पति या उप-पति का चेला नियुक्त करे तो ऐसा संबंध नहीं हो सकता । उन्होंने आगे विनिश्चय किया कि यद्यपि संपत्ति महंतों की व्यक्तिगत संपत्ति थी और जब से वह महंत आत्माराम के हाथों में आई गुरु से चेले को या एक शिष्य से दूसरे शिष्य को मिलती आई तथा वह केवल गद्दी के लाभ के लिए अंतरित की जा सकती थी, अतः किशन दास अतर कुंवर को साहब दास के वारिस के रूप में नियुक्त नहीं कर सकता था और उसके द्वारा वादी की किशन दास के चेले के रूप में नियुक्त विधितः अमान्य है । वादी के विरुद्ध इस निष्कर्ष के पश्चात् अधीनस्थ न्यायाधीश ने विनिश्चय किया कि क्योंकि प्रतिवादी स्वयं अपने पक्ष में न्यास हेतु किशन दास की वसीयत का आश्रय लेते हैं अतः वे उक्त वसीयत को प्रश्नगत नहीं कर सकते और क्योंकि वादी चेला बना दिया गया और उसे अपना परिवार बदलना पड़ा और पैतृक रोजगार छोड़ना पड़ा अतः अतर कुंवर और उसके अधीन दावा करने वाले प्रतिवादी वादी का हक प्रश्नगत करने से संबंधित हैं तथा वादी किशन दास की विवादित संपत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता था । उन्होंने विवाद्यक सं. (ii) और (iii) का तद्नुसार निर्णय किया और 29.4.1929 को वादी के पक्ष में खर्चे तथा वाद के आरंभ से कब्जा पाने की तारीख तक के अंतःकालीन लाभ सहित घोषणा और कब्जे की डिक्री पारित कर दी ।

7. कुछ न्यासी-प्रतिवादियों और हमारे समक्ष के अपीलार्थियों सहित सलाहकार समिति के कुछ सदस्यों ने इस डिक्री के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय में अपील की । उच्च न्यायालय के समक्ष बहस के दौरान प्रत्यर्थी सं. 1 ने एक नया अभिवचन किया कि किशन दास द्वारा की गई वसीयत

के अधीन वह संपत्ति का उत्तराधिकारी होने का हकदार था, विधि की दृष्टि में वह चाहे किशन दास का चेला हुआ या नहीं । विबंध के प्रश्न पर उच्च न्यायालय ने विनिश्चय किया कि कोई विबंध नहीं है और विबंध का कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता था, क्योंकि साक्ष्य के अनुसार अतर कुंवर ने यह व्यक्त किया कि वसीयत के अनुसार वादी चेला और उत्तराधिकारी हो गया था, और वह वसीयत एक लिखित दस्तावेज था तथा उसकी विषयवस्तु वादी और अतर कुंवर दोनों को ज्ञात थी तथा कि यदि अतर कुंवर ने वसीयत का गलत अर्थ लगाया और यदि वसीयत से वादी को हक प्राप्त नहीं हुआ किंतु अतर कुंवर ने कहा कि प्राप्त हुआ, तो अतर कुंवर का वह कथन विधि का कथन होगा क्योंकि वह वसीयत का निर्वचन है और ऐसा कथन विबंध के रूप में लागू नहीं किया जा सकता । उच्च न्यायालय के इस मत को हमारे समक्ष गंभीरता से प्रश्नगत नहीं किया गया है और उस पर विस्तार से चर्चा करना अनावश्यक है । हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि चेले के रूप में वादी के नामांकन की विधिमान्यता के संबंध में विधिक प्रश्न के बारे में विबंध लागू नहीं हो सकता । इस प्रश्न पर उच्च न्यायालय ने कोई राय व्यक्त नहीं कि कि क्या स्त्री होकर भी अतर कुंवर वादी किशन दास का विधिमान्य चेला बना सकती थी । उनका मत था कि निःसंदेह चेला वह व्यक्ति बना सकता है जिसका कोई चेला हो, किंतु वे यह उपधारित करेंगे कि अधीनस्थ न्यायाधीश सही थे ।

8. मुख्य प्रश्न जिस पर उच्च न्यायालय ने विचार किया था – "वादी अपना हक चेले के रूप में अपनी स्थिति से प्राप्त करता है या वसीयत के अधीन प्राप्त करता है ?" विद्वान् न्यायमूर्तियों ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि यद्यपि वादपत्र में वादी ने कहा था कि वह महंत और किशन दास का हक उत्तराधिकारी हो गया था, साथ ही उसने वसीयत का भी आश्रय लिया था । वसीयत की भाषा पर विचार करते हुए विद्वान् न्यायाधीशों ने कहा कि पूरी दस्तावेज पढ़ने पर उन्हें इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि किशन दास का आशय था कि यदि साहब दास की मृत्यु हो जाए और अतर कुंवर कोई चेला बनाएं तो वह चेला किशन दास की संपत्ति का मालिक होगा ; चेला रखने का उद्देश्य यह था कि वह संपत्ति धारण करे और इसके अतिरिक्त कोई उद्देश्य नहीं था ; वसीयत की भाषा से यह स्पष्ट है कि अतर कुंवर के पास संपत्ति तभी रहेगी जब वह कोई चेला बनाएं, किंतु ऐसे चेले के अस्तित्व में आ जाने की दशा में उसे संपत्ति से निर्निहित होना पड़ेगा और उसके द्वारा बनाया गया चेला संपत्ति ले लेगा तथा वसीयत के अधीन जैसे ही अतर कुंवर ने वादी को चेला बनाया वह हिन्दू विधि द्वारा अधिरोपित

कतिपय शर्तों के अधीन, संपत्ति का हकदार हो गया । मामले का इस दृष्टि से देखने पर विद्वान् न्यायाधीशों ने इस पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा कि विधि रूप से वादी किशन दास का चेला हो गया या नहीं । उसके विचार से किशन दास उस व्यक्ति के संपत्ति देना चाहता था जिसे अतर कुंवर चेला बनाए और क्योंकि वादी ऐसा व्यक्ति था जो उस अपेक्षा को पूरा करता था, अतः वसीयत के अधीन संपत्ति उसे मिल गई । न्यायाधीशों ने आगे विनिश्चय किया कि मामला उस वर्ग के मामलों से अंतर करने योग्य है जहां दान किसी आदाता को (जैसे कि दत्तक पुत्र) दो विवरणों से किया जाए जिनमें एक विवरण गलत हो । उनका विचार था कि इस मामले में केवल एक विवरण था और दान उस व्यक्ति को था जो चेला बनाया जाए । वे अधीनस्थ न्यायाधीश की इस बात से सहमत थे कि वसीयत में वर्णित कतिपय व्यक्तियों की सहमति प्राप्त करने की औपचारिकता पूरी कर ली गई थी और उन्होंने विनिश्चय किया कि वादी ने वसीयत के अधीन नामनिर्दिष्ट व्यक्ति (persona designate) के रूप में संपत्ति प्राप्त की ।

9. मामले को इस दृष्टि से देखने पर, विद्वान् न्यायाधीशों ने यह अभिनिश्चित करना आवश्यक समझा कि क्या वादी दयाल दास का उस समय अस्तित्व था जब किशन दास की मृत्यु हुई और क्योंकि उसकी आयु के विषय में निचले न्यायालय में कोई विवाद्यक नहीं बनाया गया था अतः उन्होंने इस विवाद्यक के निर्णय हेतु मामला वापस भेज दिया । अधीनस्थ न्यायाधीश ने इस का विचारण किया । अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वादी का जन्म किशन दास की मृत्यु के पूर्व हो गया था । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष स्वीकार किया और कब्जे की डिक्री की पुष्टि कर दी तथा अंतःकालीन लाभ के संबंध में थोड़ा परिवर्तन कर दिया, जिसकी अतर कुंवर की मृत्यु की तारीख से डिक्री कुछ प्रतिवादी न्यासियों के विरुद्ध दी गई । इस डिक्री के विरुद्ध सपरिषद् हिज मैजेस्टी को अपील की गई । प्रत्यर्थी सं. 1 के अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक प्रश्न उठाया कि क्या प्रस्तुत अपीलार्थी को अपील करने का अधिकार है, क्योंकि विवादित संपत्ति में उसका कोई हित नहीं है और उसे डिक्री से व्यथित नहीं कहा जा सकता । बाद में उन्होंने यह प्रश्न त्याग दिया और हमारी राय में उन्होंने ऐसा सही तौर पर किया । क्योंकि यह प्रश्न त्याग दिया गया है, अतः इस पर इसके सिवाय कोई टिप्पणी करना आवश्यक नहीं है कि स्वयं वादी ने प्रस्तुत अपीलार्थी को वाद में प्रतिवादी बनाया उसके विरुद्ध अनुतोष का दावा किया और कब्जे एवं खर्चे की डिक्री प्राप्त

की । अतः वह डिक्री से व्यथित है और इसके अतिरिक्त वह न्यास का समर्थन करने में हितबद्ध है, जिस पर वादी आक्षेप कर रहा है । न्यास एक लोक पूर्त न्यास है और अपीलार्थी इसमें हितबद्ध है कि वह बना रहे । अतः हमारी राय में वह तर्क इतना तकनीकि है कि माना नहीं जा सकता और यदि आवश्यक होता तो हमें इस त्रुटि को दूर करने हेतु कुछ न्यासियों को अभिलेख पर लाने के अनुमति देने में कोई कठिनाई नहीं होती ।

10. हमारे समक्ष मुख्यता इस प्रश्न पर बहस की गई है – क्या किशन दास की वसीयत में वादी के पक्ष में चेले या नामोनिर्दिष्ट व्यक्ति के रूप में दान करने के कोई शब्द हैं ? इससे पूर्व कि हम इस प्रश्न पर विचार करें, मार्ग से कुछ अड़चने हटाना आवश्यक है, जो इस मामले में साक्ष्य से आती हैं । यद्यपि कुछ साक्ष्य यह दर्शित करता है कि वादगत संपत्ति गुरु से चेले को मिली, किंतु वह सभी कार्यवाहियों में निरंतर किशन दास की निजी और व्यक्तिगत संपत्ति मानी गई है । यदि एक बार यह बात मान ली जाए तो सरल सा एक प्रश्न रहता है, कि एक प्राइवेट व्यक्ति के रूप में अपनी व्यक्तिगत संपत्ति की बाबत कार्रवाई करने वाली किशन दास की वसीयत का अर्थान्वयन किस प्रकार किया जाना है । इस मामले में साधारण हिन्दू विधि के अधीन, महंत या संयासी को संपत्ति के बारे में चेले के उत्तराधिकार का या उसके प्रबंधाधीन किसी धार्मिक विन्यास या संस्था के बारे में किसी रूढ़ि का कोई प्रश्न नहीं उठता । यह निःसंदेह है कि हिन्दू विधि में कुछ दशाओं में चेला या शिष्य अपने गुरु की संपत्ति का उत्तराधिकारी हो सकता है (देखिए – मिताक्षा, अध्याय 2, सेक्शन 7 प्लेसिटन 1 – स्टोक्सकृत हिन्दू ला बुक्स पृष्ठ 449) । किंतु वादी का कथन ऐसा नहीं है, और न इस वाद में प्रस्तुत साक्ष्य से ऐसा परिणाम निकलता है । हम निचले दोनों न्यायालयों के निष्कर्ष स्वीकार करते हैं और उसके समर्थन में पर्याप्त साक्ष्य है कि किशन दास के हाथों में संपत्ति उसकी निजी संपत्ति थी । अपनी वसीयत में उसने स्पष्टतया कहा कि संपत्ति उसकी व्यक्तिगत संपत्ति है और उसके संबंध में उसे पूर्ण शक्ति प्राप्त है और भेक को इससे कोई सरोकार नहीं है, तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् यदि भेक संपत्ति के बारे में किसी प्रकार का कोई दावा करे तो वह इस वसीयत के सामने अविधिमान्य माना जाए, जो उसने निष्पादित की है कि आवश्यकता पड़ने पर वह साक्ष्य के रूप में काम आ सकें । क्योंकि वादी वसीयत के अधीन दावा करता है, अतः वह वसीयतकर्ता के इन कथनों को निराकृत नहीं कर सकता । मामले में और भी साक्ष्य है जो, जैसा कि विचारण न्यायालय का भी कब्जा है, दर्शित करता है कि किशन

दास न महंत था, न नियमित उदासी फकीर, न कोई मठ या संस्था थी जिसका किशन दास महंत होता, अतः इस मामले में संपत्ति की प्रकृति के बारे में कोई प्रश्न नहीं हो सकता । हमारे समक्ष अपने पक्ष कथन में वादी कहता है :–

> "विवादित संपत्ति का अंतिम स्वामी किशन दास था । वह अपने आप को महंत कहता था, किंतु वह न तो कोई साधु था, न किसी धार्मिक पूर्त संस्थान का सदस्य था । फिर भी वह साधु बनता था और उसने लगभग 2-1/2 वर्ष के एक बच्चे साहब दास को गोद लिया और उसे वह अपना चेला कहता था ।"

11. अतः यह स्पष्ट है कि वे हम ऐसी संपत्ति के बारे में कार्रवाई नहीं कर रहे हैं जो किसी संयासी या फकीर की उस हैसियत से हो या किसी धार्मिक संस्था की हो और न ऐसी संपत्ति के बारे में कर रहे हैं जो ऐसे व्यक्तियों या संस्थाओं के उत्तराधिकार से संबंधित रूढ़िज विधि के अधीन जाती हो, यद्यपि "महंत" "चेला" और अन्य पदों का प्रयोग किया गया है, जो उचित रूप से सन्यासियों या महंतों के समाज के लिए उपयुक्त हैं । जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों ने कहा है, ये शब्द मात्र दिखावा हैं । यदि आत्माराम संपत्ति को अपनी निजी संपत्ति के रूप में धारण करता था, तो मात्र यह परिस्थिति की तत्पश्चात् वह गुरु से चेले को मिली इस उपधारणा को उचित नहीं ठहराएगी कि वह धार्मिक संपत्ति थी । यह बोर्ड **परमानंद** बनाम **निहाल चंद**[1] में ऐसा ही विनिश्चय कर चुका है ।

12. अतः, इस मामले में प्रश्न ऐसी तमाम जटिलताओं से मुक्त है और सरल-सा है कि क्या किशन दास की वसीयत में वादी के पक्ष में दान करने के कोई शब्द हैं । वसीयत के शब्दों का उचित अर्थान्वयन करने पर हमारी राय है कि ऐसे कोई शब्द नहीं हैं जो वादी को चेले या नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में संपत्ति देते हों । वसीयतकर्ता अपनी वसीयत इस कथन से आरंभ करता है कि उसने 2-1/2 वर्ष के एक शिशु साहब दास को अपना चेला बनाया है और तत्पश्चात् वह "अपनी सब स्थावर और जंगम संपत्ति साहब दास को देने" के स्पष्ट शब्दों का प्रयोग करता है । वह उसे अपने स्थान पर महंत और उत्तराधिकारी भी बनाता है । तत्पश्चात् वह अपनी पत्नी अतर कुंवर को उक्त महंत की संरक्षिका और वारिस बनाता है । साहब दास की मृत्यु की दशा में वह अतर कुंवर को किसी अन्य व्यक्ति को चेला बनाने की शक्ति प्रदान करता है और फिर वह वहीं रुक जाता है ।

---

[1] 65 इंडियन अपील्स 252 = आ. इं. रि. 1938 प्रि. कौं. 195.

अतर कुंवर द्वारा बनाए जाने वाले उस चेले को संपत्ति देने के लिए वह वैसे व्ययनकारी शब्दों का प्रयोग नहीं करता जैसों का प्रयोग उसने साहब दास के मामले में किया है । हमारी राय में यह लोप उन पूर्व शब्दों के नितांत विपरीत है, जो उसने पहले चेले साहब दास को पूर्ण दान करने के संबंध में प्रयुक्त किए ।

13. उच्च न्यायालय ने जो तर्क सही पाया वह यह था कि वसीयत किशन दास की यह इच्छा प्रकट करती है कि अतर कुंवर उसका जो चेला नियुक्त करे उसे उसकी संपत्ति दी जाए । वसीयत की भाषा में हम ऐसी कोई इच्छा नहीं पाते और हमें शक्ति प्राप्त नहीं है कि किसी काल्पनिक इच्छा को प्रभावी बनाने के लिए वसीयत के लोप को भरे और इस प्रकार वसीयतकर्ता के लिए व्यवहार में एक नई वसीयत बनाएं । साहब दास को दान उसके नाम से है और उसका यह अर्थ नहीं लगया जा सकता कि वह अतर कुंवर द्वारा नियुक्त पश्चात्वर्ती चेले को भी दान है । वसीयत के पूर्व भाग में साहब दास का उल्लेख व्यक्तिगत है, दान का उल्लेख भी व्यक्तिगत है और द्वितीय चेले के रूप में वादी, यह मान लेने पर भी कि वह विधिमान्य रूप से नियुक्त किया गया था, उस दान के शब्दों का अवलंब अपने फायदे हेतु नहीं ले सकता । इस संदर्भ में प्रयुक्त शब्द अतर कुंवर द्वारा नियुक्त किए जाने वाले किसी पश्चात्वर्ती चेले के पक्ष में दान का अर्थ वहन करने में समर्थ नहीं है । फिर पश्चात्वर्ती चेले के संदर्भ में साहब दास के मामले के समान ऐसे कोई शब्द नहीं है कि वह वसीयतकर्ता के स्थान पर महंत और उत्तराधिकारी बनाया जाएगा और इसी प्रकार से पश्चात्वर्ती चेले की संरक्षिका के रूप में अतर कुंवर की वैसी नियुक्ति भी नहीं है जैसे कि साहब दास के मामले में है । अतः हमें यह स्पष्ट है कि साहब दास के दान का अपना ही स्थान है और वादी उसका फायदा इस परिस्थिति के आधार पर नहीं उठा सकता कि वह किशन दास का द्वितीय चेला नियुक्त किया गया । अतः हम उच्च न्यायालय के विचार से सहमत नहीं हैं । हम विनिश्चय करते हैं कि किशन दास की वसीयत के अधीन वादी को चेले या नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में, कोई हित प्राप्त नहीं हुआ ।

14. वसीयत के अधीन अतर कुंवर की संपत्ति की स्वामिनी के रूप में ठीक क्या शक्तियां थीं, और क्या उसे संपत्ति का कोई न्यास बनाने का अधिकार था, ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि वाद की तारीख को वादी का कब्जा नहीं था और उससे पूर्व भी बहुत वर्षों तक नहीं था । उसने उन व्यक्तियों के विरुद्ध वाद किया था जिनका संपत्ति पर कब्जा था । अतः वादी अपने हक

के बल पर ही सफल हो सकता था, न कि अपने विरोधियों की निर्बलता के आधार पर वाद को इस दृष्टि से देखने पर, विचारण न्यायालय के समक्ष उठाए गए इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या एक स्त्री के रूप में अतर कुंवर वादी को गुरुमंत्र देकर विधिमान्य चेला बना सकती थी, या क्या वादी विधि की दृष्टि में किशन दास का विधिमान्य चेला बना सकती थी, या क्या वादी विधि की दृष्टि में किशन दास का विधिमान्य चेला न होने पर वसीयत के अधीन कोई हित प्राप्त कर सकता है । मामले को किसी अन्य दृष्टि से देखने पर कदाचित ये प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण होते, किंतु क्योंकि हमारी राय में वसीयत में वादी के पक्ष में चेला या नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में अंतरण करने वाले कोई शब्द नहीं है, अतः इन प्रश्नों का निर्णय अपेक्षित नहीं है । प्रत्यर्थी की बहस में अपने दावे को उत्तराधिकार के उन रूढ़िजन्य नियमों पर आधारित करने का प्रयास किया गया जो महंतों और सन्यासियों को शासित करते हैं । हमारी राय में यह बात इस प्रक्रम पर नहीं उठाई जा सकती । वादपत्र के उपर्युक्त कथनों से इसका खंडन होता है, जिनसे यह स्पष्ट है कि वादी का दावा महंतों से संबंधित उत्तराधिकार के रूढ़िज नियमों के अधीन नहीं था । यह बात इस तथ्य के अतिरिक्त है कि जैसा कि दोनों निचले न्यायालयों ने माना है, इस मामले में कोई धार्मिक संस्था या कोई शृंखला है । अतः, ऐसे व्यक्तियों या संस्थाओं को शासित करने वाली रूढ़िज विधि का अवलंब लेने का कोई अवसर नहीं है । किशन दास के वर्ग, कुटुंब या संस्था के संबंध में किसी रूढ़ि का अभिवचन नहीं है । उस पर कोई विवाद्यक नहीं बना । इस विषय में कोई साक्ष्य भी नहीं दिया गया और हमारी राय में इस दावे को स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

15. प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने यह बहस की है कि वसीयत में शब्द "चेला" का अर्थ है दत्तक पुत्र । यह तर्क हमारी राय में बिल्कुल ही निराधार है । जैसा कि भारत में सुविदित है वह अपने बनाए जाने की प्रक्रिया और अपने अस्तित्व के प्रयोजन दोनों में दत्तक पुत्र से भिन्न होता है । प्रायः चेला पीठासीन महंत द्वारा अपने जीवनकाल में धार्मिक संस्था के कार्यकलाप के संचालन हेतु नामांकित किया जाता है, अथवा यदि महंत ऐसा न कर पाए तो चेला उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके प्रमुख अनुगामियों द्वारा, जो संस्था से संबंधित है, नामांकित किया जाता है । उसमें और हिन्दू विधि में यथाज्ञात दत्तक पुत्र में कोई सादृश्य नहीं हो सकता । दत्तक पुत्र के विषय में यह अनिवार्य है कि उसके माता-पिता में से कोई उसे गोद दे और गोद लेने वाले माता-पिता में से कोई उसे गोद ले । ऐसे गोद लेने

और देने के बिना दत्तक-ग्रहण विधिमान्य नहीं होगा । इसके अतिरिक्त धार्मिक कृत्य होते हैं, जैसे गोद लेने के संव्यवहार को समारोहपूर्वक पूरा करने के लिए होम और अंत में यह कहा जा सकता है कि दत्तक पुत्र का प्रमुख काम होता है हिन्दू भावना के अनुसार अपने अभिभावकों और अन्य पूर्वजों की आत्मा की शांति के लिए समय-समय पर श्राद्ध करना । इनमें से कोई बात चेले के विषय में नहीं पाई जाती । उसका संबंधन (affiliation) (यदि उसे ऐसा कहा जा सके तो) मुख्यतया संस्था की परंपरागत बाध्यताओं को जारी रखना तथा आनुषंगिक प्रयोजनार्थ संपत्ति धारण करना और उसका प्रबंध करना है । उसका मुख्य कार्य अपने पूर्वजों के लाभ हेतु मृतक संस्कार करना नहीं है, क्योंकि अधिकांशतः जब कोई सन्यासी या महंत उस श्रेणी में प्रवेश करता है तो वह वे अधिकार और बाध्यताएं निराकृत कर देता है जो किसी गृहस्थ की होती हैं, जिसके मरणोपरांत जीवन में सुख की चिंता करना उसके पुरुष वंशजों का काम है ।

16. हमारा ध्यान अतर कुंवर द्वारा वादी की चेले के रूप में नियुक्ति के समय किए गए धार्मिक कृत्यों की ओर दिलाया गया । हमारी राय में इन कृत्यों में ऐसा कुछ नहीं है जो इस विचार का समर्थन करे कि वादी की संबद्धता गोद लेने की प्रकृति की थी । अतः हमारा निष्कर्ष है कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिएं, उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय की डिक्रियां अपास्त की जानी चाहिएं और वादी का वाद खारिज किया जाना चाहिए । अपीलार्थी को प्रत्यर्थी सं. 1 से यहां का और निचले न्यायालयों का खर्चा मिलेगा । प्रत्यर्थी सं. 1 न्यायालय फीस मध्ये सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 33, नियम 11 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा अभिनिश्चित राशि सरकार को अदा करेगा । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तद्नुसार है ।

अपील मंजूर की गई ।

लाला चुन्नी लाल और अन्य ………………… अपीलार्थी

बनाम

उदय प्रकाश और अन्य …………………… प्रत्यर्थी

26.6.1939

न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

हिन्दू विधि – संयुक्त कुटुंब – दो भाइयों द्वारा उस संपत्ति की वापसी के लिए वाद जो उनके पिता ने अंतरित की थी – उसमें कथन कि दोनों भाई अपने बड़े भाई तथा पिता के साथ संयुक्त थे – यद्यपि यह बात नहीं मानी गई कि वे अपने पिता और बड़े भाई के साथ संयुक्त थे, किंतु उक्त कथन इस बात का साक्ष्य है कि वे दोनों भाई तब परस्पर संयुक्त थे ।

अतिब्याज उधार अधिनियम, 1918 – बंधक पर ब्याज की दर को घटाकर 15 प्रतिशत कर देना उचित माना गया ।

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1930]	इं. ला रि. 53 इलाहाबाद 21 = आ. इं. रि. 1930 इलाहाबाद 852 : **मदन लाल** बनाम **छिद्दू** ।	5

सिविल अपीली अधिकारिता : **1935 की अपील सं. 25.**

अपीलार्थियों की ओर से श्री जे. इ. गाडफ्रे

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री जे. पी. ऐडी और एच. डी. कोर्निश

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन ने दिया ।

न्या. रैंकिन – अपीलार्थियों ने 5.1.1929 को प्रत्यर्थियों पर मेरठ के अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में एक वाद फाइल किया जिसमें मौजा शिकोहपुर में स्थित कुछ संपत्ति के 15.9.1922 के बंधपत्र को प्रवर्तन कराना चाहा । उस बंधपत्र का निष्पादन प्रत्यर्थी सं. 1 उदय प्रकाश ने अपनी ओर से तथा अपने अवयस्क भाई ओम प्रकाश (प्रत्यर्थी सं. 2) के संरक्षक के रूप में किया था । वह अपीलार्थी सं. 1 चुन्नी लाल तथा अपीलार्थी सं. 2 के पिता रतन लाल (अब दिवंगत) के पक्ष में था । वह

षड्मासिक विराम सहित 2 प्रतिशत प्रतिमास ब्याज सहित 6,000/- रुपए की राशि के लिए था । उसमें से 200/- रुपए विलेख की रजिस्ट्री के पहले दिए गए और 250/- रुपए रजिस्ट्री के समय दिए गए दिखाए गए थे । शेष ऋण में चार राशियां शामिल थीं : 1,200/- रुपए व 1,600/- रुपए की राशियां 4.7.1921 और 19.2.1920 के पहले बंधकपत्रों पर ब्याज ; 1,350/- रुपए 28.6.1922 के वचनपत्र को चुकाने के लिए सुंदर लाल को दिए गए, तथा 1,400/- रुपए न्यायालय में वाद सं. 566 सन् 1919 में हुई 3.7.1922 की डिक्री की बाबत जमा करने के लिए ।

2. हरवंश सिंह मिताक्षरा द्वारा शासित हिन्दू था । उसके तीन पुत्र थे : फतेह सिंह, उदय प्रकाश और ओम प्रकाश । फतेह सबसे बड़ा था और प्रस्तुत मामले के लिए तात्विक सभी समयों पर वयस्क था । उदय का जन्म 1901 में हुआ था और ओम का 1904 में । ओम के एक पुत्र गंधर्व सिंह 1924 या उसके लगभग हुआ, अर्थात् वादगत बंधकपत्र की तारीख के बाद । 1920 में हरवंश सिंह की मृत्यु हो गई । इस कुटुंब के पास मूल्यवान संपत्तियां थीं । किंतु हरवंश सिंह ने फिजूलखर्ची की थी जिसके कारण 1915 में प्रकटतः 1,54,000/- रुपए का ऋण था । 26.5.1915 को मेरठ के जिला न्यायाधीश ने फतेह सिंह को उदय और ओम का संरक्षक नियुक्त कर दिया और उसी वर्ष दिसंबर में उन्हें बताया गया कि हरवंश सिंह और फतेह सिंह ने कुछ संपत्ति में अपना 5 बिस्वा हिस्सा 1,11,000/- रुपए में बेच दिया है और वे उदय और ओम के 5 बिस्वा हिस्से में से तीन बिस्वा का बंधक 47,000/- रुपए में करना चाहते हैं । यह प्रस्थापना उन्होंने मंजूर कर ली । और फिर फरवरी, 1916 में उन्होंने शेष 2 बिस्वा के बंधक की भी मंजूरी दे दी । जिला न्यायाधीश की इजाजत प्राप्त किए बिना फतेह सिंह ने अपनी ओर से, और ओम तथा उदय की ओर से 19.2.1920 का बंधपत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपनी ओर से अपीलार्थी सं. 1 से और अपीलार्थी सं. 2 के पिता से अर्द्धवार्षिक विराम सहित 15 प्रतिशत के ब्याज पर 8,500/- रुपए उधार लिए । यह राशि अंशतः (पूर्णतः नहीं) पूर्व बंधपत्रों के अधीन दावे चुकाने के लिए थी । इसी प्रकार से उन्हीं पक्षकारों के बीच 4.7.1921 को बंधपत्र हुआ । यह 4,500/- रुपए के लिए था और ब्याज की दर अर्द्धवार्षिक विराम सहित 1 रुपए 10 आ. प्रतिशत प्रतिमास थी । पुनः 28.6.1922 को उदय ने एक वचनपत्र लिखकर सुदंर लाल से 1,300/- रुपए लिए । उस वचनपत्र में लिखा गया था कि ऋण उस वाद के वित्तपोषण के लिए है जो उसने और ओम ने 1919 में दाखिल किया था । यह वाद कुछ संपत्ति के प्रत्युद्धरण के लिए था जो उनके पिता ने बेच

दी थी । अंत में वह उच्च न्यायालय में सफल हुआ और संपत्ति की वापसी इस शर्त पर की गई कि वाद के प्रतिवादियों को दिए जाने के लिए 1,400/- रुपए जमा किए जाएं । यह राशि अपीलार्थियों ने अब प्रश्नगत 15.9.1922 के बंधपत्र की एक शर्त के रूप में दी थी ।

3. अपीलार्थियों ने 5.1.1929 के अपने वादपत्र द्वारा फतेह सिंह, उदय, ओम और गंधर्व के अतिरिक्त पांच अन्य व्यक्तियों को पक्षकार बनाया कि वे वादगत बंधपत्र के बाद में संपत्ति के अंतरिती हुए । उनमें से केवल एक जगन्नाथ प्रसाद (प्रत्यर्थी सं. 5) ने लिखित कथन दाखिल किया, यद्यपि प्रतिवादी सं. 10 मीर सिंह मल ने भी मौखिक प्रतिरक्षा की । 14.11.1934 को अधीनस्थ न्यायाधीश ने निर्णय किया कि 15.9.1922 को उदय वयस्क था और वह बंधपत्र की पूरी राशि का देनदार है तथा वह विधिक आवश्यकता के आधार पर इस बात के लिए सक्षम था कि अपने अवयस्क भाई की ओर से भी कार्य करे, किंतु वह विधिक आवश्यकता केवल 1,400/- रुपए की राशि की बाबत प्रकट की गई, जो कि न्यायालय में जमा की गई थी, तथा 200 और 250/- रुपए की दो छोटी-छोटी राशियों की बाबत भी जो बंधपत्र के समय नकद प्राप्त की गई थीं । उन्होंने ब्याज की दर घटाकर अर्द्धवार्षिक विराम सहित 1 रुपए 10 आ. कर दी । अपील में उच्च न्यायालय ने यह डिक्री उपांतरित कर दी । विद्वान् न्यायमूर्तिगण (न्यायमूर्ति मुखर्जी और बेनेट) ने निर्णय किया कि हरवंश सिंह और फतेह सिंह 1915 में उदय और ओम से संपत्ति के विषय में विभाजित हो गए थे किंतु उदय और ओम एक-दूसरे से संयुक्त रहे ; वादगत बंधक की तारीख को उदय वयस्क था और वह इस बात के लिए सक्षम था कि विधिक आवश्यकतावश ओम के हित को आबद्ध करे, किंतु एकमात्र मद जिसकी बाबत विधिक आवश्यकता साबित की गई एक तो 1,400/- रुपए की राशि की थी जो न्यायालय में जमा की जानी थी और दूसरी 100/- रुपए थी जो कि बंधपत्र के स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्री के खर्चे के रूप में थे । उन्होंने यह भी निर्णय किया क्योंकि ओम और उदय संयुक्त थे अतः उदय अपना अविभक्त हित केवल विधिक आवश्यकता की सीमा तक बंधक कर सकता था । उन्होंने ब्याज की दर घटाकर 15 प्रतिशत प्रतिवर्ष के सादा ब्याज की कर दी ।

4. इस अपील में हम अपीलार्थी - बंधकदारों की ओर से श्री गाडफ्रे की विस्तृत बहस से लाभान्वित हुए । उनका अपने मुवक्किल के वादपत्र के विपरीत कहना है कि 1915 के बाद उदय और ओम विभक्त थे, किंतु यद्यपि साक्ष्य कुछ हल्का है, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि 1915

के बाद यह दोनों संपदा के विषय में संयुक्त रहे । अपने पिता द्वारा बेची गई भूमि की वापसी के लिए उनका वाद सं. 566 सन् 1919 इस आधार पर था कि कुटुंब अब भी संयुक्त कुटुंब है और यद्यपि यह बात एक ओर उनके और दूसरी ओर उनके पिता और ज्येष्ठ भाई के बीच विधितः सही नहीं हो सकती, फिर भी वह उन दोनों के परस्पर संबंध का उपयोगी साक्ष्य है । प्रतिवादियों में से किसी ने अपील नहीं की है । हम इसका विनिश्चय करने की आवश्यकता नहीं समझते कि केवल इस बात से कि फतेह सिंह को जिला न्यायाधीश के आदेश द्वारा उदय और ओम को संरक्षकता से नहीं हटाया गया था, क्या यह निर्णय किया जा सकता है कि उससे उदय का विधिक आवश्यकतावश बंधक करने का अधिकार प्रभावित हुआ । हम उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत हैं कि विधिक आवश्यकता केवल 1,400/- रुपए और 100/- रुपए की दो राशियों के लिए साबित की गई है ।

5. श्री गाडफ्रे ने बहस की कि प्रतिवादी सं. 5 जगन्नाथ प्रसाद के हित और उसके पक्ष में किए गए अंतरण या अंतरणों की प्रकृति के विषय में कोई विवरण साबित नहीं किया गया । उन्होंने बहस की कि ऐसा कुछ नहीं है जो प्रकट करे कि **मदन लाल** बनाम **छिद्दू**[1] के सिद्धांत का यहां उचित तौर पर उपयोग किया गया क्योंकि उदय का मात्र स्वैच्छिक अंतरिती उदय के अविभक्त हित के अंतरण को प्रश्नगत नहीं कर सकता । किंतु उस वाद में ओम पक्षकार था और कोई भी बात प्रकट नहीं की गई जो दिखाए कि उसका अंतरण पर आपत्ति करने का अधिकार प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता । इसके अतिरिक्त स्वयं अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष प्रति-आपत्ति में कहा था कि जगन्नाथ प्रसाद नीलाम क्रेता था । अतः यह आपत्ति सफल नहीं हो सकती । ओम द्वारा किसी अनुसमर्थन का प्रश्न भी विचारणीय नहीं है क्योंकि 5.3.1934 का बंधपत्र इस बोर्ड के समक्ष नहीं है । अति ब्याज उधार अधिनियम, 1918 के अधीन ब्याज की दर 15 प्रतिशत के सादे ब्याज की दर देना पूर्णतः युक्तियुक्त लगता है और हम इस विषय में उच्च न्यायालय के विनिश्चय में हस्तक्षेप नहीं करते । अपील असफल होती है तथा खारिज की जानी चाहिए । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तद्नुसार है । अपीलार्थी प्रत्यर्थियों के अपील का खर्चा अदा करें ।

अपील खारिज की गई ।

---

[1] इं. ला रि. 53 इलाहाबाद 21 = आ. इं. रि. 1930 इलाहाबाद 852.

हरीचन्द और अन्य .... अपीलार्थी

बनाम

सचिव, भारत सरकार .... प्रत्यर्थी

30.6.1939

न्यायमूर्ति लार्ड मेकमिलन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन व न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 – धारा 4 – जहां सरकार भूमि की स्वामी है वहां उस भूमि पर केवल भवन के अर्जन हेतु अधिसूचना अविधिमान्य नहीं ।

प्रतिकर – प्रतिकर के दावेदार के लिए अपना हक साबित करना आवश्यक है ।

मूल्यांकन – प्रिवी कौंसिल की प्रणाली – मूल्यांकन की विस्तृत आलोचना पर विचार नहीं – निर्धारण के ढंग से संबंधित सिद्धांत के प्रश्न पर विचार – यदि प्रतिकर अधिकारी या उस न्यायालय ने, जिसने उसके अधिनिर्णय का पुनर्विलोकन किया, सिद्धांत के विषय में गलती की है तो अनुतोष दिया जाएगा ।

छावनी क्षेत्र में भवनों का अर्जन – भवनों के उपभोग से संबद्ध वृक्ष और बाग आदि जैसी सुविधाओं के संबंध में अतिरिक्त प्रतिकर देय नहीं क्योंकि वे भूमि के उपभोग के अंग हैं और भूमि अनुदानगृहीता की न होकर सरकार की है ।

जब निर्माण ही दावेदार का है तथा उसकी भूमि पहले से सरकार की है और सरकार अनुदान कभी भी वापस ले सकती है तो प्रतिकर केवल निर्माण के लिए देय, न कि भूमि के सबंध में निर्माण के लिए प्रतिकर निर्माण की लागत में से अवक्षयण तथा मरम्मत का व्यय काटकर निकाला जाएगा ।

इस अपील में मुख्यतः दो या तीन विवाद्यक विचारार्थ हैं । जब कभी सरकार व्यक्तियों को छावनी क्षेत्र में कोई अधिकार देती है तो अनुदान की मुख्य शर्तों में एक यह रहती है कि एक मास का नोटिस देकर किसी समय पुनः कब्जा करने का अधिकार सरकार को रहेगा । यदि वह ऐसा नोटिस देती है तो उससे अपेक्षित है कि वह उस भवन का मूल्य अदा करे जिसे बनाना प्राधिकृत किया गया था । सरकार ने संपत्तियों को वापस लेने की अधिसूचना जारी की जिसमें प्रतिकर का आफर भी था । प्रश्न यह उठाया

गया कि अधिसूचना अविधिमान्य थी क्योंकि वह भूमि के अर्जन हेतु अधिसूचना नहीं थी । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में सरकार की यह स्थिति थी कि वह भूमि की स्वामी थी, अतः जिसकी वह स्वयं पहले से स्वामी थी उसके अर्जन का प्रस्ताव प्रत्यक्षतः व्यर्थ होता । अतः जब उसने भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों को लागू करना चाहा तो यह स्वाभाविक था कि उसने वह अर्जित किया जो उसका नहीं था और जिसे अर्जित करने का उसका आशय था, अर्थात् भूमि पर स्थित भवन । हमें ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी दशा में अधिसूचना पर यह आपत्ति बहुत विलंब से की गई है क्योंकि पक्षकार प्रतिकर के अंतिम निर्धारण सहित अंत तक भूमि अर्जन अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया का निरंतर अनुसरण करते रहे । जिस न्यायालय ने मामले में कार्रवाई की वह वास्तव में प्रतिकर न्यायालय था और यदि सारी कार्यवाही को प्रारंभ से अविधिमान्य के रूप में प्रश्नगत करने का आशय था तो अधिक उचित होता कि यह कार्यवाही अन्य अधिकरण में की जाती । प्रसंगतः न्यायालय ने सूचना की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किया और हम उनसे सहमत हैं कि अधिसूचना पर आपत्ति नहीं की जा सकती । अपीलार्थियों के कनिष्ठ अभिवक्ता ने हमारा समाधान करना चाहा है कि अधिसूचना का यह वर्णन कि भूमि सरकार की है, वास्तव में अशुद्ध है और दावेदार उन स्थलों के हकदार हैं, जिन पर विभिन्न बंगले निर्मित हैं । विधिक दृष्टि से एक बात नितांत स्पष्ट है कि जो दावेदार प्रतिकर प्राप्त करना चाहता है उसे अपना हक साबित करना आवश्यक है । भारत सचिव बनाम सतीश चन्द्र जैन वाला हाल का निर्णय है, जिस निर्णय का हमारे समक्ष हवाला दिया गया और जिसमें बंगाल में छावनी भूधृति का प्रश्न विचाराधीन था । उसमें यह स्पष्ट किया गया कि दावेदार को सकारात्मक रूप से अपना हक साबित करना चाहिए । प्रस्तुत मामले में यह हो सकता है कि सरकार के हक के बारे में कुछ प्रश्नास्पदता हो, किंतु यह दावेदारों का दायित्व था कि वे सकारात्मक रूप से साबित करें कि स्थलों पर उनका हक है । निचले न्यायालयों को यह सुविधा थी कि दस्तावेज उनके समक्ष थे, जो हमारे समक्ष नहीं हैं । उन्होंने पूर्णतया उन्हें देखा और उनका समाधान हुआ कि दावेदारों ने स्थलों पर अपना हक साबित नहीं किया है । हम उनके निष्कर्ष से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते । ऐसी परिस्थितियों में केवल यह प्रश्न शेष रहता है कि अपने भवनों से वंचित किए जाने के लिए दावेदार जिस प्रतिकर के हकदार हैं, क्या वह विधि के अनुसार अभिनिश्चित किया गया है । मूल्यांकन की विस्तृत आलोचना पर विचार करना हमारी प्रणाली नहीं है, किंतु हमारे समक्ष कोई अपीलार्थी

निर्धारण के ढंग से संबंधित सिद्धांत को सदैव प्रश्नगत कर सकता है, और यदि हमारा समाधान हो जाता है कि सिद्धांत के मामले में प्रतिकर अधिकारी ने या उस न्यायालय ने जिसने उसके अधिनिर्णय का पुनर्विलोकन किया, गलती की है, तो अनुतोष दिया जाएगा । प्रस्तुत मामले में मूल्यांकन या प्रतिकर की विषयवस्तु निर्माण हैं, न कि स्थल, क्योंकि स्थल पहले से ही सरकार की संपत्ति थे । अतः प्रश्न यह है कि भवनों का मूल्यांकन करने का उपयुक्त ढंग क्या था । इस बात की शिकायत की गई है कि कब्जा वापस लेने की सूचना की तामील के परिणामस्वरूप इन निर्माणों के मूल्य में, जिनमें से कुछ निःसंदेह आकर्षक निवास स्थान हैं, गंभीर गिरावट आई है । यदि मूल्यांकन का यह सिद्धांत अपनाया गया होता कि निर्माणों का मूल्य किराए के आधार पर निर्धारित किया जाए तो हम इस आलोचना को ठीक समझते । किंतु प्रस्तुत मामले में जो ढंग अपनाया गया है वह है जिसे साधारणतया ठेकेदार का ढंग कहा जाता है । मूल्यांकन की विषयवस्तु स्थल को छोड़ कर निर्माण हैं । अतः प्रतिकर के प्रयोजनार्थ निर्माणों का मूल्य निश्चित करने का यह सिद्धांत सुविदित और मान्य है जिसमें वर्तमान समय में निर्माण के पुनर्निर्माण का खर्चा अभिनिश्चित किया जाता है और तत्पश्चात् उसमें से भवन की आयु का विचार करके अवक्षयण और ऐसी मरम्मत का खर्चा जो अवक्षयण के अतिरिक्त अपेक्षित हो कम कर दिया जाता है । यहां यही ढंग अपनाया गया और हमारे विचार के अनुसार वह ढंग कब्जा वापस लेने की सूचना से प्रभावित नहीं होता, क्योंकि निर्माणों के पुनर्निर्माण का खर्चा अभिनिश्चित करने के लिए प्रस्तुत मामले में जो मूल्य माने जाने चाहिए थे और माने गए वे कब्जा वापस लेने की सूचना से किसी प्रकार प्रभावित नहीं हुए । अतः हमारे विचार से प्रतिकर के प्रयोजनार्थ निर्माणों का मूल्यांकन पूर्णतया ग्राह्य और पूर्णतया विधिसम्मत सिद्धांत के आधार पर किया गया तथा ऐसी स्थिति में, जो अधिनिर्णय दिए गए उन पर इस आधार पर आक्षेप विधिमान्य प्रतीत नहीं होते । ब्यौरों के संबंध में एक अन्य प्रश्न उठाया गया है, जिसका उल्लेख करना उचित होगा । यह कहा गया कि अधिनिर्णयों में उनकी बाबत कुछ नहीं दिया गया है जो भवनों के अनुलग्नक कहे जाते हैं जैसे कि सड़कें, रास्ते, पुलियां, बाग, वृक्ष और विभिन्न वस्तुएं, जिनका उपयोग बंगला के अधिभोगी उनके संबंध में उपयोगी सुविधाओं के रूप में कर रहे थे । निचले न्यायालयों ने इस बात पर विचार किया और उनकी राय थी कि, एक छोटे अपवाद के अतिरिक्त, इन वस्तुओं के लिए अधिनिर्णयों में कोई राशि सम्मिलित करना उचित नहीं है । उन्होंने जिन्हें आवश्यक कहा है, और संभवतः बंगलों के उपयोग हेतु पहुंच के लिए आवश्यक थी, उनके संबंध में

अवश्य कुछ मंजूर किया और अधिनिर्णयों में इस मद में कुछ जोड़ा गया । हम उस परिस्थिति पर टिप्पणी करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते, किंतु हमारी राय है कि ऐसे परिसरों के मामले में जिनका कि यहां मूल्यांकन करना है और जिनका उपभोग लगातार ऐसे निबंधनों पर किया गया जो निश्चित रूप से अस्थिर थे, अर्थात् सरकार किसी समय एक मास का नोटिस देकर परिसरों का कब्जा वापस ले सकती थी और इस शक्ति के प्रयोग करने की दशा में अनुदान-गृहीता केवल भूमि पर के निर्माणों का मूल्य पाने का हकदार था, अनुदान-गृहीता के निर्माण के चारों ओर की भूमि पर सुविधा या उपभोग के प्रयोजनार्थ उपयोग के लिए जो कुछ भी किया जा सकता था वह स्थल से संबद्ध था, न कि भवन से, जैसा कि निचले न्यायालय ने विनिश्चय किया । यदि प्रतिकर, जैसा कि इस मामले में है, निर्माणों के मूल्य तक सीमित होना था, तो हम निचले न्यायालय से सहमत हैं कि ऐसी सुविधाओं के संबंध में, जैसे कि वृक्ष, बाग आदि, जो निर्माणों के उपभोग के संबद्ध हैं, अतिरिक्त प्रतिकर मंजूर नहीं किया जाना चाहिए । (पैरा 4, 5 और 6)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1931]	57 इंडियन अपील्स 339 = आ. इं. रि. 1931 प्रि. कौं. 1 : **भारत सचिव** बनाम **सतीश चन्द्र जैन** ।	4

सिविल अपीली अधिकारिता : 1938 की अपील सं. 39.

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री ए. एम. दुने और एस. पी. सम्बाटा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जे. मिलाई टुकर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड मैकमिलन ने दिया ।

न्या. मैकमिलन – इन 12 समेकित अपीलों में हमें बहुत से अधिनिर्णयों पर विचार करना है, जो सरकार द्वारा पेशावर छावनी के कुछ बंगलों के अर्जन हेतु प्रतिकर के विषय में दिए गए हैं । निचले न्यायालयों में अधिनिर्णयों के संबंध में बहुत से प्रश्न उठाए गए और उन पर बहस की गई, किंतु हमारे समक्ष अपीलार्थियों की ओर से श्री डन स्वयं को दो या तीन मुख्य प्रश्नों तक सीमित रखते हैं । इतिहास की दृष्टि से, जहां तक व्यक्तियों को अनुदानों का संबंध है, छावनियां सपरिषद् गवर्नर जनरल के

1836 के एक आदेश से विनियमित होती हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वह आदेश बहुत से न्यूनाधिक मात्रा से समान निबंधनों वाले बाद के आदेशों द्वारा, आज तक चला आ रहा है । जब कभी सरकार व्यक्तियों को छावनी क्षेत्र में कोई अधिकार देती है, तो अनुदान की मुख्य शर्तों में एक यह रहती है कि एक मास का नोटिस देकर किसी समय पुनः कब्जा करने का अधिकार सरकार को रहेगा । यदि वह ऐसा नोटिस देती है तो उससे अपेक्षित है कि वह उस भवन का मूल्य अदा करे जिसे बनाना प्राधिकृत किया गया था । इस मामले में सरकार का मूलतः अनुदान 12 और 13 संपत्तियां वापस लेने का प्रस्ताव था, और उसने वापस लेने की अधिसूचना जारी की जिसका एक उदाहरण अपीलार्थी सं. 1 हरीचन्द की संपत्ति का मामला है । यह इस प्रकार है :

> "पेशावर छावनी में, फोर्ट रोड स्थित बंगला सं. 5 के नाम से ज्ञात संपत्ति के स्थल की भूमि सरकार की है और आप उसे छावनी भूधृति पर धारण करते हैं जिसके अधीन सरकार ऐसे निर्माणों का मूल्य अदा करने पर जो उस भूमि पर बनाने के लिए प्राधिकृत किए गए हों, उक्त भूमि वापस लेने की हकदार है ; और सरकार ने उक्त भूमि का कब्जा वापस लेने और उस पर स्थित निर्माणों पर कब्जा प्राप्त करने का निश्चय किया है : अतः आपको सूचित किया जाता है कि सरकार उन सब शक्तियों के अधीन जो उसे इस निमित्त समर्थ करती हैं अपने अभिकर्ता के माध्यम से 15.10.1932 को उक्त भूमि पर पुनः कब्जा करेगी और उस तारीख से आपका अधिभोग तथा कोई अधिकार, सुखाचार एवं हित, जो आपके उक्त भूमि और उस पर स्थित निर्माणों में हों, समाप्त हो जाएंगे ।"

2. अधिसूचना में प्रतिकर का आफर भी था । जिनको सूचनाएं संबोधित की गई थी, उनमें से कोई भी आफर से संतुष्ट नहीं था और जब कि प्रतिकर निर्धारित करने के प्रयोजनार्थ सहज और साधारण मार्ग मध्यस्थता का होता, किंतु किसी न किसी कारण से उसका अनुसरण नहीं किया गया था उसका पक्षकारों को स्वीकार होना प्रतीत नहीं होता । तद्नुसार सरकार ने भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के उपबंधों के आधार पर बंगलों के स्वामियों के स्वत्वहरण के प्रयोजनार्थ उक्त अधिनियम का सहारा लिया । अतः बंगलों के प्रत्येक स्वामी पर एक अधिसूचना की तामील की गई और प्रत्येक अधिसूचना में यह कहा गया कि सरकार का दावा है कि वह उस भूमि की स्वामी है जिस पर विभिन्न बंगले और बाह्य घर निर्मित हैं । अधिसूचना में यह बात वृत्तांत के रूप में कही गई है । तत्पश्चात् उसमें कहा गया है कि सरकार ने सूचित कर दिया है कि भूमि

उसने वापस ले ली है तथा अब वह उस पर स्थित निर्माण और उनमें विद्यमान शेष हित अर्जित करना चाहती है, और उस प्रयोजनार्थ वह भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के उपबंधों का आश्रय लेती है ।

3. यहां पहला प्रश्न यह उठाया गया है कि अधिसूचना अविधिमान्य थी क्योंकि वह भूमि के अर्जन हेतु अधिसूचना नहीं थी बल्कि भूमि पर स्थित केवल निर्माणों के अर्जन हेतु एक आशय दर्शाती थी । यह कहा गया कि भूमि अर्जन अधिनियम केवल भूमि के अर्जन हेतु आशय की अधिसूचना प्राधिकृत करता है, और भूमि अर्जन अधिनियम के अधीन सारी कार्यवाही मूलतः दोषपूर्ण थी, क्योंकि जिस अधिसूचना के आधार पर कार्यवाही आरंभ की गई वह अविधिमान्य थी । यह दृष्टव्य है कि भूमि अर्जन अधिनियम में "भूमि" शब्द के अंतर्गत भूमि से उद्भूत होने वाले फायदे और भूबद्ध चीजें या भूबद्ध किसी चीज के साथ स्थायी रूप से जकड़ी हुई चीजें आती हैं ।

4. प्रस्तुत मामले में सरकार की यह स्थिति थी कि वह भूमि की स्वामी थी, अतः जिसकी वह स्वयं पहले से स्वामी थी उसके अर्जन का प्रस्ताव प्रत्यक्षतः व्यर्थ होता । अतः जब उसने भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों को लागू करना चाहा तो यह स्वाभाविक था कि उसने वह अर्जित किया जो उसका नहीं था और जिसे अर्जित करने का उसका आशय था, अर्थात् भूमि पर स्थित भवन । हमें ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी दशा में अधिसूचना पर यह आपत्ति बहुत विलंब से की गई है क्योंकि पक्षकार प्रतिकर के अंतिम निर्धारण सहित अंत तक भूमि अर्जन अधिनियम में अधिकथित प्रक्रिया का निरंतर अनुसरण करते रहे । जिस न्यायालय ने मामले में कार्रवाई की वह वास्तव में प्रतिकर न्यायालय था और यदि सारी कार्यवाही को प्रारंभ से अविधिमान्य के रूप में प्रश्नगत करने का आशय था तो अधिक उचित होता कि यह कार्यवाही अन्य अधिकरण में की जाती । प्रसंगतः न्यायालय ने सूचना की विधिमान्यता के प्रश्न पर विचार किया और हम उनसे सहमत हैं कि अधिसूचना पर आपत्ति नहीं की जा सकती । अपीलार्थियों के कनिष्ठ अभिवक्ता ने हमारा समाधान करना चाहा है कि अधिसूचना का यह वर्णन कि भूमि सरकार की है, वास्तव में अशुद्ध है और दावेदार उन स्थलों के हकदार हैं, जिन पर विभिन्न बंगले निर्मित हैं । विधिक दृष्टि से एक बात नितांत स्पष्ट है कि जो दावेदार प्रतिकर प्राप्त करना चाहता है उसे अपना हक साबित करना आवश्यक है । **भारत सचिव** बनाम **सतीश चन्द्र जैन**[1] वाला हाल का निर्णय है, जिस निर्णय का हमारे समक्ष हवाला दिया गया और जिसमें बंगाल में छावनी भूधृति का प्रश्न

[1] 57 इंडियन अपील्स 339 = आ. इं. रि. 1931 प्रि. कौं. 1.

विचाराधीन था । उसमें यह स्पष्ट किया गया कि दावेदार को सकारात्मक रूप से अपना हक साबित करना चाहिए । प्रस्तुत मामले में यह हो सकता है कि सरकार के हक के बारे में कुछ प्रश्नास्पदता हो, किंतु यह दावेदारों का दायित्व था कि वे सकारात्मक रूप से साबित करें कि स्थलों पर उनका हक है । निचले न्यायालयों को यह सुविधा थी कि दस्तावेज उनके समक्ष थे, जो हमारे समक्ष नहीं हैं । उन्होंने पूर्णतया उन्हें देखा और उनका समाधान हुआ कि दावेदारों ने स्थलों पर अपना हक साबित नहीं किया है । हम उनके निष्कर्ष से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते ।

5. ऐसी परिस्थितियों में केवल यह प्रश्न शेष रहता है कि अपने भवनों से वंचित किए जाने के लिए दावेदार जिस प्रतिकर के हकदार हैं, क्या वह विधि के अनुसार अभिनिश्चित किया गया है । मूल्यांकन की विस्तृत आलोचना पर विचार करना हमारी प्रणाली नहीं है, किंतु हमारे समक्ष कोई अपीलार्थी निर्धारण के ढंग से संबंधित सिद्धांत को सदैव प्रश्नगत कर सकता है, और यदि हमारा समाधान हो जाता है कि सिद्धांत के मामले में प्रतिकर अधिकारी ने या उस न्यायालय ने जिसने उसके अधिनिर्णय का पुनर्विलोकन किया, गलती की है, तो अनुतोष दिया जाएगा । प्रस्तुत मामले में मूल्यांकन या प्रतिकर की विषयवस्तु निर्माण हैं, न कि स्थल, क्योंकि स्थल पहले से ही सरकार की संपत्ति थे । अतः प्रश्न यह है कि भवनों का मूल्यांकन करने का उपयुक्त ढंग क्या था । इस बात की शिकायत की गई है कि कब्जा वापस लेने की सूचना की तामील के परिणामस्वरूप इन निर्माणों के मूल्य में, जिनमें से कुछ निःसंदेह आकर्षक निवास स्थान हैं, गंभीर गिरावट आई है । यदि मूल्यांकन का यह सिद्धांत अपनाया गया होता कि निर्माणों का मूल्य किराए के आधार पर निर्धारित किया जाए तो हम इस आलोचना को ठीक समझते । किंतु प्रस्तुत मामले में जो ढंग अपनाया गया है वह है जिसे साधारणतया ठेकेदार का ढंग कहा जाता है । मूल्यांकन की विषयवस्तु स्थल को छोड़ कर निर्माण हैं । अतः प्रतिकर के प्रयोजनार्थ निर्माणों का मूल्य निश्चित करने का यह सिद्धांत सुविदित और मान्य है जिसमें वर्तमान समय में निर्माण के पुनर्निर्माण का खर्चा अभिनिश्चित किया जाता है और तत्पश्चात् उसमें से भवन की आयु का विचार करके अवक्षयण और ऐसी मरम्मत का खर्चा जो अवक्षयण के अतिरिक्त अपेक्षित हो कम कर दिया जाता है । यहां यही ढंग अपनाया गया और हमारे विचार के अनुसार वह ढंग कब्जा वापस लेने की सूचना से प्रभावित नहीं होता, क्योंकि निर्माणों के पुनर्निर्माण का खर्चा अभिनिश्चित करने के लिए प्रस्तुत मामले में जो मूल्य माने जाने चाहिए थे और माने गए वे कब्जा वापस लेने की सूचना से किसी प्रकार प्रभावित नहीं हुए । अतः हमारे विचार से

प्रतिकर के प्रयोजनार्थ निर्माणों का मूल्यांकन पूर्णतया ग्राह्य और पूर्णतया विधिसम्मत सिद्धांत के आधार पर किया गया तथा ऐसी स्थिति में, जो अधिनिर्णय दिए गए उन पर इस आधार पर आक्षेप विधिमान्य प्रतीत नहीं होते ।

6. ब्यौरों के संबंध में एक अन्य प्रश्न उठाया गया है, जिसका उल्लेख करना उचित होगा । यह कहा गया कि अधिनिर्णयों में उनकी बाबत कुछ नहीं दिया गया है जो भवनों के अनुलग्नक कहे जाते हैं जैसे कि सड़कें, रास्ते, पुलियां, बाग, वृक्ष और विभिन्न वस्तुएं, जिनका उपयोग बंगला के अधिभोगी उनके संबंध में उपयोगी सुविधाओं के रूप में कर रहे थे । निचले न्यायालयों ने इस बात पर विचार किया और उनकी राय थी कि, एक छोटे अपवाद के अतिरिक्त, इन वस्तुओं के लिए अधिनिर्णयों में कोई राशि सम्मिलित करना उचित नहीं है । उन्होंने जिन्हें आवश्यक कहा है, और संभवतः बंगलों के उपयोग हेतु पहुंच के लिए आवश्यक थी, उनके संबंध में अवश्य कुछ मंजूर किया और अधिनिर्णयों में इस मद में कुछ जोड़ा गया । हम उस परिस्थिति पर टिप्पणी करने की आवश्यकता महसूस नहीं करते, किंतु हमारी राय है कि ऐसे परिसरों के मामले में जिनका कि यहां मूल्यांकन करना है और जिनका उपभोग लगातार ऐसे निबंधनों पर किया गया जो निश्चित रूप से अस्थिर थे, अर्थात् सरकार किसी समय एक मास का नोटिस देकर परिसरों का कब्जा वापस ले सकती थी और इस शक्ति के प्रयोग करने की दशा में अनुदानगृहीता केवल भूमि पर के निर्माणों का मूल्य पाने का हकदार था, अनुदानगृहीता के निर्माण के चारों ओर की भूमि पर सुविधा या उपभोग के प्रयोजनार्थ उपयोग के लिए जो कुछ भी किया जा सकता था वह स्थल से संबद्ध था, न कि भवन से, जैसा कि निचले न्यायालय ने विनिश्चय किया । यदि प्रतिकर, जैसा कि इस मामले में है, निर्माणों के मूल्य तक सीमित होना था, तो हम निचले न्यायालय से सहमत हैं कि ऐसी सुविधाओं के संबंध में, जैसे कि वृक्ष, बाग आदि, जो निर्माणों के उपभोग के संबद्ध हैं, अतिरिक्त प्रतिकर मंजूर नहीं किया जाना चाहिए ।

7. अपने मुवक्किलों की ओर से श्री डन ने हमारे समक्ष वह सब रखा है जो अधिनिर्णयों की आलोचना में कहा जा सकता था । किंतु हमारी राय में यह आलोचना असफल है । परिणामस्वरूप हित मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि ये अपीलें खर्चे सहित खारिज की जानी चाहिए ।

अपील खारिज की गई ।

हाजी मौला बख्श .... अपीलार्थी

बनाम

अब्दूल लतीफ .... प्रत्यर्थी

3.7.1939

न्यायमूर्ति लार्ड मैकमिलन, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

प्रक्रिया – डिक्री का निष्पादन – प्रतिवादी सं. 1 और 2 के विरुद्ध समझौता डिक्री इस शर्त के साथ कि प्रतिवादी सं. 1 डिक्रीत रकम अदा करेगा और यदि उसे कुर्की और गिरफ्तारी द्वारा वसूली नहीं होती है तो वादी प्रतिवादी सं. 2 से डिक्री की रकम वसूल करने का हकदार होगा – डिक्रीदार द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध गिरफ्तारी द्वारा निष्पादन की दो बार कार्यवाही किंतु यह सफल नहीं – निर्णय किया गया कि अब डिक्रीदार प्रतिवादी सं. 2 के विरुद्ध निष्पादन करा सकता है ।

इस अपील में विचारार्थ प्रश्न कुछ सीधे-साधे तथ्यों से उठते हैं । मोहम्मद रजा और मौला बख्स एक फर्म के भागीदार थे । भागीदारी का 5.5.1926 को विघटन हो गया । फिर 14.11.1927 को मैसर्स बेविस एंड कं. ने, जो विघटित फर्म के लेनदार थे, विघटित फर्म के दो भागीदारों के विरुद्ध एक वाद संस्थित किया । वाद चलने के कुछ समय बाद वाद में समझौता हो गया और डिक्री पारित की गई जो प्रस्तुत विवाद का विषय है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अतः हम कहेंगे कि वादी ने निष्पादन द्वारा दो बार मोहम्मद रजा के विरुद्ध डिक्री प्रवर्तित कराने का प्रयास किया । प्रथम निष्पादन-आवेदन के विषय में, जिस पर मोहम्मद रजा ने उपस्थित होकर समय मांगा, यह शिकायत की गई है कि वादी को चाहिए था कि अदायगी करने के लिए तीन मास का समय देने को सहमत न होता । हम नहीं समझते कि इस शिकायत का कोई आधार है, क्योंकि यह पूर्णतः संभव है कि वादी को विश्वास दिलाया गया हो कि यदि तीन मास का समय दे दिया जाए तो रुपया मिल जाएगा ; किसी भी दशा में क्योंकि यह प्रतिभू का मामला नहीं था, अतः कोई कारण नहीं है कि यदि डिक्रीदार का विचार था कि ऐसा करने से रुपए की अदायगी की अधिक संभावना है तो तीन मास का समय नहीं दे सकता था । हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए विचार से

असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते और मामले की सारी परिस्थितियों को देखते हुए हमारा समाधान हो गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध डिक्री के निष्पादन हेतु पूर्ववर्ती शर्त पूरी हो गई है तथा उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जानी चाहिए । तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि अपील खर्चे खारिज की जानी चाहिए । (पैरा 3 और 7)

सिविल अपीली अधिकारिता : **1936 की अपील सं. 110.**

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री जे. एम. पारिख

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एच. आर. अब्दूल मजिद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड मैकमिलन ने दिया ।

न्या. मैकमिलन – इस अपील में निर्णयार्थ प्रश्न कुछ सीधे-सादे तथ्यों से उठते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मोहम्मद रजा और हाजी मौला बख्श की एक भागीदारी थी, जिसके फर्म का नाम व्हटफील्ड एंड कं. था । भागीदारी का 5.5.1926 को विघटन हो गया । फिर 14.11.1927 को मैसर्स बेविस एंड कं. ने, जो विघटित फर्म के लेनदार थे, बाबू भगवान दास के माध्यम से विघटित फर्म व्हटफील्ड एंड कं. और उसके दो भागीदारों मोहम्मद रजा और हाजी मौला बख्श के विरुद्ध कानपुर के प्रथम अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय में एक वाद संस्थित किया । उस वाद में वादियों ने 8,548/- रुपए तथा ब्याज और खर्चे की डिक्री का दावा किया । वाद कुछ समय चलने के पश्चात् उसमें समझौता हो गया और डिक्री पारित की गई, जो प्रस्तुत विवाद का विषय है । डिक्री का महत्वपूर्ण भाग उस प्रकार है :–

> "पक्षकारों ने इन निबंधनों पर समझौता कर लिया है कि वादी का दावा 6 प्रतिशत प्रतिवर्ष भावी ब्याज सहित 8,000/- रुपए की एकमुश्त राशि के लिएइस शर्त पर डिक्री किया जाए कि प्रतिवादी सं. 1 अर्थात् मोहम्मद रजा डिक्री की उक्त राशि 200/- रुपए प्रतिमास की किस्तों में अदा करेंगा ; पहली किस्त 4.3.1929 को देय होगी और अन्य किस्तें अंग्रेजी कलेण्डर के प्रत्येक आने वाले मास की चौथी तारीख को देय होगी ; 6 किस्तों की अदायगी में चूक की दशा में वादी प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध डिक्री निष्पादित कराने का हकदार होगा तथा वादी डिक्री के निष्पादन द्वारा अपना रुपया प्रतिवादी सं. 1 से वसूल कर लेगा । प्रतिवादी सं. 2 अर्थात् मौला बख्श वर्तमान

अपीलार्थी वादी की निष्पादन में हर प्रकार सहायता करेगा । यदि प्रतिवादी सं. 2 की सहायता के बावजूद डिक्री या रुपया प्रथम निष्पादन की तारीख से दो वर्ष के भीतर प्रतिवादी सं. 1 से किसी प्रकार से वसूल नहीं होता, अर्थात् जंगम और स्थावर संपत्ति की कुर्की और उसकी गिरफ्तारी का वारंट जारी करने पर भी उससे वसूल नहीं होता, तो वादी प्रतिवादी सं. 2 से डिक्री की राशि का वह भाग वसूल करने का हकदार होगा जो देय शेष होगा, और प्रतिवादी सं. 2 प्रतिवादी सं. 1 से जिस प्रकार चाहे वह रकम वसूल करने का हकदार होगा ।"

2. उक्त डिक्री सुनाए जाने के बाद मोहम्मद रजा ने कोई किस्त अदा नहीं की और जब 4.8.1929 को उसने छठी किस्त की अदायगी में चूक की तो वादी उसके विरुद्ध डिक्री का निष्पादन कराने का हकदार हो गया । प्रश्न यह है कि क्या भगवान दास ने मोहम्मद रजा के विरुद्ध डिक्री के निष्पादन के जो कदम उठाए वे ऐसे थे जैसे कि डिक्री में अनुध्यात हैं और ऐसे थे जो अब उसे श्री पारिख के मुवक्किल के विरुद्ध कार्यवाही करने का हकदार बनाते हैं । निश्चय ही यह नहीं कहा जा सकता कि वादी ने छह माह बीतने पर किसी भी प्रकार से कोई सुस्ती दिखाई, क्योंकि 15.8.1929 तक वह मोहम्मद रजा के विरुद्ध डिक्री निष्पादित कराने हेतु सक्रिय कदम उठाने के लिए न्यायालय में उपस्थित था । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने इस विषय में जो तथ्य पाए वह इस प्रकार हैं :–

"हम ये तथ्य पाते हैं कि डिक्रीदार ने मोहम्मद रजा के विरुद्ध केवल दो निष्पादन आवेदन दिए । पहला 15.8.1929 को दिया । यह मोहम्मद रजा की गिरफ्तारी के लिए था । 15.12.1929 को मोहम्मद रजा ने अर्जी दी कि उसे अदायगी करने के समय दे दिया जाए । डिक्रीदार उसे तीन मास का समय देने के लिए सहमत हो गया और तद्नुसार निष्पादन कार्यवाही रोक दी गई । इस अवधि के बीत जाने पर गिरफ्तारी द्वारा निष्पादन पुनः आरंभ किया गया, किंतु यह पाया गया कि निर्णीत-ऋणी मोहम्मद रजा भारत छोड़ कर फारस चला गया है । अतः निष्पादन आवेदन पर कार्रवाई बंद कर दी गई और अभिलेख अभिलेखागार भेज दिया गया । ऐसा प्रतीत होता है कि मोहम्मद रजा लगभग जुलाई, 1930 में वापस आया । तब द्वितीय निष्पादन आवेदन 13.10.1930 को दिया गया । यह भी गिरफ्तारी हेतु था । नोटिस की व्यक्तिगत रूप से तामील नहीं की जा सकी, क्योंकि यह रिपोर्ट दी

गई कि मोहम्मद रजा कानपुर से बाहर है ।"

3. अतः हम कहेंगे कि वादी ने निष्पादन द्वारा दो बार मोहम्मद रजा के विरुद्ध डिक्री प्रवर्तित कराने का प्रयास किया । प्रथम निष्पादन-आवेदन के विषय में, जिस पर मोहम्मद रजा ने उपस्थित होकर समय मांगा, यह शिकायत की गई है कि वादी को चाहिए था कि अदायगी करने के लिए तीन मास का समय देने को सहमत न होता । हम नहीं समझते कि इस शिकायत का कोई आधार है, क्योंकि यह पूर्णतः संभव है कि वादी को विश्वास दिलाया गया हो कि यदि तीन मास का समय दे दिया जाए तो रुपया मिल जाएगा ; किसी भी दशा में क्योंकि यह प्रतिभू का मामला नहीं था, अतः कोई कारण नहीं है कि यदि डिक्रीदार का विचार था कि ऐसा करने से रुपए की अदायगी की अधिक संभावना है तो तीन मास का समय नहीं दे सकता था ।

4. किंतु प्रथम निष्पादन-आवेदन निष्फल साबित हुआ, क्योंकि तीन मास बीत जाने पर जब गिरफ्तारी द्वारा कार्यवाही करने का प्रयास किया गया, तो निर्णीत-ऋणी मोहम्मद रजा भारत छोड़कर फारस जा चुका था और इस प्रकार वह अधिकारिता के बाहर हो गया था । मोहम्मद रजा के घर लौट आने पर 13.10.1930 को वादी ने पुनः निष्पादन आवेदन दिया और इस बार भी उसने गिरफ्तारी की प्रार्थना की । अभिलेख से पता चलता है कि उस आवेदन का पहला नोटिस तामील के बिना वापस आ गया क्योंकि यद्यपि निर्णीत-ऋणी आने घर पर मौजूद बताया गया, किंतु उस पर तामील नहीं की जा सकी । इससे निरुत्साहित होकर वादी ने न्यायालय में आवेदन दिया कि निर्णीत-ऋणी को गिरफ्तारी का नोटिस दोबारा जारी किया जाए, और जब यह मामला कानपुर के अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष पेश हुआ तो डिक्रीदार के अभिवक्ता ने बताया कि निर्णीत-ऋणी बाहर चला गया था अतः गिरफ्तार नहीं किया जा सका । "बाहर चला गया" कहने से उनका आशय था कि वह न्यायालय की अधिकारिता से बाहर चला गया । अतः उस पर तामील नहीं हो सकी ।

5. डिक्री के निबंधन वादी का यह कर्तव्य बताते थे कि मोहम्मद रजा से धन वसूलने के लिए अपना अधिकतम प्रयास करे । हमारे विचार से वादी ने उन निबंधनों के पालन में युक्तियुक्त एवं सम्यक् तत्परता ये कदम उठाकर दिखाई कि उसने दो बार निष्पादन आवेदन दिया । किंतु दोनों बार

रुपए वसूल करने के अपने प्रयास में वह असफल कर दिया गया । डिक्री के उपबंधों के अनुसार हाजी मौला बख्श को रुपए की वसूली में वादी की सहायता करनी थी । इस विषय पर कि उसने वास्तव में वादी की पर्याप्त सहायता की या नहीं, कुछ टिप्पणी की गई है, और अभिलेख में एक पत्र है जिसमें शिकायत की गई है कि सक्रिय सहायता नहीं की गई । किंतु हम मामले के उस पक्ष को अधिक महत्व नहीं देते । अधिक महत्वपूर्ण बात यह है, जो वादी के चरमबिंदू तक कार्यवाही न करने को उचित बनाता है, कि उस समय मोहम्मद रजा का एक अन्य लेनदार भी था अर्थात् पंजाब नेशनल बैंक जो मामले में किसी व्यक्तिगत मुलाहिजे से ग्रस्त नहीं था । उसका सरोकार मात्र बैंक द्वारा दिए गए ऋण की वसूली से था, जो 12,000 या 13,000 रुपए का बड़ा ऋण था । बैंक के एक प्रतिनिधि ने बयान दिया और कहा कि बैंक ने मोहम्मद रजा के विरुद्ध हर संभव कार्रवाई की और उसने उसके विरुद्ध कम से कम 8 या 9 बार निष्पादन कराया, जो सब निष्फल साबित हुआ - दृश्यतः ऐसे इसलिए हुआ कि जब कभी उसकी गिरफ्तारी का प्रयास किया गया, मोहम्मद रजा गायब हो गया और उसे खोजा नहीं जा सका । बैंक के प्रतिनिधि ने यह भी बताया कि बैंक ने उसकी संपत्ति का भी पता लगाया और वह उसकी कोई ऐसे आस्तियां पाने में असमर्थ रहा जो कुर्क की जा सकती या कुर्की के योग्य होती । क्योंकि बैंक कुछ भी वसूल करने में पूर्णतया विफल रहा अतः हम युक्तियुक्त रूप से यह मान सकते हैं कि यदि भगवान दास अपनी कार्रवाई पर और अड़ा रहता तो वह भी वैसे ही विफल रहता ।

6. नाटक का अंतिम भाग मोहम्मद रजा द्वारा दिया एक आवेदन है, जो उसने स्वयं का दिवालिया घोषित कराने के लिए दिया और 5.8.1932 को वह दिवालिया घोषित कर दिया गया । शासकीय रिसीवर की एक रिपोर्ट अभिलेख में है, जो दर्शित करती है कि ऋणी के कब्जे में जो भी वस्तु थी उनसे वसूली के पश्चात् कुछ 350/- रुपए वसूल किए जिसमें से उसकी कर्जदारी को देखते हुए (क्योंकि उसके बहुत से लेनदार थे) डिक्रीदार को नितांत अगण्य अंश मिल पाएगा । साथ ही यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत कार्यवाही आरंभ करने से पूर्व ही डिक्री एक अब्दुल लतीफ को अंतरित कर दी गई थी । अब्दुल लतीफ की मृत्यु हो गई है और वर्तमान प्रत्यर्थी उसके प्रतिनिधि हैं । अतः प्रश्न नितांत संक्षिप्त रह जाता है कि क्या

वादी ने डिक्री के अर्थ में मोहम्मद रजा के विरुद्ध कार्यवाही करने में सम्यक् तत्परता दिखलाई । यदि यह पाया जाता है कि उसने ऐसा किया किंतु कोई परिणाम नहीं निकला तो निष्पादन कार्यवाही में प्रस्तुत अपीलार्थी का दायित्व उत्पन्न हो जाता है । यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि समझौता डिक्री दोनों ऋणियों के विरुद्ध थी, तथा प्रस्तुत अपीलार्थी स्वयं उसके अधीन ऋणी था, यद्यपि इस छूट के साथ कि डिक्री पहले सहऋणी के विरुद्ध निष्पादित की जानी थी । विद्वान् सेशन न्यायाधीश का निष्कर्ष था कि वादी के सम्यक् तत्परता नहीं बरती । वे प्रत्यक्षतः किसी सीमा तक इस बात से प्रभावित थे, जैसा कि वे अपने निर्णय में कहते हैं, कि अपीलार्थी ने स्वयं मोहम्मद रजा के विरुद्ध एक डिक्री कराई और 16,000/- रुपए उससे वसूल किए । अब यह प्रकट हुआ कि विद्वान् सेशन न्यायाधीश को कुछ भ्रम था तथा वास्तव में 16,000/- रुपए मोहम्मद रजा से वसूल नहीं किए गए, बल्कि उसकी सास से वसूल किए गए जिसकी संपत्ति दृश्यतः किसी रूप में आडमान थी । दूसरी ओर, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने परिस्थितियों की पुनः समीक्षा की और वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि डिक्रीदार ने मोहम्मद रजा द्वारा डिक्रीत रकम चुकाए जाने हेतु सब युक्तियुक्त प्रयास किए ।

7. हम उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए विचार से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते और मामले की सारी परिस्थितियों को देखते हुए हमारा समाधान हो गया है कि अपीलार्थी के विरुद्ध डिक्री के निष्पादन हेतु पूर्ववर्ती शर्त पूरी हो गई है तथा उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की जानी चाहिए । तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि अपील खर्चे सहित खारिज की जानी चाहिए ।

अपील खारिज की गई ।

साह मौजीराम .... अपीलार्थी

बनाम

साह चतुर्भुज .... प्रत्यर्थी

6.7.1939

न्यायमूर्ति लार्ड थैंकरटन, न्यायमूर्ति लार्ड मेकमिलन, न्यायमूर्ति लार्ड रोमर व न्यायमूर्ति लार्ड पोर्टर

विद्वेषपूर्ण अभियोजन – नुकसानी के बाद में सफल होने के लिए आवश्यक है कि वादी साबित करे कि प्रतिवादी ने अधिसंभाव्य और युक्तियुक्त कारण के बिना तथा विद्वेषपूर्ण ढंग से कार्रवाई की – ऐसे वाद में जहां साक्षियों और विशेषकर पक्षकारों का व्यवहार महत्वपूर्ण हो, साक्षियों की विश्वसनीयता के बारे में उच्च न्यायालय को विचारण न्यायालय के निष्कर्षों में ठोस कारणों के बिना हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए ।

विचारण न्यायालय का दंड न्यायालय के मत के विरुद्ध जाकर साक्षियों का विश्वास करना और उसके कारण स्पष्ट करना, हस्तक्षेप करने के लिए ठोस कारण नहीं ।

साक्ष्य – शपथभंग – जहां साक्षी प्रतिपरीक्षा में एक बात कहता है और पुनर्परीक्षा में दूसरी, तो उसे शपथभंग बताने के पूर्व असंगति स्पष्ट की जानी चाहिए ।

इस अपील में विचारार्थ प्रश्न यह है कि क्या 16.3.1929 के परिवाद के लिए, जिसके आधार पर धारा 107 के अधीन कार्यवाही चली, पक्षकारों के परस्पर संबंधों का इतिहास महत्वपूर्ण है और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उनमें बहुत वर्षों से शत्रुता की स्थिति चली आ रही थी । पक्षकार एक हिन्दू कुटुंब के विभाजित सदस्य है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अब भी अपने वादों में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि वादी साबित करे कि अपीलार्थी ने अधिसंभाव्य और युक्तियुक्त कारण के बिना और विद्वेषपूर्ण ढंग से कार्रवाई की । इस में वह अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष असफल रहा, किंतु उच्च न्यायालय में सफल रहा, जिसने साक्ष्य के आधार पर विद्वान् न्यायाधीश के निष्कर्ष अपास्त कर दिए और साक्ष्य का पुनर्विलोकन करके विपरीत निष्कर्ष निकाले । हम तुरंत बता दें कि हम उन कारणों से संतुष्ट नहीं हैं जो उच्च न्यायालय ने ऐसे मामले

में जिसमें साक्षियों का विशिष्टतः पक्षकारों का व्यवहार प्रत्यक्षतः महत्वपूर्ण था इस बात के लिए कि उन्होंने अधीनस्थ न्यायाधीशों के निष्कर्षों को नकारा और साक्ष्य की स्वयं परीक्षा करके उन साक्षियों को विश्वसनीयता का प्रश्न तय किया जिन्हें उन्होंने देखा नहीं था । अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय की बाबत ये शब्द कठोर हैं और हमारी राय में वे उचित नहीं हैं । सेशन न्यायाधीश के निर्णय का निर्देश करना अपरिहार्य था, और यह दृष्टव्य है कि अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा अधिकांश निर्देश तीन साक्षियों गणेशी लाल, अली अहमद और हदियार खां की विश्वसनीयता के संबंध में है, और यह अधिक संभव है कि साक्षियों का साक्ष्य अस्वीकार करने के लिए वादी के अधिवक्ता द्वारा अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष सेशन न्यायाधीश के कारण पुनः दोहराए गए, जो पूर्णतया विधि-सम्मत था । वह स्वाभाविक था और निश्चय ही गलत नहीं था कि अधीनस्थ न्यायाधीश अपने कारण स्पष्ट करते कि क्यों वे सेशन न्यायाधीश के विचार के विपरीत इन साक्षियों पर विश्वास करते हैं । धारा 107 के अधीन अपने प्रथम निर्णय में अधीनस्थ न्यायाधीश उचित रूप से कहते हैं कि विवाद्यक जो उन्हें निर्धारित करना है यह है कि ऐसी परिस्थितियां थीं या नहीं जिनमें किसी सामान्य और युक्तिमान व्यक्ति का यह विश्वास करना उचित होता कि वादी के पक्ष के कुछ आदमी एक दिन मौजी राम के जीवन का अंत कर देंगे । तत्पश्चात्, उसी निर्णय में उन्होंने दांडिक मामले में दोषमुक्ति के आधारों और अपने समक्ष के मामले में भिन्नता दिखाने का बड़ा प्रयास किया है । हम समझते हैं कि ये कथन (यदि वे अन्यथा पर्याप्त स्पष्ट नहीं है) यह दिखाते हैं कि अधीनस्थ न्यायाधीश ने सावधानी से साक्ष्य पर विचार किया । विरोधी कथानकों को देखते हुए, विश्वसनीयता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण था और यह सही होगा कि हम कहें कि हम सेशन न्यायाधीश के कारणों की अपेक्षा अधीनस्थ न्यायाधीश के कारण पसंद करते हैं । उच्च न्यायालय ने हदियार खां के बारे में एक अतिरिक्त कारण के साथ, सारतः सेशन न्यायाधीश के कारण ही दोहराए प्रतीत होते हैं, जिनसे हम सहमत नहीं हैं । विद्वान् न्यायाधीशों का कहना है :– "अब यह दृष्टव्य है कि वादी के अधिवक्ता ने इस साक्षी की एक बलवे के मामले में दोषसिद्धि के प्रश्न पर उसकी प्रतिपरीक्षा की । साक्षी स्वीकार करता है कि एक बलवे का मामला उस पर चला था, पर उसका कहना है कि वह दोषमुक्त कर दिया गया । अंत में यह पाया गया कि उसका बयान नितांत सही नहीं था । विचारण न्यायालय ने उसे दोषसिद्ध किया था किंतु अपील में उसका दंड कम कर दिया गया

था । इन परिस्थितियों में वादी के अधिवक्ता का न्यायालय से यह निवेदन पूर्णतया उचित था कि ऐसे व्यक्ति के साक्ष्य पर विश्वास न किया जाए जिसने शपथ पर मिथ्या बयान दिया । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश इस शपथभंग की ओर कोई ध्यान नहीं देते ।" बाद में यह स्वीकार किया गया कि उच्च न्यायालय ने दंड इतना कम कर दिया कि अपील में निर्णय तक वह भुगत चुका था । यहां इस दृष्टि से बहुत कम सामग्री है जिस पर जानबूझकर शपथभंग का निष्कर्ष निकाला जा सके जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया । शपथभंग का कथन करने से पूर्व प्रतिपरीक्षा और पुनर्परीक्षा के मध्य दृश्य असंगति को स्पष्ट कर देना चाहिए था । हमारे द्वारा जो राय पहले व्यक्त की गई है, उससे यही निकलता है कि हमारी राय में उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलटना उचित नहीं था । हमारी यह भी राय है कि साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में विद्वान् न्यायाधीश के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई मान्य कारण नहीं बताया गया है, जिन साक्षियों को न्यायाधीश ने देखा था और मामले की परिस्थितियों में, विश्वसनीयता मुख्य निर्धारक तत्व हैं । तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिए, उच्च न्यायालय की दोनों डिक्रियां अपास्त की जानी चाहिए तथा अधीनस्थ न्यायाधीश की दोनों डिक्रियां पुनःस्थापित की जानी चाहिए । प्रत्यर्थी अपीलार्थी की इस अपील और उच्च न्यायालय की दोनों अपीलों का खर्चा अदा करे । (पैरा 3, 7 और 9)

सिविल अपीली अधिकारिता :	**1937 की अपील सं. 72.**
अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री सर थामस स्ट्रांगमैन और ए. जी. पी. पुलन
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री जे. पी. ऐडी और सुब्बाराव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड थैंकरटन ने दिया ।

न्या. थैंकरटन – यह समेकित अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 3.12.1935 के निर्णय के विरुद्ध है, जो उसी तारीख की दो डिक्रियों में समाविष्ट है और जिससे मैनपुरी के अधीनस्थ न्यायाधीश के न्यायालय की 1.8.1931 की दो डिक्रियां अपास्त की गईं और अपीलार्थी द्वारा विद्वेषपूर्ण अभियोजनों के संबंध में क्रमशः 5,313/- रुपए और 5,300/- रुपए की नुकसानी मंजूर की गई । अपीलार्थी अधीनस्थ न्यायाधीश की डिक्रियों की

पुनः स्थापना चाहता है, जिनसे वाद खारिज कर दिए गए थे । प्रत्यर्थी ने दोनों समेकित वाद 16.12.1930 को संस्थित किए थे जिनमें उसने विद्वेषपूर्ण अभियोजन के लिए नुकसानी का दावा किया था । वाद सं. 41 सन् 1930 उस कार्यवाही के संबंध में था जो मैनपुरी के प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपीलार्थी के परिवाद पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अधीन अप्रैल, 1929 में की गई थी तथा वाद सं. 42 सन् 1930 उस अभियोजन के संबंध में था जो उसी न्यायालय में प्रत्यर्थी और अन्य के विरुद्ध अपीलार्थी के परिवाद पर भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के अधीन मई सन् 1929 में किया गया ।

2. बोर्ड के समक्ष सुनवाई के समय अपीलार्थी दोनों अभियोजन संस्थित करने की अपनी जिम्मेदारी को प्रश्नगत नहीं करता, यद्यपि अपीलार्थी के धारा 107 के अधीन परिवाद के पहले से पुलिस पक्षकारों के मध्य शत्रुता की जांच कर रही थी । यह भी सही है कि अंत में दोनों अभियोजन असफल हुए । मजिस्ट्रेट ने दोनों मामलों का निर्णय 21.10.1929 को किया । धारा 107 के अधीन मामले में उन्होंने आदेश दिया कि एक वर्ष तक शांति बनाए रखने के लिए प्रत्यर्थी प्रतिभूति दे और धारा 506 के अधीन मामले में उन्होंने सब अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया और उन पर जुर्माना किया । किंतु दोनों मामलों में प्रत्यर्थी के अपीलें करने पर सेशन न्यायाधीश ने वे 18.12.1929 को मंजूर कर लीं और दोषसिद्धि और दंडादेश अपास्त कर दिए ।

3. अब भी अपने वादों में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि वादी साबित करे कि अपीलार्थी ने अधिसंभाव्य और युक्तियुक्त कारण के बिना और विद्वेषपूर्ण ढंग से कार्रवाई की । इस में वह अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष असफल रहा, किंतु उच्च न्यायालय में सफल रहा, जिसने साक्ष्य के आधार पर विद्वान् न्यायाधीश के निष्कर्ष अपास्त कर दिए और साक्ष्य का पुनर्विलोकन करके विपरीत निष्कर्ष निकाले । हम तुरंत बता दें कि हम उन कारणों से संतुष्ट नहीं हैं जो उच्च न्यायालय ने ऐसे मामले में जिसमें साक्षियों का विशिष्टतः पक्षकारों का व्यवहार प्रत्यक्षतः महत्वपूर्ण था इस बात के लिए कि उन्होंने अधीनस्थ न्यायाधीशों के निष्कर्षों को नकारा और साक्ष्य की स्वयं परीक्षा करके उन साक्षियों को विश्वसनीयता का प्रश्न तय किया जिन्हें उन्होंने देखा नहीं था ।

4. इस पर विचार करने में कि क्या 16.3.1929 के परिवाद के लिए,

जिसके आधार पर धारा 107 के अधीन कार्यवाही चली, अपीलार्थी के पास युक्तियुक्त और अधिसंभाव्य कारण था, पक्षकारों के परस्पर संबंधों का इतिहास महत्वपूर्ण है, और इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि उनमें बहुत वर्षों से शत्रुता की स्थिति चली आ रही थी । पक्षकार एक हिन्दू कुटुंब के विभाजित सदस्य हैं । अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के स्वर्गीय पिता का सगा चचेरा भाई है । वह लगभग 1907 तक, जब कि प्रत्यर्थी ने अपनी संपदा के लाभों की वसूली के लिए अपीलार्थी पर दो या तीन बार वाद किए । दोनों पक्षकार जमींदार और साहूकार हैं और वे एक ही गांव में रहते हैं । अपीलार्थी निःसंतान है और प्रत्यर्थी उसका निकटतम वारिस है । 1917 में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 107 के अधीन आबद्ध करने हेतु आवेदन दिया, किंतु यह कहा गया कि उस कार्यवाही में समझौता हो गया । अपीलार्थी के मित्र रामस्वरूप गुप्त की 1927 में हत्या और जिला परिषद् चुनाव में दिसंबर, 1928 में अपीलार्थी की सफलता के विवरण में जाना अनावश्यक है क्योंकि उच्च न्यायालय ने कथानक में इन्हें सही स्थान दिया है । उच्च न्यायालय ने कहा कि उन्हें इसमें लेशमात्र संदेह नहीं है कि "चतुर्भुज और मौजीराम में वर्षों से घोर शत्रुता चली आ रही है ।" तत्पश्चात्, अपीलार्थी के परिवाद के ठीक पहले 14.3.1929 को प्रत्यर्थी के घर पर एक बैठक हुई जिसमें संकल्प किया गया कि अपीलार्थी को शारीरिक क्षति पहुंचाई जाए । एक साक्षी ने, जो बैठक में उपस्थित था अपीलार्थी को इसकी सूचना दी और जो तब भी उपस्थित था जबकि अपीलार्थी के घर के सामने प्रत्यर्थी के मित्रों ने प्रत्यर्थी की उपस्थिति में, अपीलार्थी को गालियां दीं । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने इन घटनाओं को महत्वहीन कहकर छोड़ दिया कि अपीलार्थी के परिसर में ईटें फेंकी गईं और उस सड़क पर लकड़ी के लट्ठे पाए गए जिस पर अपीलार्थी यात्रा करता था । साक्ष्य का एक महत्वपूर्ण भाग, जिस पर उच्च न्यायालय ने पर्याप्त ध्यान दिया नहीं प्रतीत होता, प्रत्यर्थी और उसके गिरोह के संबंध में पुलिस का यह कहना है कि पुलिस द्वारा उसकी निगरानी होती थी और जब अपीलार्थी ने शिकायत की तो पुलिस उसके पहले ही मामले की छानबीन कर रही थी । हम और विवरण में जाना अनावश्यक पाते हैं, किंतु हमारा समाधान हो गया है कि विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निष्कर्ष को उचित ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य था जिसे उन्होंने माना और स्वीकार किया कि अपीलार्थी को सही और युक्तियुक्त रूप से भय था कि प्रत्यर्थी उस पर हमला करेगा या उसकी प्रेरणा या मौनानुकूलता से उस पर हमला होगा । विद्वान् न्यायाधीश ने उस साक्ष्य को स्वीकार किया और

प्रत्यर्थी के साक्ष्य को अविश्वसनीय ठहराया ।

5. अब भारतीय दंड संहिता की धारा 506 के अधीन अभियोजन पर विचार करें । इसका आधार अपीलार्थी की 21.5.1929 का परिवाद था । इसमें कहा गया था कि उस प्रातः प्रत्यर्थी और उसके तीन मित्र तथा एक गणेशी लाल, किशोरी लाल के बाग में अपीलार्थी के पास आए, जहां वह रुका हुआ था तथा प्रत्यर्थी और उसके मित्रों ने धारा 107 के अधीन मामले में समझौता करने के लिए कहा, और जब अपीलार्थी ने इससे इनकार कर दिया क्योंकि उनकी सद्भावना पर उसे विश्वास नहीं था तो प्रत्यर्थी और उसके मित्र अपना संतुलन खो बैठे और क्रोधित हो गए और उन्होंने अपीलार्थी को धमकी दी कि उसका भी वही हाल होगा जो रामस्वरूप गुप्ता का हुआ । अपीलार्थी और तीन अन्य साक्षियों ने अपीलार्थी के कथन के समर्थन में साक्ष्य दिया, जबकि प्रत्यर्थी ने इससे इनकार किया कि वह बाग में गया और उसने अपीलार्थी को धमकी दी । अपनी इनकारी के समर्थन में प्रत्यर्थी ने कोई अन्य साक्ष्य नहीं दिया और न उन तीन मित्रों की अनुपस्थिति का कोई स्पष्टीकरण दिया गया जो प्रत्यर्थी के साथ गए थे । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने जिन्होंने साक्षियों को देखा था, अपीलार्थी के साक्ष्य का विश्वास किया और प्रत्यर्थी का अविश्वास किया । उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी का साक्ष्य स्वीकार किया और विनिश्चय किया कि अपीलार्थी का साक्ष्य झूठा था । जिन आधारों पर उच्च न्यायालय ने ऐसा किया वे हमें इसे उचित ठहराने के लिए नितांत अपर्याप्त प्रतीत होते हैं । अब उसकी परीक्षा करें । उच्च न्यायालय के निर्णय में ये आधार इस प्रकार कहे गए हैं :–

> "विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश का निर्णय संतोषजनक नहीं है और हमारी शिकायत है कि उससे हमें बहुत कम सहायता मिली । जिस ढंग से साक्ष्य पर विचार किया जाना चाहिए था उस पर उस ढंग से विचार करने की बजाए उन्होंने विद्वान् सेशन न्यायाधीश के निर्णय की आलोचना आरंभ कर दी, जिन्होंने वादी को दोषमुक्त कर दिया था । ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होंने सेशन न्यायाधीश को मामले में एक विरोधी पक्षकार समझ लिया और स्वयं एक अधिवक्ता की भूमिका अदा करने लगे, जिसे अपने मुवक्किल की ओर से विरोधी पक्षकार के तर्क की आलोचना करनी है । उनका निर्णय देखने से पता चलता है कि प्रत्येक कदम पर वे यह दर्शित करने के लिए आतुर हैं कि सेशन न्यायाधीश के निष्कर्ष, जिन्होंने वादी को दोषमुक्त

किया, गलत थे । अपने समक्ष के मामले पर विचार करने का यह सही ढंग नहीं था । हमारी राय में विद्वान् सेशन न्यायाधीश को दंड न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण के विषय में चिंता नहीं करनी चाहिए थी । उन्हें अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य पर सावधानी और शांति से विचार करना चाहिए था और फिर यह निर्णय करना चाहिए था कि विरोधी पक्षकार के विरुद्ध वादी अपना मामला साबित कर पाया है या नहीं । सेशन न्यायाधीश के विरुद्ध एक के बाद एक बात कहने की चिंता ने विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश को अपने निर्णय में ऐसी बातें कहनी पड़ीं, जिन्हें समझना कठिन है ।"

6. और फिर उच्च न्यायालय ने कहा :–

"अपने निर्णय में विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश अपने कोई कारण नहीं देते कि वे वादी के साक्ष्य की अपेक्षा प्रतिवादी और उसके साक्षियों के साक्ष्य पर क्यों विश्वास करते हैं । साधारणतया प्रथम अपील में यह न्यायालय तथ्य के प्रश्न पर निचले न्यायालय के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का अनिच्छुक रहता है । प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा यह बहस की गई है कि हमारे समक्ष मामले में तथ्यों के बारे में वादी के विरुद्ध निष्कर्ष हैं और हमें उसे उलटना नहीं चाहिए । हम पहले ही कह चुके हैं कि तथ्यों के बारे में निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष अत्यंत सम्माननीय और महत्वपूर्ण होते हैं, किंतु साथ ही इस न्यायालय के लिए यह न्याय-सम्मत है कि वह यह आग्रह करें कि निचले न्यायालय का निर्णय दर्शित करें कि साक्ष्य सावधानी से आंका गया और इस पर विचार किया गया । अपने समक्ष के मामले में हम ऐसा कोई संकेत नहीं पाते । अतः यह आवश्यक है कि हम स्वयं साक्ष्य की परीक्षा करके मामले का विनिश्चय करें ।"

7. अधीनस्थ न्यायाधीश के निर्णय की बाबत ये शब्द कठोर हैं और हमारी राय में वे उचित नहीं हैं । सेशन न्यायाधीश के निर्णय का निर्देश करना अपरिहार्य था, और यह दृष्टव्य है कि अधीनस्थ न्यायाधीश द्वारा अधिकांश निर्देश तीन साक्षियों गणेशी लाल, अली अहमद और हदियार खां की विश्वसनीयता के संबंध में है, और यह अधिक संभव है कि साक्षियों का साक्ष्य अस्वीकार करने के लिए वादी के अधिवक्ता द्वारा अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष सेशन न्यायाधीश के कारण पुनः दोहराए गए, जो पूर्णतया विधि-सम्मत था । वह स्वाभाविक था और निश्चय ही गलत नहीं

था कि अधीनस्थ न्यायाधीश अपने कारण स्पष्ट करते कि क्यों वे सेशन न्यायाधीश के विचार के विपरीत इन साक्षियों पर विश्वास करते हैं । धारा 107 के अधीन अपने प्रथम निर्णय में अधीनस्थ न्यायाधीश उचित रूप से कहते हैं कि विवाद्यक जो उन्हें निर्धारित करना है यह है कि ऐसी परिस्थितियां थीं या नहीं जिनमें किसी सामान्य और युक्तिमान व्यक्ति का यह विश्वास करना उचित होता कि वादी के पक्ष के कुछ आदमी एक दिन मौजी राम के जीवन का अंत कर देंगे । तत्पश्चात्, उसी निर्णय में उन्होंने दांडिक मामले में दोषमुक्ति के आधारों और अपने समक्ष के मामले में भिन्नता दिखाने का बड़ा प्रयास किया है । हम समझते हैं कि ये कथन (यदि वे अन्यथा पर्याप्त स्पष्ट नहीं है) यह दिखाते हैं कि अधीनस्थ न्यायाधीश ने सावधानी से साक्ष्य पर विचार किया । विरोधी कथानकों को देखते हुए, विश्वसनीयता का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण था और यह सही होगा कि हम कहें कि हम सेशन न्यायाधीश के कारणों की अपेक्षा अधीनस्थ न्यायाधीश के कारण पसंद करते हैं । उच्च न्यायालय ने हदियार खां के बारे में एक अतिरिक्त कारण के साथ, सारतः सेशन न्यायाधीश के कारण ही दोहराए प्रतीत होते हैं, जिनसे हम सहमत नहीं हैं । विद्वान् न्यायाधीशों का कहना है :–

> "अब यह दृष्टव्य है कि वादी के अधिवक्ता ने इस साक्षी की एक बलवे के मामले में दोषसिद्धि के प्रश्न पर उसकी प्रतिपरीक्षा की । साक्षी स्वीकार करता है कि एक बलवे का मामला उस पर चला था, पर उसका कहना है कि वह दोषमुक्त कर दिया गया । अंत में यह पाया गया कि उसका बयान नितांत सही नहीं था । विचारण न्यायालय ने उसे दोषसिद्ध किया था किंतु अपील में उसका दंड कम कर दिया गया था । इन परिस्थितियों में वादी के अधिवक्ता का न्यायालय से यह निवेदन पूर्णतया उचित था कि ऐसे व्यक्ति के साक्ष्य पर विश्वास न किया जाए जिसने शपथ पर मिथ्या बयान दिया । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश इस शपथभंग की ओर कोई ध्यान नहीं देते ।"

8. इस साक्षी की परीक्षा में केवल निम्नलिखित निर्देश हैं :–

प्रतिपरीक्षा – "15-16 वर्ष हुए मैं एक बार बलवे में दोषसिद्ध पाया गया ।"

पुनर्परीक्षा – "अपील में उच्च न्यायालय द्वारा मैं दोषमुक्त कर

दिया गया ।"

9. बाद में यह स्वीकार किया गया कि उच्च न्यायालय ने दंड इतना कम कर दिया कि अपील में निर्णय तक वह भुगत चुका था । यहां इस दृष्टि से बहुत कम सामग्री है जिस पर जानबूझकर शपथभंग का निष्कर्ष निकाला जा सके जैसा कि उच्च न्यायालय ने किया । शपथभंग का कथन करने से पूर्व प्रतिपरीक्षा और पुनर्परीक्षा के मध्य दृश्य असंगति को स्पष्ट कर देना चाहिए था । हमारे द्वारा जो राय पहले व्यक्त की गई है, उससे यही निकलता है कि हमारी राय में उच्च न्यायालय का अधीनस्थ न्यायाधीश के निष्कर्षों को उलटना उचित नहीं था । हमारी यह भी राय है कि साक्षियों की विश्वसनीयता के संबंध में विद्वान् न्यायाधीश के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का कोई मान्य कारण नहीं बताया गया है, जिन साक्षियों को न्यायाधीश ने देखा था और मामले की परिस्थितियों में, विश्वसनीयता मुख्य निर्धारक तत्व हैं । तद्नुसार हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह है कि यह अपील मंजूर की जानी चाहिए, उच्च न्यायालय की दोनों डिक्रियां अपास्त की जानी चाहिए तथा अधीनस्थ न्यायाधीश की दोनों डिक्रियां पुनःस्थापित की जानी चाहिए । प्रत्यर्थी अपीलार्थी की इस अपील और उच्च न्यायालय की दोनों अपीलों का खर्चा अदा करे ।

अपील मंजूर की गई ।

भूपेन्द्र मोहन राय और अन्य .... अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती पूर्ण शशि देवी और अन्य .... प्रत्यर्थी

7.7.1939

न्यायमूर्ति लार्ड रोमर, न्यायमूर्ति सर जार्ज रैंकिन और न्यायमूर्ति एम. आर. जयाकर

हिन्दू विधि – दत्तक ग्रहण – हिन्दू विधि की बंगाल शाखा के अधीन पति द्वारा अपनी विधवा को दिए गए दत्तक ग्रहण के प्राधिकार का कड़ाई से अनुसरण किया जाना चाहिए ।

वसीयतकर्ता द्वारा अपनी वसीयत में विधवा को यह प्राधिकार कि वह वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष के भीतर उसके भाइयों के पुत्रों में से किसी को गोद ले ले तथा यदि वह ऐसा नहीं करती है या दत्तक पुत्र निःपुत्र मर जाता है तो निष्पादक संपदा की सभी शेष आय पूर्त कार्यों में खर्च करेंगे – विधवा द्वारा वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष पश्चात् किया गया दत्तक ग्रहण अविधिमान्य ।

हिन्दू विधि – संपदा का उत्तराधिकार – कभी प्रास्थगित नहीं रहता - वसीयतकर्ता की मृत्यु पर उसकी संपदा में कोई हित, जिसकी उसकी वसीयत में व्यवस्था प्रभावी रूप से नहीं की गई है, उसके वारिस के रूप में तुरंत उसकी विधवा में निहित हो जाएगा ।

इस अपील में मुख्य विचारार्थ प्रश्न वसीयत के उचित अर्थान्वयन और प्रभाव के संबंध में है । तद्नुसार आदेश करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां तक हम उच्च न्यायालय से पूर्णतया सहमत हैं ; किंतु उन्हें पूरा आदर देते हुए भी हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि अपने पति की मृत्यु से 11 वर्ष के अधिक बाद प्रत्यर्थी का पति के भतीजे को गोद लेना वसीयत द्वारा उसे प्रदत्त प्राधिकार के नितांत अनुरूप था । यह सही है कि वसीयत स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहती कि अपने पति की मृत्यु से दस वर्ष बीत जाने के पश्चात् उसके भाइयों या सौतेले भाई के पुत्रों में से किसी का दत्तक-ग्रहण शून्य होगा । किंतु यह सुसंगत नहीं है । प्रश्न यह नहीं है कि वसीयत किसे शून्य कहती है, बल्कि यह है कि ऐसे पुत्र को गोद लेने का क्या अधिकार प्रत्यर्थिनी का दिया गया । हमारी राय में इस प्रश्न का उत्तर साफ है । अधिकार वह है जो वसीयत के खंड 3 के

पैरा 1 में वर्णित है, अर्थात्, वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष के भीतर दत्तक-ग्रहण का अधिकार । हम वसीयत में, इस पैरा के पूर्व या पश्चात्, कोई ऐसी बात नहीं पाते जो किसी प्रकार इस अधिकार में वृद्धि करती हो । अधिकार अभिव्यक्त रूप से सीमित है और प्रमाणों तथा अधिकारों को लागू साधारण सिद्धांतों के अनुसार अभिव्यक्त निर्बंधन का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए । इन कारणों से हम अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निर्णय से सहमत हैं कि दत्तक-ग्रहण अविधिमान्य था । हम इस बात से भी उनसे सहमत हैं कि वसीयत के खंड 7 में अंतर्विष्ट किसी पुत्र को गोद न लेने की दशा में दान, उस स्थिति में जो थी, विधिमान्य था और वह वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् प्रभावी हुआ । हम इस प्रश्न पर कोई राय प्रकट नहीं करते कि यदि कोई विधिमान्य दत्तक-ग्रहण होता तो "गोद लिए हुए पुत्र" के निष्पुत्र मर जाने की दशा में दान दूरस्थ होने के कारण निष्फल होता या नहीं, क्योंकि कोई पुत्र गोद न लेने की दशा में दान उस दान से स्पष्टतया भिन्न है जो अभी वर्णित अन्य दशा में हो और जो प्रभावी होने की दशा में विलंबतम वसीयतकर्ता की मृत्यु से बारह वर्ष बीत जाने पर या उसके पूर्व उसकी विधवा की मृत्यु हो जाने पर प्रभावी होगा । जो घटनाएं घटी उनमें यह दान वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष व्यतीत होने पर प्रभावी हुआ क्योंकि प्रत्यर्थी के लिए यह असंभव नहीं था कि इस अवधि के भीतर वह अपने पति के भाइयों या सौतेले भाई के पुत्रों में से किसी को गोद ले लेती । प्रत्यर्थी की ओर से यह बहस की गई कि ऐसा होने पर भी दान इस आधार पर अविधिमान्य है कि वसीयतकर्ता की मृत्यु और दस वर्ष की अवधि बीतने के मध्य संपदा की उत्तराधिकार प्रास्थगित रहा, जो हिन्दू विधि के प्रतिकूल है । हिन्दू विधि के उत्तराधिकार के इस सिद्धांत को हम किसी प्रकार प्रश्नगत नहीं करना चाहते, किंतु प्रस्तुत मामले मे इसका लागू होना कल्पनीय नहीं है । वसीयतकर्ता की मृत्यु पर उसकी संपदा में कोई हित, जिसकी प्रभावी रूप से व्यवस्था नहीं की गई है, तुरंत उसके वारिस के रूप में प्रत्यर्थी में निहित हो जाएगा । अतः उत्तराधिकार का कोई प्रास्थगन नहीं हुआ । यदि वसीयत के खंड 4 और 5 में वर्णित व्यवस्थाएं करने के पश्चात् उसकी संपदा की अतिरिक्त आय का प्रभावी रूप से व्ययन नहीं किया गया तो ऐसी अतिरिक्त आय प्राप्त करने का अधिकार प्रत्यर्थी में निहित था । वास्तव में उसका ऐसे व्ययन नहीं किया गया । वसीयत के खंड 7 में वर्णित पूर्त प्रयोजनार्थ वसीयतकर्ता की शेष संपदा का दान एक समाश्रित दान था । अतः दान निहित होने के पूर्व प्रोद्भूत उसकी कोई आय दान में शामिल

नहीं होगी । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी उस आय का हिसाब मांगने और हिसाब करने पर उसे जो देय पाया जाए उसका उसे भुगतान किए जाने की हकदार है तथा उसका वाद पूर्णतया खारिज नहीं किया जाना चाहिए था । किंतु विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश के प्रति न्याय की दृष्टि से यह कहना होगा कि ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के इस पक्ष की ओर उनका ध्यान नहीं दिलाया गया । (पैरा 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[1906]	(1906) 33 इंडियन अपील्स 55 : **मुतसद्दी लाल** बनाम **कुंदन लाल** ;	10
[1921]	47 इंडियन अपील्स 202 = आ. इं. रि. 1921 प्रि. कौं. 88 : **सीताबाई** बनाम **बापू अन्ना पाटिल** ।	11

सिविल अपीली अधिकारिता : 1937 की अपील सं. 67.

अपीलार्थियों की ओर से श्री जे. एम. प्रिंगले

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री जे. एम. पारिख

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति लार्ड रोमर ने दिया ।

न्या. रोमर – यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय की 20.5.1935 की डिक्री के विरुद्ध है, जिसके द्वारा उन्होंने ढाका के प्रथम अपर अधीनस्थ न्यायाधीश के 17.6.1932 के निर्णय और डिक्री को उलट दिया है । अधीनस्थ न्यायाधीश ने श्रीमती पूर्ण शशि देवी, प्रत्यर्थिनी सं. 1 (जिसे यहां आगें प्रत्यर्थी कहा गया है) द्वारा अपीलार्थियों तथा अन्य के विरुद्ध संस्थित वाद खारिज कर दिया था । प्रत्यर्थी भालेन्द्र मोहन राय (जिसे यहां आगे वसीयकर्ता कहा गया है) की विधवा है । वसीयकर्ता की 11.1.1916 को मृत्यु हुई । उसने मृत्यु से पहले दिन वसीयत की थी । उसने तीन उत्तरजीवी भाई (जो अपीलार्थी हैं) भी छोड़े और एक सौतेला भाई राजेन्द्र मोहन राय छोड़ा । क्योंकि अपील में निर्णयार्थ प्रश्न वसीयत के उचित अर्थान्वयन और प्रभाव के संबंध में है, अतः उस के तात्विक भागों का पूर्ण रूप से उद्धरण आवश्यक है । वे इस प्रकार हैं :–

"2. यदि मुझसे कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होता है या ऐसा पुत्र जन्म के पश्चात् मर जाता है तो मेरी पत्नी श्रीमती पूर्ण शशि देवी को अनुमति होगी कि श्राद्ध, अंतिम संस्कार और मेरे पूर्वजों को जल और पिंडदान करने के प्रयोजनार्थ उत्तरोत्तर (एक की मृत्यु के पश्चात् दूसरा) पांच पुत्र तक गोद ले और वह दत्तक पुत्र संपदा का स्वामी होगा तथा वयस्क होने पर वह संपदा निष्पादाकों के हाथ से लेने का हकदार होगा ; और मैं ऊपर कहे अनुसार उसे पुत्र गोद लेने की अनुज्ञा प्रदान करता हूं । पहले मैंने उसे इस प्रकार से पुत्र गोद लेने की मौखिक अनुज्ञा प्रदान की थी ।"

2. मेरी मृत्यु के उपरांत दस वर्ष के भीतर मेरी उपर्युक्त पत्नी पैरा 2 में वर्णित उपबंधों के अनुसार मेरे तीनों सगे भाइयों के पुत्रों में से एक पुत्र गोद लेगी या मेरे सौतेले भाई श्रीयुत राजेन्द्र मोहन राय के पुत्रों में से एक पुत्र गोद लेगी । यदि उनमें से किसी के भी पुत्रों में से पुत्र गोद लेना असंभव हो तो दस वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् अगले 2 वर्ष के भीतर वह अपनी पसंद के अनुसार मेरे अन्य सगोत्र संबंधियों के पुत्रों में से पुत्र गोद ले लेगी । इसके अभाव में या यदि यह संभव न हो तो वह मेरे गोत्र या भिन्न गोत्र का पुत्र गोद ले लेगी । वह प्रथम पुत्र 12 वर्ष के भीतर ऊपर कहे अनुसार गोद लेगी । यदि वह पुत्र निष्पुत्र मर जाता है तो वह 12 वर्ष की उक्त अवधि के व्यतीत होने पर भी दत्तक ग्रहण कर सकती है । मेरी उपर्युक्त पत्नी उत्तरोत्तर पांच पुत्र, एक की मृत्यु के पश्चात् दूसरा, उपर्युक्त ढंग से, गोद लेने की हकदार होगी ।

3. पैरा 1 में वर्णित मेरे सगे भाई मेरे शुभचिंतक हैं और मेरे प्यार के विश्वसनीय पात्र हैं । मैं एजमाली में उनके साथ रहता हूं और मेरा खाना-पीना भी उनके साथ है । मेरे जीवनकाल में भी मेरे दो बड़े भाई उचित रूप से संपदा की देखभाल और प्रबंध करते रहे हैं । अतः मैं अपने सगे भाइयों श्रीयुत भूपेन्द्र मोहन राय, श्रीयुत पृथ्वीचन्द्र मोहन राय और श्रीमान हिरण्य मोहन राय को अपनी मृत्यु के पश्चात् उस समय तक के लिए संपदा के निष्पादक के रूप में नियुक्त करता हूं जब तक मेरा पुत्र या दत्तक पुत्र या यदि अपनी अवयस्कता के दौरान उसकी मृत्यु हो जाए तो उसका पुत्र, वयस्कता प्राप्त न करें । वे साथ-साथ या किसी की मृत्यु, अयोग्यता या अनुपस्थिति की दशा में अन्य संपदा की देखभाल और उसका प्रबंध करेंगे । संपदा की भलाई या आवश्यकता के लिए वे मेरी स्थावर संपत्ति या उसके किसी भाग का व्यवस्थापन स्थायी तौर पर या पटनी या इजारा के रूप में

कर सकेंगे । वे कोई ऐसी कार्रवाई नहीं कर सकेंगे जो संपदा के लिए हानिकर हो और न वे उसे अंतरित या भारित कर सकेंगे । निष्पादक अपने विचार और मेरे कुटुंब की परम्परा के अनुसार मेरे पूर्वजों के धार्मिक कृत्य एवं कर्तव्य तथा अन्य उत्सव संपादित करेंगे, जिनके खर्चे मेरे द्वारा छोड़ी गई संपदा से किए जाएंगे । वे मेरी मां, पत्नी, पुत्री तथा पैरा 5 में वर्णित अन्य लोगों का भरण-पोषण करेंगे और मेरे द्वारा छोड़ी गई संपदा से उनके मासिक भत्ते अदा करेंगे । निष्पादक और उनके प्रतिनिधि, मेरे स्वर्गीय पिता सुधेन्द्र मोहन राय की वसीयत के उपबंधों के अनुसार काम करने के लिए आबद्ध होंगे । कोई भी किसी भी समय निष्पादकों से आय-व्यय का कोई हिसाब न मांग सकेगा, न ले सकेगा ।

4. मेरी मां श्रीयुक्त हरकामिनी देवी, जिनसे मैं पैदा हुआ, मेरे पिता की वसीयत के अनुसार, मेरी संपदा से हिस्से के अनुसार भरण-पोषण की हकदार होंगी, और उसके श्राद्ध में मेरी संपदा से 2,000/- रुपए से अनधिक खर्च किए जाने चाहिए । मेरी पत्नी, श्रीमती पूर्ण शशि देवी निष्पादकों को देखरेख में और जब मेरा पुत्र या दत्तक पुत्र वयस्क् हो जाए तो उसकी देखरेख में रहेगी । वह भरण-पोषण और धार्मिक कृत्यों, तीर्थयात्रा आदि के लिए सब खर्चों की संपदा की परिस्थितियों और निष्पादकों के निदेशों के अनुसार हकदार होगी । यदि मेरी उपर्युक्त पत्नी के निष्पादकों से अच्छे संबंध न रहें, तो वह अपने जीवनकाल में मेरी संपदा से 20/- रुपए मासिक भरण-पोषण भत्ता और एक समय में 1,000/- रुपए तीर्थयात्रा के खर्चे के लिए पाने की हकदार होगी, और वह मेरे आवासीय घर में उचित वासस्थान में रहने की भी हकदार होगी । मेरी एकमात्र पुत्री श्रीमती वीणा पाणि देवी इस समय अवयस्क और अविवाहित है । उसके विवाह के सारे खर्चे मेरे कुटुंब की परंपरा के अनुसार मेरी संपदा से किए जाएंगे और उसके विवाह तक उसके भरण-पोषण का खर्चा मेरी संपदा उठाएगी । यदि विवाह के पश्चात् वह अपने पति के घर में रहती है, तो वह अपने जीवनपर्यन्त मेरी संपदा से 5/- रुपए प्रतिमास पाएगी, और यदि वह मेरे अपने घर में रहती है तो वह मेरी संपदा से भरण-पोषण की हकदार होगी । यदि उसके मेरे वारिसों या हित उत्तराधिकारियों से अच्छे संबंध नहीं हों और वह मेरे अपने गांव में रहना चाहे तो मेरे वारिस और हित उत्तराधिकारी संपदा की परिस्थितियों के अनुसार उसे पृथक् भूमि और घर देने को आबद्ध होंगे, और वह अपने जीवनपर्यन्त मेरी संपदा से अपने भरण-पोषण हेतु 20/- रुपए मासिक भत्ता पाने की हकदार होगी ; और वह उक्त बातों के लिए मेरी संपदा से उचित राशि पाने की हकदार होगी । यदि मेरी

कोई अन्य पुत्री होती है तो वह भी उपर्युक्त श्रीमती वीणा पाणि देवी के ठीक समान भरण-पोषण, मासिक भत्ते, विवाह-व्यय वासस्थान और गृह आदि की हकदार होगी ।

5. मेरे तीनों भाई निष्पादक एक साथ या उनमें से दो या एक इस वसीयत का प्रोबेट प्राप्त करेंगे और उस समय तक मेरे द्वारा छोड़ी गई संपदा का प्रशासन और प्रबंध करेंगे जब तक मेरा पुत्र या पौत्र वयस्कता प्राप्त नहीं करता है । उनमें इस वसीयत में वर्णित सब उत्तरदायित्व और शक्तियां निहित होंगी और वे ऋण अदा करेंगे ।

6. यदि मुझसे कोई पुत्र उत्पन्न नहीं होता है या ऐसा कोई पुत्र जन्म के पश्चात् मर जाता है या संयोग से कोई पुत्र गोद नहीं लिया जाता है, या गोद लिए पुत्र का कोई पुत्र नहीं होता है तो निष्पादक या उनमें से कोई एक या उनकी असहमति की दशा में ढाका के कलेक्टर मेरे मूल गांव में जो निवास स्थान है उसमें मेरे नाम से एक विद्यालय और पूर्त औषधालय स्थापित करेंगे और मेरी संपदा का संपूर्ण अधिशेष उसके अनुरक्षण में व्यय करेंगे । उक्त आशय से, मैं अपने पूरे होश हवास में और शांत मन से यह वसीयत 19, हरचन्द्र मलिक लेन, कलकत्ता में निष्पादित करता हूं । इति

मिती 26 पौष बंगला संवत् 1132 ।"

7. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया, वसीयतकर्ता की 11.1.1915 को मृत्यु हो गई । तत्पश्चात् 10 वर्ष व्यतीत हो गए और इस बीच प्रत्यर्थिनी ने वसीयतकर्ता के भाइयों या सौतेले भाई के पुत्रों में से किसी को गोद लेने के लिए कोई कदम नहीं उठाया । यह इस कारण नहीं था कि ऐसा पुत्र मिलने में कोई कठिनाई थी । विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश ने विस्तार से इस बारे में साक्ष्य की परीक्षा की है और उसका सारांश इन शब्दों में दिया है :–

> "अतः कोई ऐसा साक्ष्य नहीं है कि वादी ने 10 वर्ष के भीतर अपने पति के भाइयों के पुत्रों में से किसी को गोद लेने का वास्तविक प्रयास किया और वह असफल रही, बल्कि इसके विपरीत साक्ष्य है कि प्रतिवादी सं. 1 और 2 (अर्थात् अपीलार्थियों में से दो) ने अपने पुत्रों को गोद देने हेतु वादिनी से प्रस्ताव किया, किंतु उसने गोद नहीं लिया ।"

8. किंतु 13.8.1926 को प्रत्यर्थी द्वारा अपीलार्थियों में से एक के

शिशु पुत्र को गोद लेना तात्पर्यित है । तथ्यात्मक रूप से दत्तक ग्रहण हुआ, यह अब विवादगत नहीं है । इसके बारे में मात्र यह प्रश्न है कि क्या यह देखते हुए कि यह दत्तकग्रहण वसीयतकर्ता की मृत्यु के 10 वर्ष के भीतर नहीं किया गया, यह विधिमान्य है । 24.11.1926 को दत्तक पुत्र की निष्पुत्र मृत्यु हो गई ।

9. ये परिस्थितियां थीं जिनमें प्रत्यर्थिनी ने 20.1.1928 को प्रस्तुत वाद संस्थित किया । उसने दावा किया कि उसके पति की वसीयत के निष्पादकों के रूप में अपीलार्थी उसे उन संपत्तियों का कब्जा दें, जिनकी हकदार वह अपने पति की मृत्यु पर है । उसने ऐसी संपत्तियों की आय का हिसाब दिए जाने का भी दावा किया । उसका कहना था कि वसीयत के पैरा 2 के अभिव्यक्त शब्दों के आधार पर दत्तक पुत्र "संपदा का स्वामी" हो गया तथा उसकी मृत्यु पर उसकी वारिस के रूप में वह संपदा की हकदार हो गई । वसीयत के पैरा 7 के बारे में जिसमें (अन्य बातों के साथ) गोद लिए पुत्र के निष्पुत्र मर जाने की दशा में पूर्त प्रयोजनों के पक्ष में दान का उपबंध है, उसका कहना है कि दान इस आधार पर शून्य है कि वह पैरा 2 में अंतर्विष्ट दत्तक पुत्र के पक्ष में पूर्ण दान के विरुद्ध है । यह वास्तव में इस उपधारणा पर कहा गया कि दत्तक-ग्रहण विधिमान्य था । यह उपधारण निराधार साबित होने की दशा में उसने अपने पति की वारिस के रूप में संपत्तियों की हकदार होने का दावा यह कह कर किया कि किसी पुत्र के गोद न लिए जाने की दशा में दान दूरस्थ और अनिश्चित होने के आधार पर शून्य है । वाद ढाका के अपने अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष 17.6.1932 को सुनवाई हेतु प्रस्तुत हुआ । उन्होंने विनिश्चय किया कि दत्तक-ग्रहण अविधिमान्य था, क्योंकि वह वसीयत द्वारा सीमित 10 वर्ष की अवधि के भीतर नहीं किया गया । उनका विचार था कि कुछ प्रमाणों को ध्यान में रखते हुए, जिनका हम बाद में उल्लेख करेंगे, प्रत्यर्थी को दी गई दत्तक-ग्रहण की शक्ति ऐसी थी जिसका सख्ती से अनुसरण किया जाना चाहिए था । उन्होंने विनिश्चय किया कि गोद न लेने की दशा में, जैसा कि हुआ पैरा 7 में अंतर्विष्ट दान हर प्रकार से विधिमान्य था । परिणामस्वरूप, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया, प्रत्यर्थिनी का वाद खर्चे सहित खारिज कर दिया गया ।

10. तब प्रत्यर्थी ने उच्च न्यायालय में अपील की । अपील सफल हुई । यह विनिश्चय किया गया कि दत्तक-ग्रहण विधिमान्य था । न्यायमूर्ति मित्तर ने, जिनके निर्णय से न्यायमूर्ति राव सहमत हुए, अधीनस्थ न्यायाधीश की

यह बात मानी कि हिन्दू विधि की बंगाल शाखा के अधीन पति द्वारा अपनी विधवा को दिए गए दत्तक-ग्रहण के प्राधिकार का कड़ाई से अनुसरण किया जाना चाहिए । उन्होंने कहा कि "विधि की इस प्रस्थापना के बारे में कोई विवाद नहीं उठाएगा" । किंतु उनका विचार था कि वसीयकर्ता की वसीयत के सही अर्थान्वयन के अनुसार अपने चार भाइयों में से किसी एक के पुत्र को गोद लेने के विधवा को दिए गए प्राधिकार का वसीयतकर्ता की मृत्यु से 12 वर्ष के भीतर किसी समय प्रयोग किया जा सकता था । उन्होंने कहा :–

> "हमारी राय में वसीयत का युक्तियुक्त अर्थ करने और उसका शाब्दिक अर्थ करने पर भी, उसका उचित अर्थ यह है कि वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष पश्चात् और बारह वर्ष के भीतर अपने पति के भतीजों को गोद लेने के संबंध में कोई निषेध नहीं था और बारह वर्ष के भीतर गोद लेने से वसीयतकर्ता की इच्छा का ही पालन किया गया ।"

और कुछ आगे उन्होंने कहा :–

> "प्रमाणों के आधार पर हमें देखना है कि क्या वसीयत में कहीं कोई ऐसा आशय है जो व्यक्त करता हो कि दस वर्ष पश्चात् भतीजे अपवर्जित कर दिए जाएंगे । जैसा हम पहले ही कह चुके हैं, हमें ऐसा करना वसीयत का अयुक्तियुक्त अर्थान्वयन प्रतीत होता है ।"

11. क्योंकि न्यायाधीशों की राय में दत्तक-ग्रहण विधिमान्यतः किया गया और दत्तक पुत्र की निष्पुत्र मृत्यु हो गई इससे अनिवार्यतः यह निकला कि प्रत्यर्थी को तत्पश्चात् किसी समय उत्तरोत्तर चार और पुत्र गोद लेने का अधिकार था । अतः यह अवधारित करने के लिए कि वसीयत के पैरा 7 में अंतर्विष्ट दान गोद लिए पुत्र के निष्पुत्र मर जाने के कारण प्रभावी हो गया, प्रत्यर्थी की मृत्यु तक प्रतीक्षा करना आवश्यक हो सकता था । तो इस बीच वसीयतकर्ता की संपदा का क्या होता, जो पुत्र में निहित हो गई थी जिसका गोद लेना विधिमान्य ठहराया गया था । उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर प्रत्यर्थिनी के पक्ष में दिया । उन्होंने विनिश्चय किया कि संपदा दत्तक पुत्र के वारिस के रूप में प्रत्यर्थी में निहित हो गई थी और वह तुरंत उस पर कब्जा पाने और उसका प्रशासन करने की हकदार थी । उनकी राय में कोई अन्य निष्कर्ष इस हिन्दू विधि के प्रतिकूल होगा कि किसी संपदा का उत्तराधिकार कभी प्रास्थगित नहीं रह सकता । हमारी राय में यह प्रतिष्ठित विधि है कि प्रस्तुत जैसे मामले में पति द्वारा अपनी विधवा

को दिए गए गोद लेने के प्राधिकार का कड़ाई से अनुसरण होना चाहिए । **मुतसद्दी लाल** बनाम **कुंदन लाल**[1] में प्रिवी काउंसिल ने इस विषय पर निम्नलिखित विधि प्रतिपादित की है :–

> "हिन्दू विधि की सब शाखाएं विधवा के अपने स्वामी की अनुमति से अपने पति के लिए पुत्र गोद लेने के अधिकार को मान्यता प्रदान करती हैं । यह भी समान रूप से प्रतिष्ठित है कि अनुमति मौखिक या लिखित रूप में दी जा सकती है, दिए जाने पर इसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए ; जब तक वह स्वयं ऐसा न करना चाहे उसे उसके कार्यान्वयन के लिए विवश नहीं किया जा सकता तथा इसके प्रतिकूल अभिव्यक्त निदेश के अभाव में, समय की कोई सीमा नहीं है जिसके भीतर वह उसे प्रदत्त अधिकार का प्रयोग कर सकती है ।"

12. बहुत कुछ इसी आशय की बात लार्ड बकमास्टर ने **सीताबाई** बनाम **बापू अन्ना पाटिल**[2] में प्रिवी कौंसिल का निर्णय सुनाते हुए कही :–

> "विधि की बंबई शाखा के अनुसार अपने पति की आज्ञा का पालन करने हेतु हिन्दू विधवा का कर्तव्य उसे विवश करता है कि वह पति के किसी भी ऐसे आज्ञापक निदेश का पालन करे जो पति दत्तक-ग्रहण की उसकी शक्ति के प्रयोग के ढंग के बारे में वसीयत द्वारा दे ।"

13. यहां तक हम उच्च न्यायालय से पूर्णतया सहमत हैं ; किंतु उन्हें पूरा आदर देते हुए भी हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि अपने पति की मृत्यु से 11 वर्ष के अधिक बाद प्रत्यर्थी का पति के भतीजे को गोद लेना वसीयत द्वारा उसे प्रदत्त प्राधिकार के नितांत अनुरूप था । यह सही है कि वसीयत स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहती कि अपने पति की मृत्यु से दस वर्ष बीत जाने के पश्चात् उसके भाइयों या सौतेले भाई के पुत्रों में से किसी का दत्तक-ग्रहण शून्य होगा । किंतु यह सुसंगत नहीं है । प्रश्न यह नहीं है कि वसीयत किसे शून्य कहती है, बल्कि यह है कि ऐसे पुत्र को गोद लेने का क्या अधिकार प्रत्यर्थिनी का दिया गया । हमारी राय में इस प्रश्न का उत्तर साफ है । अधिकार वह है जो वसीयत के खंड 3 के पैरा 1 में वर्णित है, अर्थात्, वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष के भीतर

---

[1] (1906) 33 इंडियन अपील्स 55.

[2] 47 इंडियन अपील्स 202 = आ. इं. रि. 1921 प्रि. कौं. 88.

दत्तक-ग्रहण का अधिकार । हम वसीयत में, इस पैरा के पूर्व या पश्चात्, कोई ऐसी बात नहीं पाते जो किसी प्रकार इस अधिकार में वृद्धि करती हो । अधिकार अभिव्यक्त रूप से सीमित है और प्रमाणों तथा अधिकारों को लागू साधारण सिद्धांतों के अनुसार अभिव्यक्त निर्बंधन का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए । इन कारणों से हम अधीनस्थ न्यायाधीश के इस निर्णय से सहमत हैं कि दत्तक-ग्रहण अविधिमान्य था ।

14. हम इस बात से भी उनसे सहमत हैं कि वसीयत के खंड 7 में अंतर्विष्ट किसी पुत्र को गोद न लेने की दशा में दान, उस स्थिति में जो थी, विधिमान्य था और वह वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् प्रभावी हुआ । हम इस प्रश्न पर कोई राय प्रकट नहीं करते कि यदि कोई विधिमान्य दत्तक-ग्रहण होता तो "गोद लिए हुए पुत्र" के निष्पुत्र मर जाने की दशा में दान दूरस्थ होने के कारण निष्फल होता या नहीं, क्योंकि कोई पुत्र गोद न लेने की दशा में दान उस दान से स्पष्टतया भिन्न है जो अभी वर्णित अन्य दशा में हो और जो प्रभावी होने की दशा में विलंबतम वसीयतकर्ता की मृत्यु से बारह वर्ष बीत जाने पर या उसके पूर्व उसकी विधवा की मृत्यु हो जाने पर प्रभावी होगा । जो घटनाएं घटी उनमें यह दान वसीयतकर्ता की मृत्यु से दस वर्ष व्यतीत होने पर प्रभावी हुआ क्योंकि प्रत्यर्थी के लिए यह असंभव नहीं था कि इस अवधि के भीतर वह अपने पति के भाइयों या सौतेले भाई के पुत्रों में से किसी को गोद ले लेती ।

15. प्रत्यर्थी की ओर से यह बहस की गई कि ऐसा होने पर भी दान इस आधार पर अविधिमान्य है कि वसीयतकर्ता की मृत्यु और दस वर्ष की अवधि बीतने के मध्य संपदा की उत्तराधिकार प्रास्थगित रहा, जो हिन्दू विधि के प्रतिकूल है । हिन्दू विधि के उत्तराधिकार के इस सिद्धांत को हम किसी प्रकार प्रश्नगत नहीं करना चाहते, किंतु प्रस्तुत मामले मे इसका लागू होना कल्पनीय नहीं है । वसीयतकर्ता की मृत्यु पर उसकी संपदा में कोई हित, जिसकी प्रभावी रूप से व्यवस्था नहीं की गई है, तुरंत उसके वारिस के रूप में प्रत्यर्थी में निहित हो जाएगा । अतः उत्तराधिकार का कोई प्रास्थगन नहीं हुआ । यदि वसीयत के खंड 4 और 5 में वर्णित व्यवस्थाएं करने के पश्चात् उसकी संपदा की अतिरिक्त आय का प्रभावी रूप से व्ययन नहीं किया गया तो ऐसी अतिरिक्त आय प्राप्त करने का अधिकार प्रत्यर्थी में निहित था । वास्तव में उसका ऐसे व्ययन नहीं किया गया । वसीयत के खंड 7 में वर्णित पूर्त प्रयोजनार्थ वसीयतकर्ता की शेष संपदा का दान एक समाश्रित दान था । अतः दान निहित होने के पूर्व प्रोद्भूत उसकी कोई आय दान में

शामिल नहीं होगी । इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी उस आय का हिसाब मांगने और हिसाब करने पर उसे जो देय पाया जाए उसका उसे भुगतान किए जाने की हकदार है तथा उसका वाद पूर्णतया खारिज नहीं किया जाना चाहिए था । किंतु विद्वान् अधीनस्थ न्यायाधीश के प्रति न्याय की दृष्टि से यह कहना होगा कि ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के इस पक्ष की ओर उनका ध्यान नहीं दिलाया गया ।

16. हमारी राय में मामले की सारी परिस्थितियों में सही मार्ग यह होगा कि अधीनस्थ न्यायाधीश की डिक्री और संपदा से न्यायालय फीस की अदायगी के निदेश के सिवाय उच्च न्यायालय की भी डिक्री निरस्त की जाए ; निदेश दिया जाए कि वसीयतकर्ता की मृत्यु के तुरंत पश्चात्वर्ती इस वर्षों में प्रोद्भूत संपदा की आय का हिसाब लिया जाए तथा अपीलार्थी को निदेश किया जाए कि ऐसे हिसाब करने पर जो देय पाया जाए वह प्रत्यर्थिनी को अदा करें । हिज मैजेस्टी को हमारी विनम्र सलाह तद्नुसार है । हमारे विचार से यह उचित मामला है जिसमें अपीलार्थियों और प्रत्यर्थी या निचले न्यायालयों और इस अपील दोनों का खर्चा अपीलार्थियों द्वारा वसीयतकर्ता की संपदा से निकालकर अदा किया जाए ।

तद्नुसार आदेश किया गया ।

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	—	—	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. वी. परांजपे - 1990	40	—	—	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	—	—	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	—	—	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	—	—	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	—	—	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	—	—	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख - 1999	293	—	—	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	—	—	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	—	—	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ - 2001	425	—	—	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	—	—	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	—	—	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	—	—	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	—	—	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	—	290	—
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	—	60	—

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 195/- उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की मासिक कीमत ₹ 125/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105